भविष्यदत्त काव्य

प्रो. डॉ. राजा राम जैन



गाँधीवादी आदर्शों के प्रतिपालक सरस्वती पुत्र प्रो. डॉ. राजाराम जैन

प्रो० राजाराम जी जैन संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, गुजराती एवं राजस्थानी आदि भाषा के उच्च कोटि के विद्वान हैं। संस्कृति और परम्परा में प्राणशक्ति व जीवंतता उत्पन्न करना ही आपकी लेखनी का मुख्य धर्म रहा है। यूँ तो आपने दर्जनों कथा काव्य लिखें हैं किन्तु **'भविष्यदत्त काव्य'** एवं श्री पाल चरित्र आपके प्रमुख अनुवादित कथा काव्य है। प्रथम काव्य का संबंध करूजांगल देशान्तर्गत हस्तिापुर (वर्तमान उत्तर प्रदेश) से है और द्वितीय काव्य का संबंध चम्पापुर (वर्तमान भागलपुर बिहार से) कथाओं की मार्मिकता के कारण तो उनका विशेष महत्त्व है ही मध्यकालीन वैदेशिक व्यापार एवं समकालीन भारतीय एवं श्रमण-संस्कृति की दृष्टि से भी ये दोनों ही काव्य अद्भुत है। **'भविष्यदत्त काव्य'** और श्री पाल जैसे चरित्र काव्यों में प्रो० राजाराम जी ने भारतीय वाड्मय में जैन कथा साहित्य की विशिष्टता और सार्थकता को स्पष्ट कर दिया है। पुस्तक में उद्धृत डॉ० कालिदास नाग प्रभृति समीक्षक इतिहासकारों का कथन सत्य प्रतीत होता है ' कि प्राचीन जैन कथाओं ने पर्शियन एवं योरूपीय साहित्य को भी प्रभावित किया है। प्राचीन काल से ही अरब तथा अन्य विदेशों के साथ भारत के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध रहे तथा श्री पाल एवं भविष्यदत्त जैसे अनेक जैन सार्थवाह अपनी व्यापारिक सामग्रियों के साथ-साथ अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य एवं अन्य भारतीय आदर्शों के प्रभाव भी विदेशियों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से छोड़ते रहे, जो परवर्ती कालों में उनकी विचारधारा में गहरे उतरते गए और वहाँ से साहित्य के माध्यम से उन्हें मूर्त्त रूप मिलता रहा।' जैन साहित्य की इस अनुपम अद्वितीय कृति के लिए प्रो० राजाराम जी सदैव साधुवाद के पात्र रहेंगे तथा पूर्ण जैन जगत उनकी इस अमूल्य धरोहर का ऋणी रहेगा।

–डॉ. ज्योत्स्ना जैन





श्री गणेशवर्णी संस्थान पुस्तकालय
के लिये सादर भेंट

[illegible]
21/3/017

महाकवि विबुध श्रीधर कृत-

भविष्यदत्त-काव्य

**Published for the first time on the auspicious-
Occasion of 2612th Anniversary of Lord Mahavira-**

Great Poet Vibudha-Shridhara's

BHAVISHYA – DATTA – KAVYA

{A wonderful Treasure of later Medieaval Indian socio-cultural history hidden in hitherto unpublished old rare Ms (BDK) written in Prathamanuyogic style with critical introduction and Index.}

Edited and Translated by –

PROF. DR. RAJA RAM JAIN, D. LITT.
(President Awardee – 2000 A.D.)

श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा
खण्डेलवाल जैन मंदिर परिसर,
5, राजाबाजार, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

महाकवि विबुध श्रीधर कृत-

भविष्यदत्त-काव्य

{अद्यावधि अप्रकाशित जीर्ण-शीर्ण दुर्लभ पाण्डुलिपि में समाहित उत्तर-मध्यकालीन भारतीय संस्कृति एवं समाज के प्रच्छन्न कुछ आश्चर्यजनक सरस एवं रोचक तथ्यों की अमूल्य धरोहर, प्रथमानुयोग-साहित्य की शैली में, समीक्षात्मक प्रस्तावना एवं शब्दानुक्रमणिका के साथ।}

सम्पादन एवं अनुवाद
प्रो. डॉ० राजाराम जैन डी-लिट्
(राष्ट्रपति सम्मान-पुरस्कार (2000 ई.) पुरस्कृत-सम्मानित)

प्रकाशक
श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा
खण्डेलवाल जैन मंदिर परिसर,
5, राजाबाजार, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

प्रथम संस्करण-2015 ई.

मूल्य : 900/-

प्रकाशक

श्री भारतवर्षीय दिगंबर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा

खण्डेलवाल जैन मंदिर परिसर,

5, राजाबाजार, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

मुद्रक

महेशचन्द्र जैन

अलंकार ग्राफिक्स प्रा०लि०

(अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली की एक इकाई)

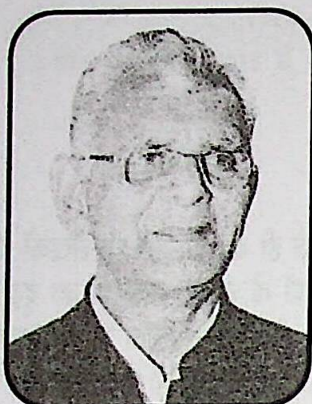
84, उद्योग केन्द्र, ग्रेटर नोएडा

स्मृति–पुष्प–

– जो प्रारम्भ से ही तपस्वी आचार्य–लेखकों की जीर्ण–शीर्ण
पाण्डुलिपियों के उद्धार–प्रकाशन का दृढ़ व्रती था
– असहाय–वृद्धजनों की सेवा–सहायता के प्रति समर्पित वृत्ति वाला था,
– अभावग्रस्त श्रावकों की निराशा दूर करने का दृढ़–संकल्पी था,
– भारत–व्यापी पावन तीर्थ–भूमियों के जीर्णोद्धार–हेतु प्रतिज्ञाबद्ध था
तथा
– युवाशक्ति को सुसंगठित कर समाज–सेवा के लिये प्रेरित करने के लिये जो
प्रतिज्ञाबद्ध था किन्तु
उन संकल्पों को साकार करने के पूर्व ही जो अनन्त नक्षत्रों में
विलीन हो गया और एक दर्दभरी टीस छोड़ गया–
– उसी पवित्रात्मा सुपुत्र पारस सेठी (सुपुत्र श्री निर्मलकुमार सेठी) की
पुण्य–स्मृति में
उसकी आत्मिक–शान्ति हेतु यह ग्रन्थ–पुष्प समर्पित है।

–राजाराम जैन

समर्पण



तुम जीवन की दीपशिखा थे, जिसने केवल जलना जाना
तुम जलते दीपक की लौ थे, जिसने जलने में सुख माना

श्री महेशचंद जैन जी अलंकार पब्लिकेशन के संस्थापक, उच्च कोटि के हिन्दी और जैन साहित्य के मूर्धन्य हस्ताक्षर और एक युग प्रतीक थे। प्रो० राजाराम जी की इस अद्वितीय कृति को प्रकाशितकरने का स्वप्न आपने संजोया था। कार्य के इतिश्री से पूर्व ही विधाता ने आपको हम सब से दूर कर दिया। ये आपका ही पुण्य प्रताप है कि आपके दोनों पुत्रों (दीपक जैन और दिवस जैन) ने आपके इस स्वप्न को साकार किया। संपूर्ण श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा सदैव आपकी ऋणी रहेगी।

बड़े चाव से सुन रहा था जमाना,
तुम्हीं सो गये दास्तां कहते-कहते

श्री निर्मलकुमार सेठी
राष्ट्रीय अध्यक्ष
श्री भारतर्वीय दिगम्बर जैन महासभा

प्रस्तावना

जैन-कथा-साहित्य की बहुआयामिता और विश्वजनीनता–

भारतीय–वाङ्मय में जैन–कथा–साहित्य का विशिष्ट स्थान है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें नैतिक एवं दार्शनिक अनुभूतियों की पुट के साथ–साथ व्यावहारिक जीवन में आने वाली सम और विषम समस्याओं को प्रस्तुत कर उनके समाधान के प्रयत्न भी किये गए हैं। ऐसी कथाओं के लेखकों ने अपनी कृतियों के माध्यम से समकालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों के मर्मस्पर्शी चित्रण भी प्रस्तुत किये हैं, जिनके कारण इस साहित्य का सर्वत्र बड़ा आदर होता आया है। डॉ. कालिदास नाग प्रभृति समीक्षक इतिहासकारों ने तो यहाँ तक कहा है कि प्राचीन जैन–कथाओं ने पर्शियन एवं योरुपीय साहित्य को भी प्रभावित किया है। उनका यह कथन उपयुक्त ही है क्योंकि प्राचीन काल से ही अरब तथा अन्य विदेशों के साथ भारत के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे तथा श्रीपाल एवं भविष्यदत्त जैसे अनेक जैन सार्थवाह अपनी व्यापारिक सामग्रियों के साथ–साथ अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य एवं अन्य भारतीय आदर्शों के प्रभाव भी विदेशियों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से छोड़ते रहे, जो परवर्त्ती कालों में उनकी विचारधारा में गहरे उतरते गए और वहॉ के साहित्य के माध्यम से उन्हें मूर्त्त रूप मिलता रहा।

समुद्री-मार्ग से वैदेशिक व्यापारिक यात्राएँ : आयात-निर्यात के स्रोत एवं परम्परा–

मिश्र, यूनान, चीन, सिंहल, दक्षिण–पूर्व–एशिया तथा पारसीक–देशों के उपलब्ध कुछ लोक– साहित्य का अध्ययन कर इतिहासकारों ने बताया है कि विदेशों के साथ भारत के प्राचीनकाल से ही व्यापारिक घने सम्बन्ध थे, साथ ही सांस्कृतिक सम्बन्ध भी। जैन–कथा–साहित्य से उक्त तथ्यों का समर्थन भी होता है। इस दृष्टि से विविध भाषात्मक चारुदत्त, श्रीपाल, भविष्यदत्त, जिनेन्द्रदत्त, अचल एवं साहू नट्टल जैसे प्राचीन एवं मध्यकालीन महासार्थवाहों का चरित–साहित्य विशेष महत्व का है, जिन्होंने भारत के विभिन्न जनपदों से जल–मार्ग से विविध व्यापारिक सामग्रियों के आयात–निर्यात (Import and Export) का कार्य किया था। इसी माध्यम से संस्कृति, साहित्य विशेष रूप से कथा–साहित्य

ने भी विदेशियों के जन–जीवन को प्रभावित किया था। डॉ. हर्टेल, डॉ मोरिस विंटरनिट्ज, डॉ. स्टैन कोनो, डॉ. कालिपद नाग, डॉ. कामता प्रसाद जैन, डॉ. मोतीचन्द्र, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे महामनीषियों ने इस दिशा में पर्याप्त अध्ययन कर जैन कथाओं को प्राच्य भारतीय विद्या के एक गौरवशाली विशिष्ट अंग के रूप में स्मरण किया है।

भारत के इस बिखरे हुए स्वर्णिम अतीत पर प्रासंगिक या आनुषंगिक रूप में कुछ अध्ययन तो किया गया है, फिर भी उस पर विस्तृत तुलनात्मक स्वतन्त्र अध्ययन एवं शोध कार्य की अभी भी महती आवश्यकता है।

मध्यकालीन विविध साहित्यिक शैलियों की दृष्टि से तो जैन कथा–साहित्य का महत्व है ही, चारुदत्त–चरित, श्रीपाल–चरित–काव्य, भविष्यदत्त–काव्य, मूलदेव एवं साहू नट्टल–कथानक आदि के माध्यम से इनमें वैदेशिक–व्यापार, क्रय–विक्रय योग्य वस्तुओं के आयात–निर्यात, (Import and Export) यातायात के साधन, जल–दस्युओं तथा अन्य कारणों से सामुद्रिक–यात्रा की कठिनाइयों, समकालीन उद्योग–धन्धों, कर टैक्स उगाहने की पद्धति, कर टैक्स–चोरी एवं उसके लिये दण्ड–व्यवस्था, शिल्प–कला–कौशल, सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक रुढ़ियाँ, नर–नारियों के विविध चरित्रों के प्रासंगिक सन्दर्भ और समकालीन विविध मानसिक परिस्थितियों की भी चर्चाएँ की गयी हैं। भारतीय इतिहास के विविध–पक्षों के लेखन के लिये ये साक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

चूँकि प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य में जलमार्ग द्वारा वैदेशिक–यात्रा तथा व्यापार की जिज्ञासा–जनक रोचक चर्चा आई है और जिस माध्यम से यह कथानक भी अत्यन्त रोमांचक, सरस और रोचक बन सका है, उसका मूल–स्रोत क्या रहा होगा? इसकी जानकारी भी अत्यावश्यक है। इसके लिये हमें प्राच्य भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा प्राच्य–भारत का विदेशों से क्या और किस प्रकार के सम्बन्ध रहे थे, इन सम्बन्धों के विषय में भी अध्ययन करने की आवश्यकता है।

यह तथ्य है कि किसी भी देश के सर्वांगीण विकास के लिये उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होना चाहिए और वह निर्भर करती है उसके वाणिज्य या व्यापार की स्थिति पर। क्योंकि यही स्थिति देश की दशा और दिशा को आलेकित करती हैं। चार पुरुषार्थों में इसीलिये अर्थ–पुरुषार्थ को द्वितीय महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

इतिहास के मर्मज्ञों का कथन है कि 3000 वर्ष ई. पू. के लगभग सिन्धुघाटी की सभ्यता का जब अध्ययन किया गया तो प्राप्त–साक्ष्यों के अनुसार उस समय आर्यान (ईरान) बल्ख, गान्धार, दजला–फरात, मेसोपोटामिया आदि से भारत के जल और थल–मार्गों से व्यापारिक–सम्बन्ध थे। इसी व्यापार एवं अन्य स्थानीय संसाधनों ने भारत को इतना समृद्ध बना दिया था कि सर्वत्र उसे 'सोने की चिड़िया' का देश मान लिया गया और विश्व–विजय के महत्वाकांक्षी यवन–आक्रान्ता सिकन्दर ने भी उस पर आक्रमण कर दिया था। वह भारत पर सम्पूर्ण विजय तो प्राप्त न कर सका, हाँ, भारत की श्रमण–संस्कृति से वह प्रभावित होकर तथा

कल्याण नामक जैन मुनि को सादर वह अपने साथ अवश्य लेता गया था। यही कारण है कि यूनानी–विचार धारा जैन–विचार–धारा से प्रभावित हुई।

उत्तर–वैदिक काल में ईरानी शासक दारयबहु ई.पू. 516 ने जब पश्चिमोत्तर–भारत (वर्तमान–कालीन पाकिस्तान) पर अधिकार किया तो ईरान से भारत के घने व्यापारिक सम्बन्ध हो गये और फिर उसका विस्तार हुआ जो यूनान तथा मध्य–एशिया तक बढ़ता चला गया। आगे चलकर जब योरुप में विशाल रोमन–साम्राज्य स्थापित हुआ तब उसके साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध भी बढ़े और भारतीय उत्पादों, विशेष रूप से काली–मिर्च, लौंग, सुपाड़ी, बर्तन, मलमल एवं रेशमी वस्त्रों का निर्यात (Export) होने लगा। उसके बदले में भारत में सोना, मोती, माणिक्य आदि आने लगे। यह भी कहा जाता है कि काली–मिर्च की रोम इटली में इतनी अधिक लोकप्रियता बढ़ गई थी कि वहाँ के देशवासियों के भोजन के स्वाद के लिये वह अनिवार्य बन गई थी। उसके बदले में 16 गुना सोना वहाँ से भारत में आने लगा था। रोम के शासक को इसकी बड़ी चिन्ता हो गई कि यदि यही स्थिति बनी रही तो रोम का कोषागार ही रिक्त हो जायगा। अतः उसने भारतीय काली–मिर्च का तत्काल ही वहाँ आयात (Import) बन्द कर दिया था। यूनानियों में भी काली–मिर्च, इतनी सुस्वादु थी कि उन्होंने उसका नाम ही "यवनप्रिया" रख दिया था। इसी प्रकार लौंग को कृष्णकली का नाम दे दिया गया था। प्राचीन संस्कृत–नाटकों में कहीं–कहीं काली–मिर्च का नाम "यवनप्रिया" भी मिलता है।

भारत की वैदेशिक व्यापार की यह परम्परा निरन्तर चलती रही। कोटिभट्ट श्रीपाल, चारुदत्त, जैनेन्द्रदत्त, भविष्यदत्त, अचल एवं नट्टल साहू जैसे जैन–महासार्थवाहों ने भी उसी परम्परा को जारी रखा। जैन कवियों ने भी विविध कालों में विविध भाषाओं एवं शैलियों में उक्त महासार्थवाहों की वैदेशिक यात्राओं एवं उनके व्यापारिक कार्यों की रोचक चर्चाएँ की हैं और उस माध्यम से ऐसे–ऐसे द्वीप–द्वीपान्तरों की चर्चाएँ भी की गई हैं, जो भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ी ही रोचक एवं विस्मयकारी हैं। इसी माध्यम से वहाँ के निवासियों की संस्कृति, जीवन–पद्धति, आर्थिक स्थिति आदि के भी संकेत दिये गए हैं, जो अध्ययन एवं शोध के लिये स्वतन्त्र रोचक विषय बन सकते हैं।

जैन महासार्थवाह श्रमण संस्कृति के प्रचारक भी–

उक्त जैन महासार्थवाह वस्तुतः व्यापारी तो थे ही किन्तु दूसरे दृष्टिकोण से वे भारतीय संस्कृति, विशेषतया जैन–संस्कृति के सन्देशवाहक और प्रचारक भी थे। विदेशी भाषाओं में जो प्राकृत–अपभ्रंश की शब्दावलियाँ (स्थानीय प्रभावों से कुछ प्रभावित, यत्किंचित् परिवर्तित) मिलती हैं, वहाँ के उत्खनन में जो जैन–मूर्त्तियाँ एवं जैन–मन्दिर मिलते हैं और जैन–पाण्डुलिपियाँ भी मिलती है, मेरी दृष्टि से वे सब, देव–शास्त्र एवं गुरु के भक्त जैन–सार्थवाहों की ही देन है। वे विदेशों में जाकर देव–मूर्ति एवं शास्त्र अवश्य ले जाते होंगे। वहाँ विदेशों में भी वे अपने मधुर व्यवहार तथा सात्विक भक्ति–पद्धति से लोगों को प्रभावित कर देव–मूर्त्तियाँ एवं शास्त्र, आदि उन्हें समर्पित करके लौटते होंगे, अतः वे वहीं सुरक्षित रह गये

और ऐतिहासिक तथ्य के रूप में अब प्रकट हो रहे हैं। इस दृष्टि से दि. जैन महासभा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, "अंगकोरवाट के जैन–मन्दिर," तथा "विदेशों में जैनधर्म" नामक ग्रन्थ विशेष महत्वपूर्ण और पठनीय हैं।

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य भी उक्त तथ्यों का एक आदर्श उदाहरण है। प्रस्तुत रचना में यह तो स्पष्ट नहीं है कि भविष्यदत्त या बन्धुदत्त कौन–कौन सी व्यापारिक सामग्रियाँ लेकर विदेश गये थे। लेकिन यह अवश्य है कि लौटते समय वे लोग बदले में वहाँ से हीरा, मोती, माणिक्य एवं स्वर्णराशि आदि लेकर अवश्य लौटते थे। केवल भारतीय सार्थवाह ही विदेश गये हों, यह बात नहीं। विदेशी व्यापारी भी व्यापारिक–कार्यों से भारत आते रहे।

उत्तर–मध्यकाल में रूस से अफनासी निकीतिन नामका एक व्यापारी अपने व्यापारियों एवं एक राजदूत के साथ समुद्र–मार्ग से समुद्री लुटेरों से लड़ता–भिड़ता, लुटता–पिटता अनेक कठिनाइयाँ झेलता हुआ बाकू–द्वीप और वहाँ से कैस्पियन–सागर को पार करता हुआ गुजरात (भारत) आया था। उसने समकालीन खम्भात, चौल, पाली, उम्रा, जुन्नार, बीदर, कुलुनगीर, गुलबर्ग, एल्लंदु, आदि प्रमुख व्यापारिक नगरों में परिभ्रमण किया। उसने (निकीतिन ने) यहाँ व्यापार तो कम किया किन्तु भारतीय संस्कृति, सभ्यता यहाँ के रीति–रिवाजों, सड़कों पर 14–14 फीट लंबे रेंगने वाले सर्पों की चर्चा, लोगों की जीवन–पद्धति, सुलतानों एवं जमीन्दारों की अत्यन्त मँहगी शान–शौकत, खर्चीले ठाट–बाट, धार्मिक अन्धविश्वास, समकालीन शासक असद खाँ द्वारा धर्म–परिवर्तन सम्बन्धी दुखद–कार्य आदि की आश्चर्य जनक लोमहर्षक चर्चाएँ की हैं।

व्यापारिक सामग्रियों में उसने घोड़े, कमख्वाव, रेशम, शाक–सब्जियों की बिक्री की चर्चा की है। उसके समय भारत में घोड़े बहुत ही मँहगे मिलते थे।

जब वह भारत से वापिस अपने देश–रूस लौटने लगा तो उसे यहाँ से ले जाने लायक कोई भी अनुकूल व्यापारिक–सामग्री उपलब्ध नहीं हुई थी और वह खाली हाथ ही यहाँ से लौटा था।

संघर्षशील, कष्टसहिष्णु एवं भ्रमणशील पुरुषार्थी यहूदियों ने ईसा पूर्व 950 के आसपास भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। उन्होंने यहाँ की व्यापारिक स्थिति का भलीभाँति ज्ञानकर वे यहाँ से चावल, रेशम, सूती–वस्त्र, खाद्य–मसाले, अदरख एवं कालीमिर्च जैसी दैनिक–जीवन में उपयोगी मानी जाने वाली सामग्रियाँ भारी मात्रा में जल–पोतों में भरकर योरुप ले जाने लगे। इन भारतीय सामग्रियों ने वहाँ अपनी धाक जमा ली। यहूदियों को इस भारतीय व्यापार ने इतना अधिक प्रभावित किया कि उसमें उन्होंने केवल प्रगति ही नहीं की अपितु भारत को अपना निवास ही बना लिया और यहाँ के निवासी बनकर व्यापार, साहूकारी तथा लेन–देन का कार्य भी करने लगे। केरल इनका मुख्य केन्द्र बना।

इन ऐतिहासिक तथ्यों से यह स्पष्ट है कि भारत तथा एशिया एवं योरुप के व्यापारिक सम्बन्ध बहुत ही घने एवं सौहार्दपूर्ण थे। महासार्थवाह कोटिभट–श्रीपाल, भविष्यदत्त, नट्टल

आदि ने भी उस परम्परा को जारी रखा एवं आयात–निर्यात के माध्यम से भारत को न केवल आर्थिक दृष्टि से समृद्ध किया अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारतीय आदर्शों की भी वहाँ गहरी छाप छोड़ी।

भविष्यदत्त काव्य : कथावस्तु–

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, एवं राजस्थानी आदि भाषाओं में लिखित उक्त कोटि के दर्जनों कथा–काव्यों में से दो काव्य प्रमुख हैं–भविष्यदत्त–काव्य एवं श्री श्रीपाल–चरित। प्रथम काव्य का सम्बन्ध कुरुजांगल देशान्तर्गत हस्तिनापुर (वर्त्तमान उत्तर–प्रदेश) से है और द्वितीय काव्य का सम्बन्ध चम्पापुर (वर्त्तमान भागलपुर, बिहार से)। कथाओं की मार्मिकता के कारण तो उनका विशेष महत्व है ही, मध्यकालीन वैदेशिक व्यापार एवं समकालीन भारतीय एवं श्रमण–संस्कृति की दृष्टि से भी ये दोनों ही काव्य अद्भुत हैं।

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य महाकवि विबुध–श्रीधर द्वारा संस्कृत–भाषा में लिखित है, जिसकी कथावस्तु निम्न प्रकार है :–

कुरुजांगल–देश के हस्तिनापुर नाम के नगर में राजा भूपाल राज्य करता था। उसी नगर में धनेश्वर नाम का एक वणिक् भी निवास करता था। उसकी पुत्री का नाम कमलश्री था। उसी नगर के धनपति सेठ की योग्यता परखकर वह धनेश्वर अपनी सुपुत्री कमलश्री का विवाह उसके साथ कर देता है। समय–क्रमानुसार उनसे भविष्यदत्त नामका एक सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। जब यह पुत्र कुछ बड़ा हुआ तभी दुर्भाग्य से धनपति ने कमलश्री को घर से निकाल दिया तथा उसी नगर के सेठ धनदत्त की पुत्री सुरूपा के साथ अपना विवाह कर लिया। भविष्यदत्त दुखी होकर अपनी माँ के साथ अपनी ननिहाल में रहने लगा।

सुरूपा ने भी समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम बन्धुदत्त रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तभी उसके मित्रों ने उसे सलाह दी कि "युवावस्था" में पैतृक सम्पत्ति के उपयोग की अपेक्षा स्वयं अर्जित सम्पत्ति का उपभोग करना चाहिए। यही सही सच्चा पुरुषार्थ है।" बन्धुदत्त को यह सलाह रुचिकर लगी और वह व्यापार करने हेतु समुद्री–मार्ग से काँचन–द्वीप जाने की तैयारी करने लगा।

बन्धुदत्त के साथ उसके साथी भी उसके साथ चलने की तैयारी करने लगे। जब भविष्यदत्त को इसकी सूचना मिली तो वह भी उसके साथ चलने को तैयार हो गया। सौतेली माता सुरूपा को जब भविष्यदत्त के जाने का पता चला तो उसने अपने पुत्र बन्धुदत्त से तत्काल कहा कि "जैसे भी हो, ऐसा उपाय करना कि भविष्यदत्त विदेश से तुम्हारे साथ वापिस न लौट सके, अन्यथा वह पिता की आधी सम्पत्ति का मालिक बन जायेगा।" बन्धुदत्त ने माँ की आज्ञा को स्वीकार कर लिया।

बन्धुदत्त सभी के साथ समुद्री–मार्ग से चला। उसके जलयानों में अनेक प्रकार की व्यापारिक सामग्रियाँ भरी हुई थीं। कुछ दिनों तक चलने के बाद जब उनका जहाजी–बेड़ा मदनद्वीप पहुँचा, तब वे वहाँ रुक गये और ईन्धन, पानी तथा भोजनादिक सामग्री की व्यवस्था में

जुट गए। जब कल्पनाशील भविष्यदत्त अकेला ही घूमता हुआ दूर निकल गया, तभी कपटी बन्धुदत्त ने अवसर पाकर संचालकों को सभी जहाजों को आगे बढ़ाने का आदेश दे दिया।

भविष्यदत्त थोड़ी देर में जब उस समुद्री–तट पर लौटा और अपने जहाजी बेड़ा तथा साथियों को वहाँ न देखा तो अत्यन्त दुखी होकर उसी द्वीप में इधर–उधर भटकने लगा। वहाँ उसने एक पहाड़ी पर एक पुराना तलघर देखा। उसमें उतरकर उसने कुछ आगे बढ़कर एक सुन्दर नगर देखा। उसमें घूमता हुआ वह एक चन्द्रप्रभ भगवान के मन्दिर में पहुँचा। वहाँ से दर्शन कर जब लौटने लगा, तभी उसने वहाँ दीवाल पर सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई दो पंक्तियाँ पढीं, जो उसी को उद्देश्य कर किसी देव ने लिख दी थी। उन पंक्तियों का आशय इस प्रकार का था–"इस मन्दिर से निकलते ही यहाँ से पाँचवें भवन में जाना। वहाँ एक युवती कन्या निवास करती है। वहाँ वह तुम्हारा स्वागत करेगी।"

भविष्यदत्त विस्मित होकर उस पाँचवें भवन में पहुँचा। वहाँ सचमुच ही भविष्यानुरूपा नाम की एक सुन्दरी कन्या ने उसका स्वागत किया। वहाँ के क्षेत्रपाल देव ने उन दोनों का विवाह कराकर भविष्यदत्त को उस नगर का राजा घोषित कर दिया।

राजा भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा जब वहाँ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे, उसी समय भविष्यदत्त को अपनी माता कमलश्री की स्मृति सताने लगती है। अतः वे दोनों ही सलाह कर हस्तिनापुर चलने की तैयारी करने लगते हैं। जब वे समुद्र–तट पर अतिमुक्तक नामके वृक्ष के नीचे किसी जहाज की प्रतीक्षा करते हैं, तभी सौतेला भाई बन्धुदत्त अपनी विदेश–यात्रा से लौटकर आता है। वहीं उसी समुद्र–तट पर उन दोनों की भेंट हो जाती है।

भविष्यदत्त तथा उसकी पत्नी भविष्यानुरूपा को उसकी समस्त सम्पत्ति के साथ कपटी बन्धुदत्त, अपने जल–पोतों में लेकर आगे बढ़ने लगता हैं।

भविष्यानुरूपा के सौन्दर्य पर मोहित होकर बन्धुदत्त पुनः भविष्यदत्त को धोखा देता है और भविष्यानुरूपा एवं उसकी अपार सम्पत्ति को लेकर तथा भविष्यदत्त को उसी द्वीप में अकेला छोड़कर आगे चल देता है। भविष्यानुरूपा इस घटना से अत्यन्त मर्माहत होकर जल–देवी की आराधना करती है और अपने शील के प्रभाव से वह उपसर्ग–रहित सुरक्षित बच जाती है।

और उधर, भविष्यदत्त के विदेश जाने के बाद उसकी माता कमलश्री दुखी होकर साध्वी के रूप में एक आश्रम में रहने लगती है। वहाँ सुव्रता नामकी साध्वी ने उसे बड़ा धैर्य बँधाया तथा पुत्र के सुरक्षित रूप में वापिस लौटने हेतु उसे श्रुत–पंचमी व्रत की उपासना की सलाह दी, जिसे उसने स्वीकार किया।

बन्धुदत्त शीघ्र ही यात्रा कर हस्तिनापुर आ पहुँचा। उस कन्यारत्न भविष्यानुरूपा तथा उसकी सम्पत्ति को देखकर राजा एवं राज्य के सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। बन्धुदत्त ने शुभ मुहूर्त में उस कन्या भविष्यानुरूपा के साथ अपने विवाह रचाने की घोषणा कर दी।

उधर, दुखी वह भविष्यदत्त उस द्वीप में अकेला ही भटकता रहा तथा पुनः चन्द्रप्रभ स्वामी

के उसी मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ पर उसकी भेंट एक यक्षराज मणिभद्र से हुई जिसने भविष्यदत्त की स्थिति से दुखी होकर उसे एक विशेष विमान द्वारा हस्तिनापुर भेज दिया।

कपटी बन्धुदत्त के साथ भविष्यानुरूपा के विवाह का समय जैसे–जैसे पास आ रहा था वह भविष्यानुरूपा भविष्यदत्त के न आने से अत्यन्त दुखी रहने लगी। जब भविष्यदत्त हस्तिनापुर आ पहुँचा और कमलश्री ने भविष्यानुरूपा को उसके आगमन की सूचना दी, तो वह प्रसन्न हो उठी। भविष्यदत्त राजा भूपाल की राज्य–सभा में गया और बन्धुदत्त ने उसे जिस–जिस प्रकार धोखा दिया था, वह सब कुछ उसे सुना दिया। यह सुनकर राजा भूपाल को बन्धुदत्त पर बहुत क्रोध आया और उसने बन्धुदत्त की तथा उसके पिता धनपति की समस्त सम्पत्ति छीनकर उन्हें कारागार में डाल दिया तथा भविष्यदत्त के साथ भविष्यानुरूपा के विवाह की स्वीकृति दे दी। इतना ही नहीं, उसने भविष्यदत्त के साथ अपनी पुत्री सुमित्रा नामकी सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह करके अपना आधा राज्य भी भेंट कर दिया। उसके बाद भविष्यदत्त राजा के रूप में रहते हुए सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

अन्त में उसने प्रवृज्या धारण कर घोर तपश्चर्या की और शुभगति प्राप्त की।

महाकाव्य की दृष्टि से समीक्षा–

भारतीय अलंकार–शास्त्रियों ने महाकाव्य के जो लक्षण प्रतिपादित किये हैं, उनमें से निम्नलिखित लक्षण प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध होते है :–

1. कथावस्तु का गठन महाकाव्य की प्रथित परम्परा के अनुसार है।
2. प्रस्तुत ग्रन्थ का वर्ण्य–विषय 15 सर्गों में समाप्त हुआ है।
3. इसमें ऋतु–चित्रण, नगर–वर्णन एवं जल–क्रीड़ा तथा विलास–क्रीड़ा आदि का विस्तृत चित्रण उपलब्ध है।
4. इसमें श्रृंगार, वीर और शान्त रस उपलब्ध हैं। रस–सिक्त विस्तृत वर्णन–प्रसंगों के साथ–साथ शान्त रस अंग–रस के रूप में तथा शेष रस अंगीभूत के रूप में उपलब्ध हैं।
5. इसमें जातीय भावनाओं की रक्षा का समावेश उपलब्ध है।
6. कथावस्तु नायक के जीवन के समग्र अंग से सम्बद्ध है। और–
7. संवादों की योजना यथासम्भव विस्तार पूर्वक की गई है।

उक्त मापदण्डों के अनुसार प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य महाकाव्यत्व की कषौटी पर खरा उतरता है।

अलंकार–योजना

कथावस्तु को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए अलंकारों की योजना भी आवश्यक है। भविष्यदत्त–काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, परिसंख्या प्रभृति अलंकारों की सुन्दर योजना की गई है। उपमा का प्रयोग तो प्रारम्भ से ही होने लगा है।

हस्तिनापुर नगर के चित्रण में कवि ने उपमालंकार की झड़ी सी लगा दी है। (दे. श्लोक सं 30–45)

हस्तिनापुर के राजा भूपाल की प्रशंसा में कहा गया है कि उसमें निर्मल–पवित्र राज–विद्याएँ उसी प्रकार सुशोभित–प्रतिष्ठित थीं, जिस प्रकार रात्रि के समय निरभ्र–निर्मल–आकाश में तारागण मनोहर दीख पड़ते हैं (48)। इसी प्रकार हस्तिनापुर–नगर–सौन्दर्य–वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है कि "जहाँ आकाश में पुष्प–गन्ध से अन्धे होकर दौड़ते हुए भ्रमर ऐसे सुशोभित होते थे, मानों सूर्य से भयभीत अन्धकार के टुकड़े ही सुशोभित हो रहे हों (33)। कवि ने यहाँ उपमा और उत्पेक्षा की एक साथ योजना की है जो काव्य–चमत्कार की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

कवि नारी के जीवन की सफलता का चित्रण करता हुआ कहता है कि नारी भले ही कुलीन एवं सुन्दर हो, वैभवशालिनी हो तथा अपने पति के लिए भी वह अत्यन्त प्रिय हो, फिर भी, यदि वह सन्तान–विहीन है, तो उसका जीवन असफल ही माना जाता है। कवि ने इस तथ्य की अभिव्यंजना अर्थान्तरन्यास–अलंकार के द्वारा की है।

रसावतरण–

प्रस्तुत काव्य में शान्त–रस अंगरस है और अंगीभूत रूप में भयानक एवं वीभत्स–रस आदि की झाँकी मिलती है। भविष्यानुरूपा के विलाप में कवि ने वियोगजन्य करुणरस का सुन्दर समावेश किया है। इस काव्य में कमलश्री जहाँ अपने पति से परित्यक्त होने के कारण असह्य–वियोग का अनुभव करती है वहीं सुरूपा संयोग– शृंगार का आस्वादन करती है। जहाँ कमलश्री वियोगिनी का जीवन व्यतीत करती है वहीं उसकी पुत्र–वधु भविष्यानुरूपा भी अपने पति भविष्यदत्त के वियोग के कारण उसमें सम्मिलित हो जाती है।

पुत्र भविष्यदत्त के मंगल के लिए माता कमलश्री की व्रतसाधना एवं उसका वात्सल्यभाव, वात्सल्य–रस का द्योतक है। कवि ने कमलश्री के कष्टसहिष्णु एवं वात्सल्यपूर्ण–हृदय का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। कमलश्री के हृदय में अपार वात्सल्य भरा हुआ है। अतः वह वात्सल्य की रस–पिच्छल धारा अपने पुत्र और पुत्र–वधु पर उँडेल देती है। इस प्रकार रस और भावों की दृष्टि से यह भावसमीचीन–महाकाव्य है।

काव्य–कला की दृष्टि से भी इस काव्य में शृंगार, करुण और शान्त इन तीन रसों की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। शृंगार–रस धनपति और कमलश्री, धनपति और सुरूपा एवं भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा की केलिक्रीड़ाओं में अभिव्यक्त हुआ है।

जीवन–मूल्यों एवं गुण–धर्मों का विवेचन–

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य की कथा बड़ी ही रोचक और काव्य–चमत्कारों से युक्त है। कवि ने भविष्यदत्त के जीवन के जिन–जिन प्रसंगों को ग्रहण किया है, वे अत्यन्त ही रसमय और मर्मस्पर्शी हैं। वस्तुतः इस काव्य का लक्ष्य विमाता के दुर्व्यवहार को प्रदर्शित करके

सत्यनिष्ठा और ईमानदारी द्वारा जीवन में किस प्रकार सफलता प्राप्त की जा सकती है, इसका विश्लेषण करना है और सफल महाकाव्य वही हो सकता है, जिसमें जीवन के मूल्यों और गुण–धर्मों का हृदयग्राह्य विवेचन हो।

भविष्यदत्त अपनी सौतेली माता सुरूपा से त्रस्त है। जब सुरूपा का पुत्र बन्धुदत्त समुद्री–बेड़ा लेकर व्यापार के लिए विदेश जाने लगता है, तो भविष्यदत्त की इच्छा भी अपने भाई के साथ विदेश–गमन की होती है। और उधर, सुरूपा विदेश–गमन करते समय अपने पुत्र को आदेश देती है कि "तुम विदेश में ऐसा कार्य करना, जिससे कि भविष्यदत्त वहाँ से वापिस न लौट सके।" भविष्यदत्त की माँ कमलश्री अपने पुत्र भविष्यदत्त की सुरक्षा के लिये श्रुत–पंचमी का व्रत धारण कर मन वचन एवं काय से निर्दोष उपासना करती है और मन में पुत्र की सुरक्षा एवं उन्नति के लिए अनेक प्रकार की मनोकामनाएँ करती रहती है।

भविष्यदत्त जलयान पर सवार होकर अपने भाई बन्धुदत्त के साथ जब समुद्र–यात्रा करता है तब चलते–चलते जहाज आवश्यक सामग्रियाँ लेने के लिए मदन–द्वीप के समुद्र–तट पर रोक दिये जाते हैं और सभी यात्री जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्रियाँ लेने हेतु वन–प्रदेश की ओर चले जाते हैं, तभी प्रकृति–प्रेमी भविष्यदत्त वन–सौन्दर्य को देखता हुआ अकेला ही उनसे बिछुडकर कुछ दूर निकल जाता है। इसी बीच अवसर पाकर कपटी बन्धुदत्त जलयान लेकर सदल–बल आगे बढ़ जाता है और इधर, जब भविष्यदत्त लौटता है और जलयानों को वहाँ नहीं पाता, तब उसके मन में अपार कष्ट होता है और वह निरुद्देश्य होकर वहीं भटकने लगता है।

अकस्मात् उसकी दृष्टि वहाँ के एक विशाल भवन पर पड़ती है, जहाँ उसे भविष्यानुरूपा नाम की एक कन्या प्राप्त होती है और साथ में अपार सम्पत्ति भी। प्रमुदित–चित होकर भविष्यदत सपत्नीक अपने नगर हस्तिनापुर जाने के उद्देश्य से समुद्र–तट पर आ जाता है।

संयोगवश बन्धुदत्त का जलयान भी अपनी लक्ष्यपूर्ति करके उसी समुद्र–तट पर आ जाता है। वह कपटी बन्धुदत्त, भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा को जहाज में उनकी अपार–सम्पत्ति सहित बैठा लेता है।

दुर्भाग्य से भविष्यदत्त तत्काल ही जब अपने किसी उद्देश्यपूर्ति हेतु जलयान के नीचे उतरता है, तभी बन्धुदत्त उसे धोखा देकर अपने जलयान को आगे बढ़ा देता है तथा अपने नगर हस्तिनापुर में पहुँच कर भविष्यानुरूपा के साथ अपने विवाह की तैयारी करने लगता है। इतने में ही दैवयोग से भविष्यदत्त भी वहाँ पहुँच जाता है और बन्धुदत्त के छल–कपट का रहस्य प्रकट हो जाता है। फलस्वरूप बन्धुदत्त, पिता–धनपति और उसकी माँ–सुरूपा राजा के द्वारा दण्डित किये जाते हैं।

इस प्रकार इस काव्य की कथावस्तु महाकाव्योचित सिद्ध होती है। कवि ने इसमें धनपति और बन्धुदत्त, सुरूपा और बन्धुदत्त, भविष्यानुरूपा और भविष्यदत्त, भविष्यदत्त और बन्धुदत्त,

भविष्यदत्त और नगर–सम्राट एवं बन्धुदत्त के संवादों की सुन्दर तर्क–सम्मत योजना की है। इन संवादों के कारण यह महाकाव्य बहुत ही सरस मनोरम बन गया है।

इतिवृत्त का गठन भी महाकाव्य की शैली में हुआ है। कवि ने छोटे से इतिवृत्त को भी महाकाव्योचित बनाने के लिए कथनोपकथनों के साथ अवान्तर–कथा–प्रसंगों की विस्तृत शृंखला सुनियोजित की है।

यह तथ्य है कि अवान्तर–कथाएँ वे ही सरस मानी जाती हैं, जो काव्य के काव्यत्व–धर्म की वृद्धि करती हैं, और जिनसे कथावस्तु में रोचकता के साथ–साथ कथा–गठन के तत्व भी उत्पन्न होते हैं। इस गठन को ही अलंकारशास्त्रियों ने सानुबन्ध कहा है।

लोक-कथा-तत्व

लोक–कथा–तत्व की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य की समीक्षा करने के पूर्व लोक–कथा के तत्वों को समझ लेना आवश्यक है। आचार्यों ने उसके निम्नलिखित तत्व बतलाए हैं :–

1. लोक–कथा एक लोक–प्रसिद्ध कवि–कल्पित कथा होती है।
2. इसमें देश, काल का आश्चर्य–जनक और कल्पना–मण्डित वर्णन रहता है।
3. उसमें लोक–रूपों का भी सुन्दर समावेश रहता है।
4. अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक और अमानवीय तत्वों का समावेश होता है।
5. वह चित्त को आन्दोलित तथा प्रेरित कर उसे निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाती है।
6. स्वस्थ–शृंगार और धार्मिक श्रद्धा के लिए उसमें पर्याप्त स्थान होता है।
7. चमत्कारपूर्ण रहस्य और कौतूहल के लिए उसमें यथेष्ट अवसर प्रस्तुत किए जाते हैं।
8. उसमें महत्वाकांक्षा या साहस सम्बन्धी सरस वर्णनों की प्रचुरता रहती है।
9. पूर्व–जन्मों के संस्कार और फलोपयोग का आश्रय तो कवि इसमें लेता ही है, नारी के छल–कपट–मय आचरण का विश्लेषण भी इसकी अपनी विशेषता रहती है।

लोक–कथा में प्रयुक्त उक्त तत्वों के परिवेश में जब हम प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य की समीक्षा करते हैं, तो पाते हैं कि कवि विबुध श्रीधर ने लोक–कथा के प्रायः उन सभी तत्वों का समावेश अपने इस कथा–काव्य में किया है, जो एक सफल लोक–कथा के लिए आवश्यक होते हैं।

प्रस्तुत काव्य की कथा अत्यन्त लोकरंजक है। यह कथा निश्चय ही मानव–मन को उद्वेलित करने की क्षमता रखती है। यह कथा चित्त को आन्दोलित कर उसे प्रेरित करती है और पाठक को निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाती है।

इस कथा में आश्चर्य–जनक तत्वों की कमी नहीं है। भविष्यदत्त बन्धुदत्त के साथ जब समुद्र की यात्रा करते हुए मदन–द्वीप में पहुँचता है, तो कवि ने उस द्वीप में स्थित चन्द्रप्रभ के

मन्दिर का अद्भुत चित्रण किया है। सचमुच उस एकान्त द्वीप में वैसे सुन्दर मन्दिर का होना पाठक को आश्चर्य में डाल देता है। पाठकों का आश्चर्य तब और भी बढ़ जाता है, जब उस उजाड़नगर के एक सुन्दर भवन में वह भविष्यानुरूपा जैसी सुन्दरी युवती कन्या को देखता है। उस निर्जन–नगर में अचानक ही किसी असुर का आना और जाना भी कम आश्चर्यजनक नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने पाठकों की उत्सुकता को जगाये रखने के लिए आश्चर्य–जनक घटनाओं का समावेश प्रस्तुत काव्य में किया है।

इस लोक–कथा में स्वस्थ–शृंगार का भी चित्रण हुआ हैं। कवि ने कमलश्री और भविष्यानुरूपा की सुन्दरता का बड़ा ही मनोरम रूप अंकित किया है। उसके सौन्दर्य–वर्णन में कहीं भी वासना की गन्ध दिखाई नहीं देती। लेखक ने स्वस्थ–शृंगार के साथ–साथ धार्मिक श्रद्धा को भी प्रश्रय दिया हैं। भविष्यदत्त जब संकट में फँस जाता है, उस समय उसके लिए भगवान चन्द्रप्रभु ही सहायक सिद्ध होते हैं। भविष्यदत्त ने जिन शब्दों में उनकी स्तुति की है, वह धार्मिक–आस्था को बढ़ाने वाली है।

इसमें नारी ने छल–कपट मय आचरण का सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। बन्धुदत्त जब समुद्र–यात्रा के लिए प्रस्थान करता है, तो उसके साथ भविष्यदत्त भी जाने के लिए तैयार हो जाता है। भविष्यदत्त को जाते देख उसकी सौतेली माँ सुरूपा अपने बन्धुदत्त से कहती है– कि "हे पुत्र, तुम ऐसा उपाय करना, जिससे कि भविष्यदत्त जीवित लौटकर न आ सके।" लेखक ने इस कथन के द्वारा सौतेली माँ के हृदय में वर्तमान ईर्ष्या को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। जहाँ सुरूपा को एक दुष्टा के रूप में चित्रित किया गया है, वहीं कमलश्री एक आदर्श भारतीय नारी के भद्ररूप को लेकर उपस्थित होती है। उसके हृदय में ममता है, पति के प्रति अगाध प्रेम है और है सर्वलोक–हित की भावना। भविष्यानुरूपा भी एक सती साध्वी नारी के रूप में चित्रित हुई है। बन्धुदत्त के द्वारा उसके शीलापहरण सम्बन्धी अथक प्रयास के बाद भी वह भविष्यदत्त का ही स्मरण करती है और वह उसे ही अपना सर्वस्व मानती है।

कवि ने रहस्य और कौतुहल को भी निरन्तर बनाए रखा है। इस कौतुहल को उत्पन्न करने के लिए अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक और अमानवीय तत्वों का उसने स्वाभाविक रूप से समावेश किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोक–कथा के तत्वों की कसौटी पर यह कथा–काव्य खरा उतरता है।

भविष्यदत्त-काव्य के गुण-दोष–

भारतीय अलंकार–शास्त्रियों ने अलंकार, गुण और रीति को काव्य के तत्व माने हैं। उनके अनुसार वही काव्य उत्कृष्ट–कोटि का माना जाता है, जिसमें व्यंग्यार्थ की योजना की गई हो। संस्कृत–अलंकार–शास्त्र में काव्य की जितनी भी परिभाषाएँ उपलब्ध होती है, उनमें दोषरहित, गुणयुक्त, रस और अलंकार समन्वित वाक्यावली को काव्य कहा गया है।

साहित्यदर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक–वाक्य को काव्य कहकर रस को ही काव्य का सर्वस्व माना है।

पाश्चात्य आलोचकों ने भी काव्य में निम्न तत्वों का समावेश आवश्यक माना है:–

1 बुद्धि–तत्व 2 भाव–तत्व 3 कल्पना–तत्व एवं 4 शैली–तत्व। उनके अनुसार बुद्धि–तत्व और हृदय–तत्व या भाव–तत्व की समन्वयात्मक सृष्टि ही काव्य है। ये दोनों ही काव्य के मूलाधार और उपाधार हैं। भाव यदि काव्य के कलेवर का विधान करते हैं, तो बुद्धि–तत्व उस कलेवर को अवलम्ब देता है। इसी प्रकार कल्पना के कारण काव्य में अलंकार और चमत्कार का समावेश होता है। कल्पना की जितनी ऊँची उड़ान काव्य में पाई जाती है, काव्य उतना ही प्रभाव पूर्ण बनता है। शैली और कलापक्ष दोनों ही समानार्थक हैं। काव्य के बाह्य–रूप का सृजन शैली के द्वारा ही होता है। मनोगत भावों को मूर्त्तरूप प्रदान करने वाला यही सहज साधन है। भाव–सौन्दर्य की सार्थकता शैलीगत वैशिष्ट्य में ही हैं। उसके अभाव में भावों का सहज–सौन्दर्य भी विकृत हो जाता है। अतः पाश्चात्य–मान्यता में शैली को भी महत्व दिया जाता है।

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य के गुण और दोष किस रूप में पाए जाते हैं इसका विश्लेषण भी अत्यावश्यक है। भविष्यदत्त–काव्य काव्य–विधा की दृष्टि से महाकाव्य है। इसमें भविष्यदत्त का चरित्र–चित्रण समग्र रूप में आया है। काव्य की कथावस्तु सर्गों में विभक्त है। कवि ने 1513 विविध छन्दों में भविष्यदत्त के चरित्र को अंकित कर दिया है। कथावस्तु के अध्ययन की दृष्टि से इस काव्य को एकार्थ अथवा कथा–काव्य भी माना जा सकता है। कथावस्तु में पूर्ण प्रवाह है। आधिकारिक–कथा भविष्यदत्त से सम्बन्धित है और प्रासंगिक कथाएँ उजाड़–नगर और विविध द्वीप–नगरों का वर्णन, वैदेशिक व्यापार जन्म–जन्मान्तरों की कथाएँ तथा हस्तिनापुर–नगर के नरेश से सम्बन्धित है। अतः कथा का गुम्फन काव्य की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर हुआ है।

सन्दर्भित कथा की समस्त घटनाएँ शृंखलाबद्ध हैं। चरित्र, वार्तालाप, उद्देश्य का गठन कवि ने अपने ढंग से किया है। मानव के छल–कपट आदि के चित्रण के साथ–साथ इसमें मानवता और इसकी संस्थाओं का भी विकास सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है। अतः प्रबन्ध–काव्य के प्रमुख उपकरण वस्तु–व्यापार–वर्णन, संवाद और भावाभिव्यंजना आदि तत्व सुन्दर रूप में प्रकट हुए हैं।

कथा-प्रवाह में दोषानुभूति–

दोषों की दृष्टि से इस काव्य में सबसे बड़ा दोष जन्म–जन्मान्तरों की एकाधिक बार पुनरुक्ति है। इनका अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रस्तुत काव्य में काव्य–तत्व की अपेक्षा कथा–तत्व ही अधिक है। इसमें कथा का जितना विस्तार है, उतना वर्णनों का नहीं। जन्म–जन्मान्तरों के बार–बार कथन से कथा के सरल प्रवाह में रुकावट आती सी प्रतीत होने लगती है।

प्रमुख पात्रों : चरित्र-चित्रण भविष्यदत्त काव्य का नायक-भविष्य दत्त

भविष्यदत्त–काव्य का नायक भविष्यदत्त है। वह आरम्भ से ही विमाता की करतूतों के कारण नाना प्रकार के कष्ट सहन करता है। अतः कष्ट–सहिष्णुता उसके जीवन का प्रधान गुण है। भविष्यदत्त की माता कमलश्री का उसे पूर्ण दुलार प्राप्त है, पर उसे अपने पिता धनपति का स्नेह नहीं मिल पाता। अतः भविष्यदत्त प्रारम्भ से ही मातृभक्त दिखाई देता है। माता के प्रति उसके हृदय में अपार वात्सल्य–भाव और श्रद्धा है। माता भी प्रारम्भ में उसके लालन–पालन की पूर्ण व्यवस्था करती है। कुशाग्र–बुद्धि होने के कारण भविष्यदत्त शीघ्र ही ज्ञानी और विवेकी बन जाता है।

जब वह अपने सोतेले भाई बन्धुदत्त को धनार्जन के लिए विदेश जाते हुए देखता है, तो उसके मन में भी विदेश जाने की इच्छा जागृत हो जाती है और वह अपनी माँ की अनुमति लेकर बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए काँचन–द्वीप चला जाता है। यद्यपि बन्धुदत्त अपने सौतेले भाई भविष्यदत्त से ईर्ष्या करता है, पर उसका ऊपरी व्यवहार बहुत मधुर होता है। समुद्रयात्रा में बन्धुदत्त का जहाज सर्वप्रथम जब मदन–द्वीप में पहुँचता है, तब वहाँ अपने साथियों के साथ वह भ्रमणार्थ उतर जाता है।

कल्पनाओं में डूबा हुआ भविष्यदत्त घूमता हुआ बहुत दूर निकल जाता है, तभी कपटी बन्धुदत्त उसे वहीं छोड़कर अपने जहाजों को लेकर आगे बढ़ जाता है। इस सन्दर्भ में कवि ने भविष्यदत्त के चरित्र पर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला है। कवि उसके धैर्य, शक्ति, साहस और संयम आदि की प्रशंसा करता है। उसके अनुसार भविष्यदत्त के चरित्र में अपूर्व साहस निहित है। वह बड़ी से बड़ी विपत्ति के आने पर भी विचलित नहीं होता। उसकी सूक्ष्म–प्रतिभा तत्काल ही उपाय भी स्थिर कर लेती है।

जब उसने लौट कर देखा कि उसके साथी समुद्री–तट पर नहीं है, तो वह घूमता–घामता एक उजाड़ नगर में पहुँच जाता है और वहाँ एक मन्दिर के भीतर चला जाता है और भगवान की प्रार्थना करने लगता है। उसकी प्रार्थना से प्रभावित होकर वहाँ एक असुर प्रकट होता है, जो पूर्वजन्म का उसका मित्र था। उस असुर ने उसे बताया कि इस नगरी को किसी कारण–विशेष से मैंनें ही नष्ट कर दिया था। यहाँ पर एक राजकुमारी निवास करती है, जिसका नाम भविष्यानुरूपा है। इस राजकुमारी के साथ जिसका विवाह सम्पन्न होगा, वही व्यक्ति यहाँ का राज्य प्राप्त करेगा। राजकुमारी के पास जो अपार सम्पत्ति सुरक्षित है, वह भी उसी को मिलेगी। यह कहकर वही असुर भविष्यदत्त का विवाह उसी राजकुमारी के साथ सम्पन्न कराकर उसे वहाँ का राजा घोषित कर देता है।

भविष्यदत्त का विवाह उसके साथ सम्पन्न होने के कुछ ही दिनों के बाद बन्धुदत्त नाना प्रकार के दुख भोगता हुआ, उसी समुद्री–तट पर वापिस लौटता है जहाँ भविष्यदत्त रुका था। उसे देखकर प्रमुदित भविष्यदत्त ने भाई का यथोचित सम्मान किया। बन्धुदत्त ने भी उसे अपने साथ चलने का आग्रह किया। अतः उसके समस्त मणि–माणिक्य, काँचन आदि बहुमूल्य पदार्थ

जहाज में लाद दिये गए तथा भविष्यानुरूपा को भी उसमें बैठा दिया गया किन्तु भविष्यदत्त जब किसी कार्य से जल–पोत से उतरकर अकेला ही नगर की ओर गया तभी उस कपटी बन्धुदत्त ने अपने जहाजों को प्रस्थान हेतु आदेश दे दिया।

उसके जहाज बहुत तेजी से रवाना हुए और कुछ ही दिनों में वह बन्धुदत्त अपने गृह–नगर हस्तिनापुर भी पहुँच गया और वहाँ आकर उसने घोषित किया कि– "मैंने विदेश–यात्रा में धन–धान्य तो अर्जित किया ही, साथ ही वहाँ से एक राजकुमारी को भी ले आया हूँ।" भविष्यानुरुपा को बन्धुदत्त का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया और उसने व्यथित मन से मौन धारण कर अनशन ठान लिया।

उधर, नवीन विपत्तियों के आने पर भी भविष्यदत्त घबराया नहीं। उसने अपने मित्र यक्षराज का स्मरण किया। उसकी सहायता से वह भी कुछ ही दिनों में उसी के वायुयान से अपने गृह–नगर में लौट आया और उसने साहसपूर्वक हस्तिनापुर–नृपति भूपाल के दरबार में बन्धुदत्त की शिकायत की और अनेक प्रमाण उपस्थित कर भविष्यानुरूपा एवं अपने खोए हुए धन को प्राप्त कर लिया। राजा भूपाल भविष्यदत्त की प्रतिभा और उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या सुमित्रा के साथ उसका विवाह कर अपना आधा राज्य भी उसे दे दिया और बन्धुदत्त को कारागार में बन्द कर दिया।

बहुत वर्षों तक सुखभोग करने के बाद भविष्यदत्त ने प्रवृज्या धारण की और घोर तपश्चर्या कर स्वर्ग प्राप्त किया।

उक्त चित्रण के आधार पर भविष्यदत्त के निम्नलिखित प्रभावक–गुणों पर प्रकाश पड़ता है–

1. वह अपनी माता का परम भक्त और श्रद्धालु है।
2. विद्या, बुद्धि, दया, दाक्षिण्य आदि सज्जनों के योग्य सभी गुण उसमें पाये जाते हैं।
3. उसका हृदय अत्यन्त उदार है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त से भी स्नेह करता है तथा उस पर पूरा विश्वास भी करता है।
4. वह अत्यन्त चतुर, निर्भीक, साहसी और विवेकशील युवक है।
5. विपत्तियों के आने पर भी वह घबराता नहीं, बल्कि उनका सामना करने के लिए तैयार रहता है।
6. सूक्ष्म–प्रतिभा एवं समयोचित कार्य करने की क्षमता उसके रोम–रोम में समाहित है।
7. दूसरों के दोष देखने की अपेक्षा स्वयं आत्मालोचन की उसकी प्रवृत्ति, सहज स्वाभाविक है।
8. वह शत्रु को क्षमा करना भी जानता है तथा परिवार की मर्यादा बनाये रखने के हेतु वह निरन्तर प्रयास करता है।
9. अप्रत्याशित विपुल सम्पत्ति प्राप्त होने पर भी वह किसी से अहंकार नहीं करता। विनय और सेवा करने की प्रवृत्ति उसमें स्वाभाविक रूप में दृश्यमान है।

10. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ का सन्तुलित रूप में सेवन करने की उसकी प्रवृति के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

प्रतिनायक बन्धुदत्त–

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य में बन्धुदत्त को प्रतिनायक अथवा खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथा के प्रारम्भिक चरण की समाप्ति के बाद वह प्रकंट होता है। इस पात्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कथा के विकास के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग सिद्ध हुआ है। यदि इसका उदय न होता तो कमलश्री के घर से निकाल दिए जाने के बाद ही सम्भवतः यह कथा समाप्त हो जाती।

यह बन्धुदत्त प्रारम्भ में तो बड़ा ही संवेदनशील, कुशल, निश्छल एवं प्रतिभा–सम्पन्न युवक के रूप में प्रस्तुत होता है। उसके साथी जब उसे कहते हैं कि "युवावस्था प्राप्त होते ही व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन का उपभोग करना चाहिए, पिता की सम्पत्ति पर निर्भर रहने से लोक में निन्दा होती है।" बन्धुदत्त को भी साथियों की यह सलाह उपयुक्त प्रतीत होती है और वह स्वयं धनार्जन हेतु विदेश–यात्रा की तैयारी करने लगता है।

जब उसकी माँ सुरूपा को ज्ञात होता है कि उसका सौतेला पुत्र भविष्यदत्त भी इसके साथ विदेश–यात्रा में जा रहा है, तभी वह बन्धुदत्त को समझाती है कि "ऐसा उपाय करना, जिससे कि भविष्यदत्त विदेश से वापिस न लौट सके क्योंकि उसके जीवित रहने से पिता की पूरी सम्पत्ति तुम्हें नहीं मिल सकेगी।" दे. 216–217

माँ के समझाते ही बन्धुदत्त का मन कलुषित हो उठता है और वह छल–कपट पूर्वक भविष्यदत्त को मदन–द्वीप में अकेला ही छोड़कर चल देता है। दीर्घकाल के बाद जब बन्धुदत्त पुनः वहाँ वापिस लौटता है और भविष्यदत्त की पत्नी भविष्यानुरूपा के साथ उसकी अटूट सम्पत्ति देखता है, तो पुनः वह भविष्यदत्त को धोखा देकर तथा उसे वहीं छोड़कर भविष्यानुरूपा एवं उसकी सम्पत्ति को लेकर अपने घर की ओर चल देता है।

इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसके कार्य–कलाप प्रमुख रूप से छल–कपट से युक्त दिखाई पड़ते हैं जबकि दूसरी ओर, बन्धुदत्त स्वयं अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ एवं माता के आज्ञाकारी पुत्र के रूप में दिखाई पड़ता है। संगठन–शक्ति एवं साहस भी उसमें कम नहीं। संक्षेप में उसके गुण और दोष निम्न प्रकार रेखांकित किए जा सकते है :–

1. वह अपने माता–पिता का परम भक्त एवं आज्ञाकारी पुत्र है।
2. इष्ट–मित्रों के उचित मार्ग–दर्शन को सहर्ष स्वीकार करने वाला पात्र है।
3. वह संगठन–शक्ति में कुशल तथा समुद्री–यात्रा में निपुण है।
4. विपत्तिकाल में भी वह घबराता नहीं। साहस एवं कुशलता पूर्वक अपने कार्यों को सम्पन्न करने का प्रयत्न करता है।
5. अपने प्रतिद्वन्द्वी भविष्यदत्त के साथ वह निरन्तर छल–कपट करता रहता है।
6. अवसर आने पर वह मिथ्या–भाषण करने से भी नहीं चूकता।

7. वह व्यापार में उतना कुशल नहीं, जितना कि दूसरों की सम्पत्ति को हड़पने में। भविष्यदत्त की पत्नी भविष्यानुरूपा को भी कुत्सित मन से अपनाने का प्रयत्न करने से वह नहीं चूकता।
8. वह निर्लज्ज भी है, राजा के द्वारा सभी के समक्ष अपमानित होकर भी वह लज्जा का अनुभव नहीं करता।
9. अपने छल–कपट एवं दूषित प्रवृत्तियों के कारण उसे शासकीय अपराधी भी घोषित कर कारागृह में डाल दिया जाता है।

उपर्युक्त तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि बन्धुदत्त एक बहुत ही छली–कपटी और दूषित मनोवृत्ति वाला पात्र है। उसका चरित्र तमोगुण से युक्त है।

प्रमुख नारी पात्र–

कमलश्री– यह भविष्यदत्त की तीर्थस्वरूपा जननी एवं नगरसेठ धनपति की परित्यक्ता पत्नी है। कवि ने कमलश्री के जीवन का उज्ज्वल वर्णन किया है। प्रारम्भ से ही वह पतिभक्ता, पति के अनुकूल चलने वाली तथा समर्पित–भावना से उसकी सेवा करने में संलग्न रहती है। किन्तु पुरुष जब विषयान्ध हो जाता है, तब स्वार्थवश पत्नी की भक्ति आदि सद्गुण भी उसकी दृष्टि में दुर्गुण जैसे दिखाई देने लगते हैं। इसी कारण दुर्भाग्य से वह अपने पति के द्वारा घर से निष्कासित, कर दी जाती है और विवश होकर उसे अपने पितृगृह में शरण लेना पड़ती है। पति के दुर्व्यवहार से वह दुखी अवश्य रहती है फिर भी वह उसका अनिष्ट नहीं सोचती। जब बन्धुदत्त एवं धनपति की पोल–पट्टी खुलती है और राजा भूपाल उनके अपराधों की सजा के रूप में उन्हें कारागार में डालकर भविष्यदत्त को भविष्यानुरूपा के साथ विवाह करने की आज्ञा देता है, तब कमलश्री भविष्यदत्त के विवाह के पूर्व धनपति, सुरूपा एवं बन्धुदत्त को कारागार से मुक्त कराती है। इस प्रसंग में उसकी महानता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है, कि उसके चरित्र का गठन भारतीय नारी के आदर्शों के अनुकूल हुआ है, जो अत्यन्त प्रेरक है।

सुरूपा–सार्थवाह धनपति की दूसरी पत्नी है, जिसमें माया, छल–कपट जैसे दुर्गुण कूट–कूटकर भरे हैं। भविष्यदत्त उसे आदर की दृष्टि से देखता है किन्तु वह विदेशयात्रा के समय अपने पुत्र बन्धुदत्त को एकान्त में बुलाकर उससे कहती है कि यदि यह भविष्यदत्त जीवित रहा तो यह तुम्हारे पिता की आधी सम्पत्ति का स्वामी बन जायगा। अतः जैसे भी हो तुम विदेश में ऐसा उपाय करना जिससे कि वह वहाँ से वापिस न लौट सके :–

एषस्त्वंशमुद्दामः स्वामी तव पितुः श्रियः।
श्रेष्ठोऽ निष्टकरः क्रूरः कुलक्रम समागतः।।
इति मत्वा तथा मार्गे कर्तव्यं त्वयका यथा।
भूयो मन्मस्तके शूला न भवेद् दृष्टिगोचरः।। 215–216

अर्थात् हे पुत्र बन्धुदत्त, यह तुम्हारा सौतेला भाई भविष्यदत्त तुम्हारे पिता की सम्पत्ति का अनिवार्य रूप से स्वामी है तथा कुलक्रमानुसार क्रूर एवं सबसे बड़ा अनिष्टकारी है।

ऐसा समझकर हे पुत्र, मार्ग में तुझे इस प्रकार का कार्य करना चाहिए जिससे कि आगे फिर कभी मेरे मस्तिक में पीड़ा उत्पन्न न हो अर्थात् उस भविष्यदत्त को तुम समुद्री–मार्ग में ही मार डालना।

बन्धुदत्त इसे स्वीकार कर तदनुसार कार्य करता भी है। किन्तु अन्त में सुरूपा को इस छल–कपट के दुष्परिणाम स्वयं ही भोगने पड़ते हैं।

ग्रन्थकार–परिचय–

भविष्यदत्त–काव्य, जिसका कि अपरनाम श्रुतपंचमी–व्रत–विधान–माहात्म्य भी है, उसके प्रणेता का नाम महाकवि विबुध–श्रीधर है। संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश–भाषा के प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य में इस नामके आठ कवियों के नाम उपलब्ध होते हैं। यथा–

1. पासणाहचरिउ अपभ्रंश के प्रणेता बुधश्रीधर–
2. वड्ढमाण–चरिउ अपभ्रंश के प्रणेता विबुध श्रीधर–
3. सुकुमालचरिउ अपभ्रंश के प्रणेता विबुध श्रीधर–
4. भविसयत्त–कहा अपभ्रंश के प्रणेता विबुध श्रीधर–
5. भविसयत्त–पंचमी–चरिउ अपभ्रंश के प्रणेता विबुध श्रीधर–
6. भविष्यदत्त–काव्य संस्कृत के प्रणेता विबुध श्रीधर–
7. विश्वलोचन–कोश संस्कृत के प्रणेता कवि श्रीधर, तथा–
8. श्रुतावतार–कथा संस्कृत के प्रणेता विबुध श्रीधर–

उक्त सभी कवियों की ससन्दर्भ विस्तृत चर्चा मैंने अपने "वड्ढमाणचरिउ" विबुध श्रीधर कृत, 13 वीं सदी, जो कि भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित सन् 1975 है, उसकी विस्तृत प्रस्तावना पृ.4–7 में की है। अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति न कर प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य के प्रणेता विबुध श्रीधर के परिचय की चर्चा करता हूँ।

काल–निर्णय–

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य के प्रणेता महाकवि विबुध श्रीधर के सर्वांगीण जीवन–परिचय एवं व्यक्तित्व की जानकारी के लिये किसी भी प्रकार की सन्दर्भ–सामग्री उपलब्ध नहीं है। महाकवि ने अपनी उक्त रचना की आद्य एवं अन्त्य–प्रशस्ति में भी कुछ नहीं लिखा। प्रत्येक सर्ग की अन्तिम पुष्पिका में ग्रन्थ–प्रेरक लम्बकंचुक–कुलोत्पन्न साहू लक्ष्मण के नाम के साथ अपने नामका उल्लेख अवश्य किया है इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का परिचय नहीं दिया है। हाँ, साहू लक्ष्मण की साहित्यरसिकता, सौमनस्य एवं पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकारों के प्रति उसकी विनम्रता की भावना की झलक अवश्य प्रस्तुत की है।

यह सचमुच ही बड़े आश्चर्य का विषय है कि जब मध्यकालीन कवियों ने अपनी कृतियों के आदि एवं अन्त में अपने विस्तृत आत्म–परिचय के साथ–साथ विविध विषयक ऐतिहासिक

तथ्यों की सूचनाएँ दी हैं, तब प्रस्तुत ग्रन्थ के महाकवि विबुध श्रीधर ने आत्म–परिचय आदि क्यों प्रस्तुत नहीं किया ? फलस्वरूप हमारी जिज्ञासा जिज्ञासा, ही बनी रह जाती है। चिन्तन करने से निष्कर्ष यही निकलता है कि यह महाकवि उन पुरातन कवियों की श्रेण्यकोटि का था, जिसकी प्रतिभा तो अपूर्व और बहुआयामी थी, किन्तु वह आत्म–ख्याति की कामना से सर्वथा विरत था।

यह अवश्य है कि कवि ने भले ही आत्म–परिचय सम्बन्धी सन्दर्भ–संकेत न दिये हों किन्तु ग्रन्थ–प्रेरक साहू लक्ष्मण के कुल का नाम लम्बकंचुक बतलाते हुए उसे वेदोमयूता के निवासी होने के संकेत दिए हैं। बहुत सम्भव है कि वह वेदोमयूता वर्त्तमान कालीन बदायूँ यू.पी. का पूर्ववर्त्ती नाम रहा हो ? क्योंकि वर्तमान में लम्बकंचुक (लमेंचू) जैन जाति के परिवारों का सामूहिक निवास उसी जनपद में अधिक मात्रा में प्राप्त है।

कवि ने साहू लक्ष्मण की भावात्मक प्रशंसा में कहीं भी कंजूसी नहीं की। उसने प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ एवं अन्त में उसकी पर्याप्त प्रशंसा की है। एक स्थान पर उसने लिखा है–

.... प्राप्तचिन्तित समस्त सुखार्थाः,
शुभ कीर्त्तिधवली कृत लोकः।। 15/54 पृ. 319

अर्थात् अपनी उज्ज्वल धवलकीर्त्ति से लोक मानव–जगत् की श्रेष्ठता तथा सभी के लिये अभीप्सित सुख–साधन प्रदान करने वाले साहू लक्ष्मण सभी श्रेष्ठियों (समृद्ध सेठों में) श्रेष्ठ–प्रधान है।

प्रतिलिपिकार-प्रशस्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिलिपि-काल–

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य की प्रनिलिपिकार–प्रशस्ति में इस रचना का प्रतिलिपि–काल वि. सं. 1607 चैत्र–शुक्ल–पंचमी तिथि दिया गया है। अतः इसी सन्दर्भ के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणेता महाकवि विबुध श्रीधर वि. सं. 1607 (सन् 1550 ई.) के पूर्व कभी हो चुका था।

विबुध श्रीधर के अनुसार समुद्री-यात्रा के लिये अनिवार्य-कार्य एवं साधन-सामग्रियाँ–

समुद्री–यात्रा के लिये भविष्यदत्त–काव्य में निम्न महासार्थवाहों के लिये निम्न साधन अनिवार्य बतलाये गये हैं–

1. यात्रा–हेतु ले जाये जाने वाले जल–पोतों की सफाई तथा उनके आवश्यक अंगों पर तैलादि द्वारा सम्मार्जन 229
2. ग्रह–नक्षत्रों के ज्ञाता शुभ–मुहूर्त्त के संशोधक, पूजा–पाठ कराने के लिये दक्ष–पण्डित की नियुक्ति।
3. जल–पोतों में उसके नियन्त्रकों संचालक–*Drivers)* के लिये एक उच्च–स्तम्भ

का निर्माण, जिस पर खड़े रहकर वह चतुर्दिक वायुमण्डल या अन्य परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त कर सके।

4. मजबूत पाल को बाँधकर चतुर्दिक ध्वजाओं का फहराया जाना, जिससे वायु की दिशा एवं तीव्रता की जानकारी प्राप्त हो सके।
5. जल–पोतों को रोकने के ब्रेक के रूप में प्रयुक्त के लिये मोटी–मोटी लोहे की ठोस साँकलें तथा मुद्‌गरों लंगरों को यथास्थान सुरक्षित करना।
6. प्रस्थान या स्थगन सूचक मुख्य पोत–ध्वज का लहराया जाना।
7. भोजन बनाने हेतु अग्नि एवं पर्याप्त मात्रा में ईंधन, पेय–जल की सुरक्षित सुव्यवस्था तथा अनुभवी चिकित्सक के साथ आवश्यक औषधियाँ।
8. समुद्री–तूफानों से सुरक्षित बचने के लिये संसाधनों एवं कुशल विश्वस्त दक्ष–लोगों को साथ में ले जाने हेतु नियुक्तियाँ श्लोक 229–235

कृतज्ञता ज्ञापन–

प्रस्तुत भविष्यदत्त काव्य की पाण्डुलिपि अत्यन्त जीर्ण–शीर्ण, तथा उसके कुछ पृष्ठ धूमिल एवं कीटकवलित हो चुके थे। उसका प्रतिलिपिकार्य दुर्वीन की सहायता से ही सम्भव हो सका था। चूँकि यह पाण्डुलिपि दुर्लभ एवं ऐतिहासिक मूल्य की थी, अतः अपने नियमित कार्यों को स्थगित कर मैंने प्राथमिकता के आधार पर उसकी सुरक्षा की दृष्टि से सम्पादन अनुवादादि कार्य करने का दृढ संकल्प किया और विविध विघ्नों के बीच भी उसे साकार किया जा सका।

तत्पश्चात् उसकी प्रेस–कापी तैयार कर प्रकाशन की व्यवस्था की दूसरी समस्या उठ खडी हुई। इसके लिये चिन्ता ग्रस्त था किन्तु जिनवाणी–भक्त आदरणीय निर्मलकुमार जी सेठी (अ.भा. दिग. जैन महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष) का उसकी प्रेस कापी हेतु अप्रत्याशित रूप में अनुदान–राशि के साथ–साथ बड़ा ही भावोत्तेजक सौहार्दपूर्ण पत्र भी मिला, जिसने मेरी निराशा समाप्त की और प्रेरणा प्रदान की कि मैं अपनी प्राचीन पाण्डुलिपियों के उद्धार एवं सम्पादनादि कार्यों को जारी रखूँ।

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य के प्रकाशन की व्यवस्था भी उन्होंने ही जैन महासभा की ओर से की है। उनके इस उदार सौजन्य के प्रति अपना सादर आभार व्यक्त करता हूँ तथा विश्वास रखता हूँ कि आगे भी उनका इसी प्रकार से प्रेरक सहयोग मिलता रहेगा। पाण्डुलिपि के मूलभाग एवं उसके हिन्दी अनुवाद का टंकण–कार्य डॉ. सत्यप्रकाश जैन के सहयोग से श्री दिनेश शर्मा (दिल्ली) द्वारा तथा प्राक्कथन, विषयानुक्रमणिका और शब्दानुक्रमणिका का टंकण कार्य श्री प्रभाती लाल मीणा (नोएडा) द्वारा सम्पन्न किया गया। उनके इस सहयोग के लिये आभारी हूँ।

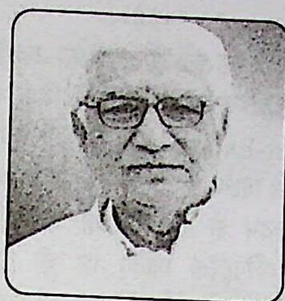
शब्दानुक्रमणिका–संकलन एवं प्रूफ–संशोधन का श्रमसाध्य कार्य प्रो. डॉ. विद्यावती जैन, फोटोग्राफी का कार्य चि. पुष्पभद्र एवं रश्मि जैन (दोनों इंजिनियर्स) द्वारा सम्पन्न किये गये। उनकी उस साहित्य–सेवा के लिये सस्नेह धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सावधानी पूर्वक अशुद्धियों के निराकरण का पूर्ण प्रयत्न किया गया है फिर भी कुछ अशुद्धियों का रह जाना सम्भव है। अतः उनके लिये अपने माननीय पाठकों से सादर क्षमा–याचना करते हुए उनसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि उनकी सूचना मुझे देने की महती कृपा करें जिससे कि अगले संस्करण में उनका सुधार किया जा सके। सधन्यवाद –

विनम्र साहित्य सेवक

महावीर जयंतीः 2015

–राजाराम जैन
बी–5/40 सैक्टर–34 धवलगिरि
पो. नोएडा (यू.पी.)–201307
मो. 09871535222



प्रकाशकीय

प्राचीन हस्तलिखित पोथियों अर्थात् पवित्र–ग्रन्थों को प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्याविदों ने "पाण्डुलिपि" की संज्ञा प्रदान की है। भारत में उनकी संख्या लाखों में बतलाई गई है। इस दृष्टि से भारत को विश्व में पाण्डुलिपियों का सर्वश्रेष्ठ एवं समृद्ध–भण्डार माना गया है। समय–समय पर उनका बहिर्गमन भी होता रहा है। उसका एक आश्चर्यजनक उदाहरण यह है कि कुछ सर्वेक्षणों के अनुसार, प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत आदि भाषाओं की लगभग 0127000 (एक लाख सत्ताईस हजार) पाण्डुलिपियाँ विदेशों के कोनों–कोनों में बिखरी पड़ी हैं। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उनमें से सहस्राधिक जैन–पाण्डुलिपियाँ भी होंगी। किन्तु निश्चित जानकारी तो तभी मिल सकेगी जब पाण्डुलिपियों की लिपि, भाषा एवं उनके विषय का कोई जानकार उनका भलीभाँति पारायण कर उनकी सूची बनाकर मूल्यांकन करें। अब जैन–समाज का यह दायित्व है कि किसी विषय–विशेषज्ञ को विदेशों में भेजकर उसकी सूचियाँ तैयार कर उन्हें प्रकाशित करावे।

अभी कुछ समय पूर्व पंजावी युनिवर्सिटी, पटियाला (पंजाब) में अपने एक शोधपरक व्याख्यान में प्रो. डॉ. राजाराम जी जैन ने रूस, फ्रांस, जर्मनी, तुर्किस्तान, अमेरिका, मंगोलिया, तिब्बत, चीन आदि देशों में सुरक्षित कुछ जैन–पाण्डुलिपियों के नामोल्लेख किये थे और यह भी बतलाया था कि तुर्किस्तान में ब्राह्मी एवं खरोष्ठी की कुछ पाण्डुलिपियाँ भी सुरक्षित हैं। ये सूचनाएँ सचमुच ही जिनवाणी की लोकप्रियता और व्यापकता की प्रतीक हैं किन्तु यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि ये पाण्डुलिपियाँ विदेशों में पहुँची कैसे ?

देव, शास्त्र एवं गुरु की अहर्निश आराधना–सेवा जैन–समाज की अपनी विशेष पहचान है। जैन समाज शास्त्र–स्वाध्याय तो नियमित रूप से करती ही आ रही है, उनकी सुरक्षा का भी ध्यान रखती रही है और इस प्रकार श्रुतपंचमी–पर्व की उपासना को सार्थक करती आ रही है। भारत–व्यापी सहस्रों जैन शास्त्र भण्डार इसके अनुपम उदाहरण हैं। जैन समाज ने पोथियों (पाण्डुलिपियों) को तपःपूत आचार्य–लेखकों की प्रतिभा की अमूल्य विरासत मानकर बिना किसी सम्प्रदाय या पन्थ–विशेष के उन्हें सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि जैन–शास्त्र भण्डारों में कुछ जैनेतर पाण्डुलिपियाँ भी सुरक्षित मिली हैं।

प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य प्रमुख रूप से तो श्रीश्रुत–पंचमी–व्रत के पालन के सुफल के कथन का काव्य है, फिर भी प्रासंगिक रूप में उसमें वैदेशिक–व्यापार (Foreign-Trade) तथा आयात–निर्यात (Import-Export), आदि की भी चर्चा की गई है, जो मध्यकालीन भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसके लेखक महाकवि विबुध श्रीधर ने प्रस्तुत चरित–काव्य के माध्यम से उक्त तथ्यों के अतिरिक्त समकालीन धार्मिक, सांस्कृतिक–सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन पर भी रोचक प्रकाश डाला है, जो स्वाध्यायप्रेमियों के लिये तो शिक्षाप्रद होगा ही, इतिहास एवं संस्कृति के शोधार्थियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. डॉ. राजाराम जैन प्राचीन अप्रकाशित ग्रन्थों के उद्धार, सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षा आदि के कार्यों में पिछले लगभग पाँच दशकों से निष्ठापूर्वक कार्यरत रहे हैं। महाकवि रइधू एवं विबुध श्रीधर की जीर्ण–शीर्ण दर्जनों पाण्डुलिपियों के उद्धार एवं सम्पादनादि कार्य के कारण देश–विदेश में उनकी ख्याति फैली हुई है। इसी विशेषता के कारण उन्हें सन् 2000 ई. में सर्वप्रथम राष्ट्रपति पुरस्कार–सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

अ. भा. दिग. जैन श्रुतसंवर्धिनी महासभा का मूल उद्देश्य रहा है कि ऐतिहासिक मूल्य की दुर्लभ अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का उद्धार एवं प्रकाशन करना तथा इस विषय के विशेषज्ञ विद्वानों को प्रेरित, उत्साहित एवं सम्मानित करना। अतः हमारी उक्त संस्था ने प्रो. डॉ. राजाराम जैन को तदर्थ प्रेरित किया और उसीका सुपरिणाम है प्रस्तुत भविष्यदत्त–काव्य।

इस श्रमसाध्य महनीय कार्य के लिये महासभा प्रो. डॉ. राजाराम जैन के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है और विश्वास है कि भविष्य में भी वे इसी प्रकार के सत्कार्य कर महासभा के उद्देश्यों की पूर्त्ति–हेतु अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते रहेंगे। सधन्यवाद,

महावीर जयन्ती : 2015

निर्मलकुमार सेठी
(राष्ट्रीय अध्यक्ष–अ.भा.दिग.जैन महासभा)
नई दिल्ली

विषयानुक्रमणिका–

पहला–सर्ग (श्लोक 01–140)

पृष्ठ संख्या

दूसरा–सर्ग (श्लोक 141–272)

तीसरा–सर्ग (श्लोक 273–398)

चौथा–सर्ग (श्लोक 399–489)

पाँचवाँ–सर्ग (श्लोक 490–595)

छठा–सर्ग (श्लोक 596–717)

सातवाँ–सर्ग (श्लोक 718–812)

आठवाँ–सर्ग (श्लोक 813–909)

नौवाँ–सर्ग (श्लोक 910–999)

दसवाँ–सर्ग (श्लोक 1000–1110)

चौदहवाँ–सर्ग–1375–1459

महाकवि विबुध-श्रीधर विरचितम्
भविष्यदत्त-काव्यम्

पहला सर्ग

1 श्रीमन्तं त्रिजगन्नाथं नमामि वृषभं जिनम्।
इन्द्रादिभिः सदा यस्य पादपद्मद्वयी नता।। 1।।

तीनों लोकों के स्वामी उन श्रीमान् **वृषभजिनेन्द्र** को मैं (विबुध श्रीधर) प्रणाम करता हूँ, जिनके चरणकमलद्वय इन्द्रादि देवों द्वारा वन्दित रहते हैं।

2 यस्याभाति स वः पातु शुभश्चन्द्रप्रभो जिनः।
शशी सिंहासने व्योम्नः सेवां कर्त्तुमिहागतः।। 2।।

वे शुभकारक **चन्द्रप्रभु** भगवान्-जिनेन्द्र, आप सभी की रक्षा करें, जिनके सिंहासन पर सेवा करने के लिए आकाश से उतरा हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है।

3 शान्तिं करोतु भव्यानां स शान्तिः षोडशो जिनः।
यन्न जेतुमलं मारो जिता येनाऽरयोऽखिलाः।। 3।।

शान्ति नामके वे सोलहवें जिनेन्द्र भव्यों को शान्ति प्रदान करें, जिन्हें कामदेव भी जीतने में असमर्थ रहा और जिन्होंने कर्म रूपी समस्त शत्रुओं को पराजित कर दिया।

4 उपसर्गं महाघोरं विधाय प्रणतिं गतः।
कमठोऽप्यसुरो यस्य सोऽव्यात् पार्श्वः सदैव वः।। 4।।

घोर उत्पात करके कमठ नामक असुर भी जिनकी शरण में उपस्थित हुआ, वे भगवान् **पार्श्वदेव** निरन्तर तुम्हारी रक्षा करते रहें।

5 तपः श्रीर्जगृहे येन कुमारेणापि दुर्वहा।
जगे येन द्विधा धर्मः स वीरः पातु वः सदा।। 5।।

कुमारावस्था में ही जिन्होंने दुःसाध्य तपोलक्ष्मी को ग्रहण किया तथा जिन्होंने सागार एवं अनगार रूप दो प्रकार के धर्म बतलाए, वे **भगवान् महावीर** भी निरन्तर आप लोगों की रक्षा करते रहें।

6 दर्शन-ज्ञान-चारित्ररत्नत्रितयमुत्तमम्।
नमाम्यसारसंसारासातसन्ततिसातनम्।। 6।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप तीन उत्तम रत्नों (रत्नत्रय) को भी मैं प्रणाम करता हूँ, जो असार संसार रूप तमः समुदाय के विनाशक हैं।

7 सारदा शारदादेवी शारदाभ्रसमप्रभा।
रजो विधूय मातेव मतिं तीक्ष्णां तनोतु मे।। 7।।

शरत्कालिक मेघ के समान शुभ्रकान्ति वाली और सदैव बल प्रदान करने वाली **माँ सरस्वती**, मेरे रजोगुण को दूर कर मेरी बुद्धि को तीक्ष्ण बना दे। ऐसी मैं (लेखक-कवि) विनम्र प्रार्थना करता हूँ।

8 यज्जिनेन्द्रमुखोद्गीतं यद् गणेश प्रकाशितम्।
यन्मुनीन्द्रगणैर्ग्रन्थे ग्रथितं ग्रन्थवेदिभिः।। 8।।

जो (चरित) जिनेन्द्र के मुख द्वारा गाया गया है, जो **गणेशजी (गणधर देव)** के द्वारा प्रकाशित किया गया है, शास्त्रज्ञ तथा मुनीन्द्रगण जिसके ग्रन्थकर्ता थे, उनके आधार पर ही प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रथित किया जा रहा है।

9 श्रीमद्वेदोमयूतायां स्थितेन नयशालिना।
श्रीलम्बकञ्चुकानूकनमोभूषणभानुना।। 9।।

10 प्रसिद्धसाधुधामैकतनुजेन दयालुना।
प्रवरोपासकाचार विचारार्हतचेत्रसा।। 10।।

जिसने वेद-वेदांगों का अध्ययन किया है, अथवा जो वेदोमयूता (बदायूँ?)

नामकी नगरी में स्थित है और जो नय-शास्त्रज्ञ है, जो आकाश के भूषण भानु की कनी (कण) किरण के समान तेजस्वी है, ऐसे **लम्बकञ्चुक – लमेचू** जाति के सुप्रसिद्ध साधु-चरित वाले, दयालु, उपासकाचार के प्रवर साधक और अरिहन्त-देव के विचारों में चित्तवृत्ति वाले हैं तथा जो—

11 **गुरुदेवार्चना दानध्यानाध्ययनकर्म्मणा।**
साधुना लक्ष्मणाख्येन प्रेरितो भक्तिसंयुजा।। 11।।

गुरु और देवों की पूजा, दान, ध्यान और अध्ययन-कर्म में निरत रहने वाले, साधु स्वभावी, परमभक्त **लक्ष्मण** द्वारा प्रेरित होकर—

12 **तदहं शक्तितो वक्ष्ये चरितं दुरितापहम्।**
श्रीमद्भविष्यदत्तस्य कमलश्री-तनूभुवः।। 12।।

मैं (कवि श्रीधर) कमलश्री के पुत्र श्रीमान् **भविष्यदत्त** के पापहारी-चरित का अपनी मति तथा शक्ति के अनुसार वर्णन करने जा रहा हूँ।

13 **ममोपरोधतः सन्तः शृण्वन्तु स्थिरमानसाः।**
निःश्रेयसाय मुञ्चन्तु खलभावं खला हृदः।। 13।।

मेरे अनुरोध से अचलचेता सन्त (सज्जन) लोग (इस चरित को) सुनें और सभी के कल्याणार्थ दुष्टलोग भी अपनी दुष्टता का हृदय से परित्याग कर दें।

कथा-प्रारम्भ : जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-वर्णन

14 **अथात्र प्रथमे द्वीपे जम्बू-वृक्षोपलक्षिते।**
द्विचन्द्रादित्यसद्दीपप्रदीपके सुरभूभृतः।। 14।।

जामुन के वृक्षों से युक्त तथा जहाँ चन्द्रद्वय और सूर्यद्वय सुन्दर दीपक के समान चमकते हैं, उसी प्रथम **जम्बूद्वीप** में **सुमेरु पर्वत** के —

कुरुजांगल-देश का वर्णन

15 दक्षिणस्यां दिशि क्षेत्रे विस्तीर्णेभरताभिधे।
कुरुजाङ्गलनामास्ति विषयों विषयार्पकः।। 15।।

—दक्षिणी-भाग में, **भरत** नाम के विस्तृत क्षेत्र में सांसारिक ऐश्वर्य-भोगों को प्रदान करने वाला **कुरुजांगल** नामका एक देश है।

16 यत्र पद्माकराः पद्मैर्न रेजुर्विपुलाः परम्।
हंसैश्च चारुचञ्च्वग्रे त्रोटिताम्बुजकन्दलैः।। 16।।

जहाँ के असंख्य तालाब केवल कमल-पुष्पों से ही सुशोभित नहीं रहते थे, बल्कि मनोहर चंच्वग्र से कमलनाल को कुतरने वाले हंसों से भी सुशोभित रहते थे।

17 न यत्र मोहयामास केवलं क्षेत्रपालिनी।
पान्थानां निकरं बाला प्रपायाश्चापि पालिनी।। 17।।

जहाँ पथिकसमुदाय को मात्र क्षेत्रपालिनी (खेत की रखवाली करने वाली रमणी) ही मोहित नहीं करती थी, बल्कि प्याऊ-घरों में रहने वाली बालाएँ भी पथिकों को आकर्षित करती थीं।

18 नेतिभिर्दूषिता यत्र ब्रीहयः क्षेत्रसंस्थिताः।
परचक्रभयाच्चापि पलायन्ते न च प्रजाः।। 18।।

जहाँ खेत में लगी हुई फसलें ईति से प्रभावित नहीं होती थीं तथा प्रजाएँ शत्रु-समूह से भयभीत होकर पलायन नहीं करती थीं और—

19 वन्येभा यत्र निघ्नन्ति नितम्बान्यवनीभृताम्।
मत्वा प्रतिगजान् कोपान्मदान्धाः किं न कुर्वते।। 19।।

जहाँ के वनैले हाथी पर्वतीय टीलों को विरोधी हाथी समझकर क्रोध से प्रहार करते रहते हैं। सच ही है, मदान्ध लोग भला क्या-क्या नहीं कर डालते?

20 दुःखमातङ्कदुर्भिक्षरोगशोकग्रहादिजम्।
न जानन्ति प्रजा यत्र सुखाम्भोनिधिमध्यगाः।। 20।।

सुख-समुद्र में तैरती हुई जहाँ की प्रजाएँ आतङ्क, दुर्भिक्ष, रोग, शोक तथा ग्रह आदि से उत्पन्न दुःख से यत्किञ्चित् भी परिचित नहीं हैं।

21 समूषुः श्रावका यत्र जिनयात्रापरायणाः।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां विचाराहितचेतसः।। 21।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चिन्तन में आसक्त चित्त वाले जहाँ के श्रावक लोग सदा जिनयात्रा में तत्पर रहते हुए निवास करते थे।

22 शालिगन्धसमाकृष्टषट्पदालिभिरावृताः।
सभूषणा इवाभान्ति यत्र सर्वा दिगाङ्गनाः।। 22।।

शालि (धान्य) की गंध से आकृष्ट भ्रमरपंक्तियों से व्याप्त दिशारूपी रमणियाँ जहाँ आभूषणों से अलंकृत षोडशी रमणियों के समान सुशोभित रहती थीं।

23 रेजिरे यत्र पन्थानः सङ्कुलाः फलितैर्नगैः।
अनङ्गीकृतपाथेयैः पथिकैः परिसेविताः।। 23।।

पाथेय (कलेवा) रहित पथिकों से परिसेवित जहाँ के मार्ग, फले हुए वृक्षों से युक्त होने के कारण अत्यन्त शोभा पाते थे।

24 वनानि यत्र शोभन्ते बलिष्ठाङ्गैर्गवां कुलैः।
गम्भीरमधुरध्वानबधिरीकृतदिङ्मुखैः।। 24।।

जहाँ के जङ्गल गम्भीर और मधुर आवाज से दिशाओं को बधिर बना देने वाले तथा बलिष्ठ अङ्ग वाले बैलों एवं गायों से सुशोभित रहते थे।

25 अपगा यत्र राजन्ते पद्मकिञ्जल्करञ्जिताः।
स्वकान्तसन्निधिं यान्त्यो भवेयुः का न रञ्जिताः।। 25।।

जहाँ की नदियाँ कमल की केसर से रंगीन होकर सुन्दर लगती थीं।

भला वल्लभ के समीप जाती हुई कौन (रमणी) हर्षित नहीं होगी?

26 पुण्ड्रेक्षुदण्डनिर्यातरसपानप्रतर्पिताः।
न यत्र पथिकाः क्वापि प्रतर्षपरितापिताः।। 26।।

पुण्ड्र नामक इक्षुदण्ड से निकले हुए रस के पीने से सन्तुष्ट जहाँ के पथिक कभी भी प्यास से दुःखी नहीं होते थे।

27 यत्र नास्ति प्रदेशोऽसौ यो न चैत्यालयैर्युतः।
चैत्यालयोऽप्यसौ नास्ति यो मुनीन्दैर्न भूषितः।। 27।।

वहाँ कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं था, जहाँ चैत्यालय न हो तथा कोई भी ऐसा चैत्यालय नहीं था, जो मुनीन्द्रों से अलंकृत न हो।

28 मुनिनाथोऽप्यसौ नास्ति यो नोपासकबोधकः।
उपासकोऽप्यसौ नास्ति यो न भक्तिसमन्वितः।। 28।।

वहाँ ऐसे कोई भी मुनिनाथ नहीं थे, जो उपासकों को प्रतिबोधित न करते हों और कोई उपासक भी ऐसा नहीं था, जो भक्तिभाव से समन्वित न हो।

29 भक्तिभावोऽप्यसौ नास्ति यो न मायाविवर्जितः।
इत्यादिगुणसंयुक्तो वियुक्तो विपदां सदा।। 29।।

वह भक्ति-भावना भी ठीक नहीं, जो माया से हीन न हो। इस तरह के गुणों से युक्त वहाँ के लोग सदा विपत्तियों से दूर रहते थे।

हस्तिनापुर — नगर-वर्णन

30 हस्तिनाख्यं पुरं तत्र वसतिस्म निराकुलम्।
नानादेशागतानेकनरसंतानसंकुलम्।। 30।।

ऐसे उस (कुरुजाङ्गल) देश में हस्तिनापुर नामका एक परम शान्त नगर था, जहाँ विभिन्न देशों से आए हुए लोगों का समुदाय निवास करता था।

31 सौधाग्रलग्न - माणिक्यरोचिरुद्योताम्बरम्।
समुत्तुङ्गैः प्रजाचेतश्चोरणैस्तोरणैर्व्वरम्।। 31।।

जो (हस्तिनापुर) अट्टालिकाओं के अग्रभाग में लगे माणिक्यों के प्रकाश से आकाश को प्रकाशित करता था तथा जनमन को हरण करने वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणों से श्रेष्ठ था।

32 स्फटिकाश्ममयेदत्तकपाटेऽपि गृहे बहिः।
चलद्भिर्दृश्यते यत्र सबधूको जनो जनैः।। 32।।

जहाँ, अपने घर के बाहर में चलते हुए लोग, स्फटिक मणि से निर्मित दूसरों के घरों के किवाड़ बंद रहने पर भी उनके भीतर स्थित रमणियों के साथ युवकों को देख लेते थे।

33 यत्र प्रसूनगन्धान्धाः प्रधावन्तो मधुव्रताः।
गगने रेजुरुष्णांशोर्भयादिव तमोलवा।। 33।।

जहाँ आकाश में पुष्पगंध से अंधे होकर दौड़ते हुए भ्रमर ऐसे सुशोभित होते थे मानों सूर्य से भयभीत अंधकार के टुकड़े ही सुशोभित हो रहे हों।

34 नरगीतानि गीतानि समाकर्ण्य समन्ततः।
मेनिरे न तृणाय स्वं सततं यत्र किन्नराः।। 34।।

जहाँ लोगों के द्वारा गाए गए मनोहारी-गीतों को सुनकर सर्वत्र ही किन्नर लोग अपने को निरन्तर तुच्छ समझते रहते थे।

35 क्वचित्तूर्यध्वनिं श्रुत्वा तत्रसुस्तुरगव्रजाः।
क्षोणीतलं खनन्तिस्म खुराग्रैरुग्रहेषिताः।। 35।।

कहीं तो नगाड़े की आवाज सुनकर घोड़े डर जाते थे और हिनहिनाते हुए वे अपने खुराग्रों से पृथ्वीतल को खोदने लगते थे।

36 यत्रोज्जगर्जुरुत्तुङ्गा गजा गम्भीरनादिनः।
अजस्रदानधाराभिः सततं कृतकर्दमाः।। 36।।

जहाँ ऊँचे और गम्भीर-ध्वनि वाले तथा अपनी अजस्र मदधारा से

कीचड़ उत्पन्न कर देने वाले हाथी सदा चिंघाड़ते रहते थे।

37 यत्र मङ्गलशब्देषु प्रदत्तश्रवणाभ्रशम्।
क्रीडां कर्त्तुं समायाता न प्रजग्मुर्दिवौकसः।। 37।।

जहाँ क्रीड़ा-विहार करने के लिए आए हुए देव, मङ्गल-शब्दों के निरन्तर श्रवण करने के कारण पुनः (स्वर्ग) नहीं लौटते थे।

38 यत्र जैनं गृहं प्राप्योपासका यतिवक्त्रतः।
शुश्रूषुर्दशधाधर्मं स्वकर्मक्षयहेतवे।। 38।।

जहाँ उपासक लोग जैनगृह (जैन मंदिर) में जाकर यतियों (मुनियों) के मुख से अपने कर्मक्षय के लिए दस प्रकार के धर्मों का श्रवण किया करते थे।

39 छिद्यन्ते स्म सुपत्राणि व कर्णकरनासिकाः।
महापुंसां कथा यत्र क्रियन्ते स्म न पापिनाम्।। 39।।

जहाँ अच्छे-अच्छे (उपयोगी) पत्ते तो तोड़े जाते थे, किन्तु किसी के कान, हाथ एवं नाक तोड़ने की चर्चा भी नहीं होती थी। और जहाँ निरन्तर ही महापुरुषों की कथाएँ ही कही जाती थीं, पापिजनों की नहीं।

40 स्मर्यते सदा देवो न कामिन्या मुखं जनैः।
प्रकाशते स्म शास्त्रार्थों न तु गुह्यं परैर्वृतम्।। 40।।

जहाँ के लोग निरन्तर ही इष्टदेव का स्मरण तो करते थे, कामिनियों के मुख का नहीं। दूसरों के साथ शास्त्रार्थों का प्रकाशन तो होता था किंतु गोपनीय चरित्रों का नहीं।

41 विवर्द्धते स्म सद्धर्मो न वैरं सह सज्जनैः।
व्यसनानि स्म मुच्यन्ते न कदाचित्कुलक्रमा।। 41।।

जहाँ सदैव सद्धर्म की वृद्धि तो होती थी, किन्तु सज्जनों के साथ शत्रुता की वृद्धि नहीं। जहाँ सदैव दुर्व्यसन का परित्याग तो होता था, किंतु कुलक्रम का कभी भी त्याग नहीं किया जाता था।

42 **अन्नदानादिदानानि दीयन्ते स्म पलानि नो।**
गृह्यन्ते स्म गुरोर्वाचः परेषां न धनानि वै।। 42।।

जहाँ दान में निरन्तर अन्न ही दिए जाते थे, माँस नहीं। मात्र गुरुवचन ही स्वीकरणीय थे, किन्तु दूसरे का धन कोई भी ग्रहण नहीं करता था।

43 **वितन्यते यशो नित्यं न चानर्थपरम्परा।**
सेव्यन्ते स्मर्षयो यत्र न पाखण्डानि भक्तितः।। 43।।

जहाँ यश का ही निरन्तर विस्तार होता था, अनर्थकारी परम्परा का नहीं और भक्तिपूर्वक ऋषियों की ही सेवा होती थी, पाखण्डों अथवा पाखण्डियों की नहीं।

44 **यन्निर्ममे स्वयं धात्रा सर्वरत्नगणैर्मुदा।**
स्वकौशल्य प्रकाशाय स्थिरीभूतेन चेतसा।। 44।।

जिस नगर को प्रसन्नतापूर्वक एवं स्थिर मन से **स्वयं ब्रह्मा** ने अपनी निपुणता के प्रकाशन के लिए सभी प्रकार के रत्नों से बनाया था।

45 **यन्न शक्यं सुरेन्द्रेण फणीन्द्रेणापि संशितुम्।**
कथं तत्कीर्त्यते मन्दमेधसा सकलं मया।। 45।।

जिस नगर का भली-भाँति वर्णन करने में सुरेन्द्र या शेषनाग राज भी समर्थ नहीं, उसका सम्पूर्ण वर्णन भला मन्दबुद्धि वाला मैं कैसे कर सकता हूँ?

राजा भूपाल

46 **पुरस्य तस्य शास्तासीत् सर्वशास्त्रार्थकोविदः।**
भृशं भूपालसंसेव्यो भूपो भूपालसंज्ञकः।। 46।।

उस नगर का शासक भूपाल नामका राजा था, जो सर्वशास्त्रनिष्णात एवं सभी राजाओं द्वारा सदा सेव्यमान रहता था।

47 **नयकल्पद्रुमं ज्ञानरससेकेन कामदम्।**
यो निनायानिशं वृद्धिं प्रजानां भूतिहेतवे।। 47।।

जिसने निरन्तर ही प्रजाओं की भलाई के लिए तथा उनकी कामनाओं

को पूर्ण बनाने वाले न्याय-नीति रूपी कल्पद्रुम को अपने ज्ञान-जल से सिंचन करके, वृद्धिंगत किया था।

48 राजविद्या बभुर्यस्मिन् प्रतिष्ठां प्राप्य निर्मलाः।
रात्रौ व्योम्नि घनत्यक्ते तारा इव मनोहराः।। 48।।

उस राजा भूपाल में निर्मल-पवित्र राजविद्याएँ उसी प्रकार शोभायमान प्रतिष्ठित थीं जिस प्रकार रात के समय मेघरहित आकाश में तारे मनोहर दीख पड़ते हैं।

49 यत्कृतं यशसा यस्य निर्मलेनापि नित्यशः।
द्विषत्कान्तास्यचन्द्रस्य मलिनत्वं तदभुतम्।। 49।।

जिस राजा के निर्मल यश ने निरन्तर ही शत्रु-कामिनियों के मुखचन्द्र को जो मलिनत्व प्रदान किया, वह आश्चर्यकारक है।

50 दीप्त्या दिवाकरं कान्त्या चन्द्रं गत्या गजाधिपम्।
रूपेण मन्मथं नीत्या शुक्रं दण्डेन पातकम्।। 50।।

अपनी आभा से दिवाकर सूर्य को, कांति से चन्द्रमा को, गति से गजाधिप को, रूप-सौंदर्य से कामदेव को, नय-नीति से शुक्राचार्य को तथा दण्डनीति से पातकों—अपराधियों को तथा—

51 गाम्भीर्येण पयोराशिं स्थिरत्वेन सुराचलम्।
बुद्धया वृहस्पतिर्भूत्या सुनासीरं जिगाय सः।। 51।। —*युग्मकम्*

—गम्भीरता से समुद्र को, स्थिरता से हिमालय को और वृहस्पति के समान बुद्धिमान् होकर इन्द्र को भी (उसने) जीत लिया था। (युग्मकम्)

52 पूजां देवेषु पात्रेषु दानं विद्यासु रागिताम्।
नतिं गुरुषु दुःप्रेक्षविपक्षेषु पराक्रमम्।। 52।।

जो देवताओं में पूजा, सुपात्रों में दान, विद्याओं में प्रेम, गुरुजनों के सामने विनम्रता तथा कुदृष्टि वाले शत्रुओं में पराक्रम—

53 कृपां प्रजासु वात्सल्यं भव्येषु गमनं पुनः।
जिनेन्द्र मन्दिरेष्वेव सत्सु मैत्रीं चकार यः।। 53।। — *युग्मकम्*

— प्रजाओं पर कृपा, भव्यों के प्रति वात्सल्य, ज़िनेन्द्र-मंदिरों के प्रति गति और सज्जनों के साथ मैत्री-भाव रखा करता था। (युग्मकम्)

54 यः सुरूपेण विज्ञेन निशान्तेन समन्वितः।
सुरेश्वर इव भ्रेजे भुञ्जानः सुखमैहिकम्।। 54।।

जो सदैव सुन्दर और चतुर अन्तःपुर वालों के मध्य रहता हुआ इन्द्र के समान ऐहलौकिक सुखों का भोग करता था।

55 धर्म्मं चकार पापानि निर्जघानातनोद्यशः।
दधौ रत्नत्रयं चित्ते यथा राजा तथा प्रजाः।। 55।।

राजा और प्रजा एक समान धर्माचरण करते थे, पापों का नाश करते थे, यश का विस्तार करते थे तथा चित्त में रत्नत्रय को धारण करते थे।

56 प्रवहत्यष्टमे तीर्थे चन्द्रप्रभजिनेशिनः।
ज्ञानत्रयसमा युक्ते मुनिवृन्दविराजिते।। 56।।

चन्द्रप्रभ-जिनेन्द्र के आठवें तीर्थङ्कर के रूप में स्थित रहने पर, ज्ञानत्रयधारी, मुनि-संघ द्वारा सुशोभित —

57 निर्मलन्यायमार्गेण पालिताखिलभूतले।
भूपालसंज्ञके भूपे तस्मिन् शासति मेदिनीम्।। 57।।

निर्मल न्याय-मार्ग से अखिल पृथ्वी का पालन करने वाले उस राजा भूपाल के, पृथिवी पर शासन करते समय उसके राज्य में—

नगर-सेठ धनपति का परिचय

58 बभूव वणिजां नाथः श्रेष्ठी श्रेष्ठगुणाकरः।
नाम्ना धनपतिस्तस्य महीशस्य मनोहरः।। 58।। — *त्रिकलम्*

बनियों (व्यापारियों) का स्वामी, श्रेष्ठगुणों का आकर तथा राजा का

प्रिय-पात्र **धनपति** नामका एक सेठ निवास करता था। (त्रिकलम्)

59 **कार्याकार्यविचारज्ञो विपक्षक्षयकारकः।**
परोपकारतन्निष्ठेः परचित्तोपलक्षकः।। 59।।

वह (सेठ) कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार करने वाला, विपक्षियों का विनाशक, परोपकारी तथा परहृदय-भावना को समझने वाला था।

60 **नान्यथा विदधुर्वाक्यं यस्य पौराः कदाचन्।**
मतिमन्तोऽपि सन्तोऽपि मान्या अपि महीभृता।। 60।।

वह सेठ धनपति राजा भूपाल द्वारा सम्मानित था, अत्यन्त बुद्धिमान् था तथा पुरजन, उसकी बातों का कभी भी खण्डन (विरोध) नहीं किया करते थे अर्थात् सभी जन उसकी सलाह मानते थे।

61 **अपृष्ट्वा यन्न कार्याणि चकार नरनायकः।**
कदाचिदपि विद्वद्भिः प्रेरितोऽपि प्रियंवदः।। 61।।

विद्वानों द्वारा प्रेरित किए जाने पर भी मधुरभाषी वह राजा भूपाल उस सेठ धनपति से बिना पूछे कभी भी कोई भी कार्य नहीं करता था।

62 **यस्य धीरस्य धुर्यस्य सुधियो धर्मधारिणः।**
बभ्राम भूतले कीर्तिश्चन्द्रमूर्तिरिवामला।। 62।।

धैर्यवान्, विद्वानों में श्रेष्ठ तथा धर्मशाली जिस सेठ की चन्द्रमूर्ति के समान विमल कीर्ति सम्पूर्ण पृथ्वी पर भ्रमण किया करती थी।

63 **न यस्यालम्भि संख्यानं गुणानां विबुधैरपि।**
तारकाणामिव व्योम्नो जलानामिव नीरधेः।। 63।।

आकाश के (असंख्य) तारों के समान तथा समुद्र की असंख्य जल-तरंगों के समान उस सेठ के उच्च गुणों की गणना विद्वानों के द्वारा भी नहीं की जा सकती थी।

64 सपर्यां कुर्वतो यस्य जिनेन्द्राणां यथागमम्।
नानाप्रसूनमालाभिश्चकम्पे विबुधासनम्।। 64।।

उस सेठ के द्वारा विभिन्न प्रकार की पुष्प-मालाओं से विधिपूर्वक जिनेन्द्रों की पूजा किये जाने के कारण देवताओं का आसन भी काँप उठता था।

65 यो विशुद्धान्नदानेन तर्पयामास योगिनः।
भक्त्या कृतोत्तरासङ्गैः श्रेयसे स्थिरमानसः।। 65।।

उत्तरीय धारण किए हुए तथा स्थिर चित्त वाले जिस सेठ ने भक्तिपूर्वक अन्नदान के द्वारा सभी के कल्याणार्थ योगियों को भी सन्तुष्ट किया था।

66 असंख्यबन्दिवृन्देभ्यो दददूद्रव्यं यथेच्छया।
धर्मध्यानविधानेनागमद्यो दिनानि वै।। 66।।

असंख्य बन्दियों को यथेच्छ द्रव्य (दान) देते हुए जो धर्म और ध्यान-विधि की विधिपूर्वक अपने दिनों को व्यतीत कर रहा था—

वणिक्पति धनेश्वर

67 पुरे तत्रैव विख्यातो बभूवान्यो वणिक्पतिः।
नाम्ना धनेश्वरो धीरो धनधान्यसमन्वितः।। 67।।

उसी समय उसी नगर में **धनेश्वर** नामका एक दूसरा प्रसिद्ध वणिक्पति भी निवास करता था, जो परम धैर्यवान् तथा धन-धान्य से परिपूर्ण था।

पुत्री कमलश्री

68 अजायत सुता तस्य कमलश्रीरितिश्रुता।
सर्वावयवसम्पूर्णा रूपसौभाग्यसंयुता।। 68।।

उसकी **कमलश्री** नाम से प्रसिद्ध एक सुपुत्री थी, जो सभी अङ्गों से परिपूर्ण तथा रूप-सौभाग्य को प्राप्त थी।

69 **यस्या रूपस्य सम्पत्तिं विलोक्याकुलमानसाः।**
त्रिदशा अपि सञ्जाता कि पुनर्नान्य मानवाः।। 69।।

जिसकी रूप-सम्पत्ति को देखकर जब देवगण भी व्याकुल चित्त हो जाते थे, तो फिर अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या?

70 **यस्य विज्ञातनिःशेषकलायाः हरिणीदृशः।**
न जातु कान्तियुक्ताया जातं शीलं मलीमसम्।। 70।।

वह हरिणाक्षी सम्पूर्ण कलाओं को जानने वाली तथा कान्तिमती थी और जिसका शील कभी भी मलिन नहीं हुआ था—

कमलश्री एवं सेठ धनपति का विवाह

71 **सा वितीर्णा सुता तेन पित्रा तस्मै सुधीमते।**
श्रेष्ठिने हतदुष्टाय धनादिपतये स्वयम्।। 71।।

उस कमलश्री के पिता धनेश्वर ने उस पुत्री (कमलश्री) को स्वयं ही मतिमान् तथा दुष्टों के विनाशक उस **धनपति** सेठ के हाथों में सौंप दिया।

72 **श्रेष्ठी श्रेष्ठोत्सवं कृत्वा विधिना परिणीय ताम्।**
आसीत् सुखानि भुञ्जानो वासुदेव इव श्रियम्।। 72।।

वह धनपति सेठ भी परमोत्सव (विवाहोत्सव) मनाकर तथा उस कमलश्री से विवाह कर उसी प्रकार सुख-भोग कर रहा था, जैसे विष्णु भगवान् लक्ष्मी को पाकर सुख का अनुभव करते हैं।

73 **सा तं विभूषयामास सम्पेवापि नवाम्बुदम्।**
प्रभेव भास्करं चारु मञ्जरीवाम्रपादपम्।। 73।।

उस (कमलश्री) ने मेघ को विद्युत् की तरह, सूर्य को प्रभा की तरह तथा आम्रवृक्ष को सुन्दर मञ्जरियों की तरह अपने पति उस धनपति सेठ को विभूषित कर दिया।

74 दृष्टं सृष्टेः फलं धात्रा संयोज्य प्रथमं तकौ।
विधिना दम्पती योग्यौ सर्वगौरगुणाश्रयौ।। 74।।

सर्वोज्ज्वल गुणों के आश्रय रूप उन दोनों योग्य दम्पति को मिलाकर विधाता ने मानों पहले-पहल सृष्टि को ही सफल होते हुए देखा।

आहार-चर्या हेतु मुनिराज का आगमन

75 अथ ज्ञातागमो मान्यो मुनिस्त्रिज्ञानलोचनः।
जितेन्द्रियो जितारातिश्चर्यामार्गेण निर्गतः।। 75।।

अन्य किसी एक समय आगमों के ज्ञाता, सुमति, सुश्रुत, सुअवधि रूप त्रिज्ञानदर्शी, जितेन्द्रिय तथा अष्टकर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले, सभी लोगों द्वारा माननीय एक मुनि वहाँ से आहार-चर्या हेतु जा रहे थे।

76 तन्निरीक्ष्य प्रणम्याशु भणित्वा च नमोऽस्त्विति।
तिष्ठ-तिष्ठेति चाभाष्य जगृहे कमलश्रिया।। 76।।

उन्हें देखकर **कमलश्री** ने उन्हें सादर नमोऽस्तु किया और अत्र तिष्ठ-तिष्ठ कहकर उनसे वहाँ ठहरने की प्रार्थना की।

77 विधायाष्टविधां पूजां तन्मुनेः पदपद्मयोः।
नवकोटिविशुद्धयन्नं साऽदात्तस्मै तपोभृते।। 77।।

उसने उन तपस्वी मुनि के चरणकमलों की आठ प्रकार से पूजा की तथा नवधा-भक्तिपूर्वक उन्हें विशुद्ध आहार प्रदान किया।

78 भोजनानन्तरं नत्वा समीसीनं मुनीश्वरम्।
ललाटे न्यस्य हस्तौ द्वौ सा पप्रच्छ मनोगतम्।। 78।।

आहारोपरान्त विराजे हुए उन मुनीश्वर को प्रणाम करके, अपने दोनों हाथों को शिर से लगाकर कमलश्री ने अपनी मनोगत इच्छाओं को इस प्रकार व्यक्त किया—

79 भगवन्मे कदा जैनं भविष्यति तपोऽनघम्।
तदाकूतं स विज्ञाय समाचष्टे मुनीश्वरः।। 79।।

हे भगवान्! मेरी निर्दोष जैनी-तपस्या कब सफल होगी? तब मुनीश्वर ने पूरे रहस्य को समझकर उससे कहा —

80 कियद्भिर्वासरैर्बाले प्राप्स्यसि त्वं तनूरुहम्।
रतीशसन्निभं सर्वलक्षणैरुपलक्षितम्।। 80।।

हे बाले! कुछ ही दिनों के उपरान्त तुम कामदेव के समान एवं सभी लक्षणों से सम्पन्न पुत्र पाओगी।

81 तं निशम्याशु-तोषेण बद्धो ग्रन्थिस्तयांशुके।
नान्यथा मुनिनाथानां भषितं मन्यमानया।। 81।।

यह सुनकर उसने अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक अपनी साड़ी के छोर में ग्रन्थि निबद्ध कर ली, क्योंकि वह जानती थी कि मुनिनाथों का कथन कभी भी प्रतिकूल नहीं होता।

शिशु-जन्म

82 यथाकालमथोद्दाम - काम - क्रीड़ाकृतादरः।
तस्यामुत्पादयामास सुतं श्रेष्ठी सलक्षणम्।। 82।।

इसके बाद वह (धनपति) सेठ सद्भावनापूर्वक प्रबल कामक्रीड़ा में लीन रहा और समयानुसार उस कमलश्री ने अपनी कोख से समस्त शुभ-लक्षणों से युक्त एक पुत्र को जन्म दिया।

83 यथा प्राच्यां दिशि प्रौढप्रतापं प्रसृतप्रभम्।
जगत्प्रदीपकः पद्माकरसेव्यपदो रविः।। 83।।

वह शिशु वैसा ही तेजस्वी था जैसा कि संसार का प्रकाशक, कमलों का सेव्य सूर्य पूर्व-दिशा में कान्ति को फैलाने वाले प्रौढ़-प्रताप को उत्पन्न करता है।

**84 तस्मिञ्जाते सुते गेहे दध्वनुः पटहा भृशम्।
दिव्यवाद्यविदग्धाङ्गी करकोणसमाहताः।। 84।।**

उस पुत्र के उत्पन्न होते ही भवन में विदग्ध दिव्याङ्गनाओं के हाथों के कोनों के द्वारा बजाये जाते हुए नगाड़े गड़गड़ा उठे।

**85 नृपप्रभृतिनिःशेषजना जग्मुर्मुदं तथा।
यथा स्वाङ्गे न मान्ति स्म पुलकाली विराजिताः।। 85।।**

राजा आदि सभी लोग प्रसन्नता से इस तरह पुलकित हो उठे, मानों उनकी प्रसन्नता अङ्गों में नहीं समा पा रही थी।

**86 मुखालोकं बिना द्रव्यं तार्कुकेभ्यो यथेच्छया।
प्रबुद्धपद्मवक्त्रेण श्रेष्ठिना समदीयत।। 86।।**

प्रसन्नता से खिले कमल के समान मुख वाले उस सेठ धनपति ने नवजात शिशु का मुख देखे बिना ही याचकों को यथेच्छ द्रव्य-दान वितरित किया।

**87 समुद्धता ध्वजास्तुङ्गतोरणैः सह मन्दिरम्।
पठद्भिः कलनैः स्वानैर्बन्दिभिर्मुखरीकृतम्।। 87।।**

भवन के ऊँचे-ऊँचे फाटकों के कंगूरों पर ध्वजा-पताकाएँ फहराने लगीं। वन्दीजनों के द्वारा मधुर शब्दों से स्तुति करने के कारण उसका वह भवन मुखरित हो उठा।

**88 प्रीणितश्रुतिरन्ध्राणि जगुर्गीतानि योषितः।
आययौ प्रमदा सर्वा जनता सप्रसाधना।। 88।।**

उपस्थित महिलाएँ कर्णकुहरों को सुख देने वाले गीतों को गाने लगीं। यह सुनकर समस्त प्रसन्न जनता सज-धजकर तथा उपहार (Gift) सामग्रियाँ लेकर वहाँ आकर उपस्थित हो गई।

शिशु-नामकरण : भविष्यदत्त

89 उत्तमेऽहनि तस्याथ मुनिना निर्जितारिणा।
भविष्यदत्त इत्याख्या चक्रे चारित्रचारिणा।। 89।।

किसी उत्तम दिन के शुभावसर पर चरित्रवान् एवं काम-शत्रुजेता मुनि ने उस बालक का नाम **'भविष्यदत्त'** रखा।

अक्षर-लिपि-पठन-संस्कार

90 शैशवे विगते पित्रा सोत्सवं पठनाय सः।
समर्पितः प्रमोदेनाध्यापकस्य महामतेः।। 90।।

शैशव समाप्त होने पर उस बालक को प्रसन्न-चित्त पिता-धनपति सेठ ने उत्सवपूर्वक पढ़ने के लिए एक महामति अध्यापक को समर्पित कर दिया।

91 सप्रश्रयेण बालेन विज्ञाता विनयस्थितिः।
आदौ ततः समस्तानि शास्त्राणि पठता सता।। 91।।

उस प्रीतियुक्त बालक ने सर्वप्रथम विनय-स्थिति-गुण को समझा, तत्पश्चात् समस्तशास्त्रों को पढ़ते हुए ज्ञान प्राप्त किया।

92 सर्वशास्त्रकलोपेतं सुतं दृष्टवा पिता ययौ।
प्रमोदं निर्म्मदः सार्द्धं प्रियया कमलश्रिया।। 92।।

समस्त शास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान और कलाओं से युक्त पुत्र को देखकर अपनी प्रिया कमलश्री के साथ सरल-हृदय पिता-धनपति ने अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त की।

93 सुतानुरागतः श्रेष्ठी चिन्तयामास मानसे।
धन्योऽहमन्यथा प्राप्ता कमलश्रीः कथं मया।। 93।।

पुत्रानुराग के कारण उस सेठ ने अपने मन में इस प्रकार विचार किया 'मैं परमधन्य सौभाग्यशाली हूँ, अन्यथा, कमलश्री मुझे कैसे प्राप्त होती?'

94 **कमलश्रीः समाचष्टे यदेव वचनं गृहे।**
तदेव विदधे श्रेष्ठी बिलम्बेन बिना द्रुतम्।।94।।

कमलश्री ने अपने घर में जैसी-जैसी इच्छाएँ प्रकट कीं उसके प्रियतम (सेठ) ने अतिशीघ्र ही उन्हें पूर्ण कीं।

कमलश्री का घर से निष्कासन

95 **अन्यदा पूर्वजन्मात्त पापकर्मवशादृमृशम्।**
श्रेष्ठी धनपतिर्नाम चुक्रुधे कमलश्रियै।। 95।।

किन्तु अन्य किसी एक दिन वह सेठ धनपति पूर्वजन्म के पाप-कर्मों के फलस्वरूप अपनी उसी पत्नी कमलश्री पर क्रोधित हो उठा और बोला—

96 **मन्मन्दिरं विमुच्याशु व्रज त्वं वृजिनावृते।**
न त्वामहमलं द्रष्टुं नेत्राभ्यां भुजगीमिव।। 96।।

"हे पापिनी! मेरे भवन को छोड़कर शीघ्र ही यहाँ से चली जा और फिर लौटकर यहाँ कभी मत आना। मैं अब तुझ जैसी सर्पिणी को अपनी आँखों से नहीं देख सकता।"

97 **क्षणमात्रमपीह त्वं मा तिष्ठोत्तिष्ठ निष्ठुरम्।**
इति श्रुत्वा वचः पत्युः कमलश्रीस्ततो जगौ।। 97।।

"चल उठ, तू अब यहाँ एक क्षण भी मत ठहर।" इस प्रकार पति की कठोर वाणी को सुनकर कमलश्री ने उत्तर में कहा—

98 **स्थिरीभूय शृणु स्वामिन् किं वृथा परिकुप्यसे।**
कथयस्व प्रसादेन किं कुकर्म कृतं मया।। 98।।

—"हे स्वामिन्, शान्त होकर मेरी बात सुनो, व्यर्थ ही क्यों क्रोधित हो रहे हो? स्वस्थ होकर कहो कि मैंने कौन-सा अपराध-कर्म किया है?"

99 **अनिमित्तं न कुप्यन्ति पशवोऽपि कदाचन्।**
किं पुनर्मानवाः क्वापि कृपावन्तो मनीषिणः।। 99।।

—"बिना कारण के तो पशु भी कभी क्रोधित नहीं होते, तो फिर दयालु

एवं बुद्धिमान् मनुष्य यों ही क्यों क्रोधित होगा?"

100 त्वमेव मम नाथोऽसि त्वमेवेह गतिर्मम।
त्वमेवेह सुखहेतुर्मे त्वमेव शरणं मम।। 100।।

—"इस संसार में आप ही मेरे स्वामी हो, आप ही मेरी गति हो और आप ही सुख के कारण हो तथा आप ही मेरे लिए एकमात्र शरण हो।"

101 अतः प्रसीद हे नाथं विमुच्य हृदयात् क्रुधम्।
तदीरितं वचः श्रुत्वा पुनरूचे वणिक्पतिः।। 101।।

—"इसलिए हे स्वामिन्! प्रसन्न होओ और अपने हृदय से क्रोध को दूर कर दो।" इस तरह कमलश्री के वचन को सुनकर उस वणिक्पति (पति) ने पुनः कहा

102 न कोऽप्यस्ति प्रिये दोषस्तवेह कथयामि यम्।
किन्तु त्वद्दर्शनादेव न स्यान्मम सुखांशकः।। 102।।

— "हे प्रिये! तुम्हारा ऐसा कोई भी दोष नहीं है, जिसे मैं अभी कहूँ। फिर भी तुम्हारे दर्शन मात्र से अब मुझे सुख का लेशमात्र भी प्राप्त नहीं हो रहा है।"

103 त्वं सुशीला सुरूपा त्वं त्वं गुणानां निधिः सदा।
न जानेऽहं ग्रहः कोऽयं विषये तावकेऽत्र मे।। 103।।

—"तुम सुशील हो, सुन्दरी हो एवं सभी गुणों की निधि हो, किन्तु पता नहीं तुम्हारे विषय में मेरे मन में कौन-सां अनिष्टकारी ग्रह उपस्थित हो गया है।"

104 गच्छ-गच्छ गृहादस्माद्द्रुतं मा तिष्ठ मत्पुरः।
किं कृतेन विकल्पेन बहुनात्र पुनः-पुनः।। 104।।

—"अतः अब जाओ, मेरे घर से तुरन्त निकल जाओ, मेरे सामने जरा भी मत ठहरो। बार-बार विविध विकल्पों का सोचना ही व्यर्थ है।"

105 **इत्युक्तापि न सा यावद्ययावुत्तुङ्गगेहतः।**
निःसारिता स्वयं तावत् कोपतः श्रेष्ठिना हठात्।। 105।।

इतना कहे जाने पर भी जब वह कमलश्री अपने विशाल भवन से नहीं निकली, तब उस सेठ ने स्वयं ही क्रोधपूर्वक उसे धक्का देकर घर से निकाल बाहर किया।

शोकाकुल कमलश्री अपने नैहर जा पहुँची

106 **सापि वाष्पाम्बुधाराभिर्धौताधरपयोधरा।**
मलीमसानना वेगादगान्निजकुलालयम्।। 106।।

वह बेचारी कमलश्री भी आँसुओं की धारा से अपने अधरों-पयोधरों को धोती हुई, म्लानमुख होकर वेगपूर्वक वहाँ से निकली और अपने नैहर चली गई।

107 **बान्धवा विधुराधीनां तां निरीक्ष्य मृगेक्षणाम्।**
जगुर्गृहाङ्गणं प्राप्तां प्रपश्यन्तः परस्परम्।। 107।।

उसके बन्धु-बान्धवों ने मनस्ताप से व्याकुल उस मृगनयनी को, घर के आङ्गन में आई हुई देखकर परस्पर में एक-दूसरे की ओर देखते हुए कहा—

108 **भविष्यति स्फुटं किञ्चित्कुकर्मकृतमेतया।**
अन्यथा कथमायाता बिना पुत्रं विवाहना।। 108।।

—"इसने अवश्य ही कोई कुकर्म किया होगा, नहीं तो वह अपने पुत्र को छोड़कर बिना वाहन के बिन बुलाई यहाँ कैसे आ जाती?"

109 **एकाकिनी निरानन्दा निस्त्रपा मलिनानना।**
विवर्जिता विभूषाभिरिति दध्यौ धनेश्वरः।। 109।।

पिता धनेश्वर ने भी पुत्री को अकेली, दुःखी, लज्जारहित, मलिनमुखवाली तथा अलङ्करणों से हीन देखा तो वह दुख से भर गया।

110 **गले लग्ना सती माता दुहितुर्दुःखपूरिता।**
विलपन्ती महामोहाद्रोदितिस्मातुरातुरम्।। 110।।

उसकी माता ने भी अपनी दुखी पुत्री को गले से लगा लिया तथा महामोह के कारण दुःख से भरकर, विलाप करती हुई फूट-फूटकर रोने लगी।

111 **कमलश्रीरपि प्राप्तप्रौढ़दुःखा कृशोदरी।**
देवनं विदधे बाढं हा विधे किं कृतं त्वया।। 111।।

कृशोदरी, कमलश्री ने भी कठोर दुःख पाकर विलाप करते हुए कहा — "हे विधे! तूने यह क्या अनर्थ कर दिया।

112 **कथञ्चिद्‌दुःखदुःखेन विमुच्य परिदेवनम्।**
उपविष्टासने सुभ्रूः कमलश्रीः सहाम्बया।। 112।।

जिस किसी प्रकार बड़ी कठिनाई पूर्वक अपना विलाप बन्द कर सुन्दर भौहों वाली वह कमलश्री अपनी माँ के साथ उसके आसन पर जा बैठी।

113 **तस्मिन्नवसरे साध्वी सा सरोज - समानना।**
मात्राऽवाचि सुते! सत्यं ब्रूहि मे पुरतो यथा।। 113।।

उसी समय उसकी (कमलश्री की) माँ ने कमलमुखी, साध्वी-स्वरूपा अपनी बेटी उस कमलश्री से पूछा — "हे बेटी! मेरे सामने तू सच-सच कह।"

114 **भर्त्रा त्वं कोपतः केन कारणेन निजालयात्।**
निःसारिता सुपुत्री सा या स्वमातुर्न्यवेदयत्।। 114।।

— "कि किस कारण से तेरे पति ने तुझे अपने घर से निकाल दिया है?" सुपुत्री कमलश्री ने भी माँ से निवेदन करते हुए कहा —

115 **शोके विद्‌मि पुरा नाम्ब किम्मया दुष्कृतं कृतम्।**
इदानीं न कृतं किञ्चिदिति जानीहि निश्चितम्।। 115।।

— "हे जननि! शोकावस्था में मैं यह नहीं जानती कि पूर्वजन्म में मैंने

कौन-कौन से पाप किए थे? हाँ, इतना निश्चित जान लीजिए कि आजकल मैंने कोई भी अपराध नहीं किया है।"

116 **इत्यन्योन्यं कथासक्ते यावद् तिष्ठतामुभे।**
मातृ-पुत्र्यौ महादुःखवज्रघाताभिपीडिते।। 116।।

इस तरह महादुःखरूपी वज्राघात से आहत, वे दोनों माँ-बेटी, जब आपस में संलाप कर रही थीं तभी —

117 **तावद् बहुश्रुतो वृद्धो विवेकी विमलाशयः।**
समाकुलः कुलाधारः श्रेष्ठि-मंत्री समाययौ।। 117।।

उसी समय विवेकी परम उदार, बहुत अनुभवी, कुलाधार, उस सेठ (धनेश्वर) का एक वृद्ध मन्त्री व्याकुल-सा होकर वहाँ आया।

118 **स समस्तश्रुतार्थज्ञः पदस्थः स्थविरः स्थिरः।**
उपविश्च समाचष्टे जनकं कमलश्रियः।। 118।।

स्थिर स्वभाव वाले, समस्त श्रुतों के अर्थज्ञ तथा औचित्य को समझने वाले उस वृद्ध मन्त्री ने वहाँ बैठकर कमलश्री के पिता से कहा —

119 **त्वदङ्गजा गुणाधारा गृहकृत्यविचक्षणा।**
निर्वासिता तिरस्कृत्य यत्क्रुधाश्रेष्ठिना गृहात्।। 119।।

— "तुम्हारी पुत्री गुणों की आधार है, गृहकृत्य में वह परम चतुर है, जिसे सेठ ने क्रोधपूर्वक तिरस्कृत कर उसे घर से निकाल दिया है।

120 **तत्क्षणं भवता ग्राह्यं न किञ्चिदपि धीमता।**
तिष्ठत्वत्रैव चत्वारिपञ्चषड् वा दिनानि वै।। 120।।

उसके सम्बन्ध में आप जैसे बुद्धिमान् के द्वारा क्षण-भर भी कुछ अन्यथा नहीं सोचा जाए और यह पुत्री चार-पाँच या छह दिनों तक यहीं नैहर में ही बनी रहे। और —

121 यावन्नीतिविदां वाक्यैः श्रेष्ठिनं बोधयाम्यहम्।
इत्युदीर्याययौ वृद्धः सपत्रः श्रेष्ठिनोऽन्तिकम्।। 121।।

"तब तक मैं जाकर नीतिज्ञों के वाक्यों-उद्धरणों से उस सेठ (धनपति) को समझाता हूँ।" ऐसा कहकर वह वृद्ध मन्त्री एक पत्र के साथ उस (पति) सेठ जी के समीप गया।

122 तस्मिन् वृद्धे गते पित्रा पुत्री प्रोक्ता वराङ्गमुखी।
निःश्वस्य मोहतो वाष्पवारिबिन्दुं विमुञ्चती।। 122।।

उस वृद्ध-मन्त्री के चले जाने पर मोह के कारण उच्छवास छोड़ती हुई एवं अश्रुजलकण गिराती हुई उस सुमुखी पुत्री से उसके पिता ने इस प्रकार कहा—

123 सुते सुवंश-संजाता प्राप्तायमापदि ध्रुवम्।
इच्छन्ति मरणं जातु न त्यजन्ति कुलक्रमम्।। 123।।

—"हे पुत्रि! सुवंश में उत्पन्न लोग विपत्ति आने पर मृत्यु की इच्छा तो कर सकते हैं, किंतु कभी भी कुल-रीति का परित्याग नहीं करते।"

124 भद्रं कृतं त्वया भद्रे यदत्र त्वं समागता।
इदानीं मामके गेहे तिष्ठ धर्मपरायणा।। 124।।

—"हे कल्याणवति! तूने यह अच्छा कार्य किया कि तू यहाँ आ गई। इस समय मेरे ही घर में तू धर्मपरायणा होकर बनी रह।"

पुत्र-भविष्यदत्त का गृहागमन

125 अत्रान्तरे स्ववंशश्रीतिलकः कमलाननः।
श्रुतान्यधीत्य निर्द्धूतमदोऽध्यापक वेश्मनः।। 125।।

इसी बीच अपने वंशश्री का तिलक, कमलनयन एवं मदरहित वह पुत्र भविष्यदत्त भी अपने गुरुगृह से सभी शास्त्रों का अध्ययन कर—

126 विभीर्भविष्यदत्ताख्यः ख्यातिमान् मदनोपमः।
सार्द्धं सहचरैः श्रीमान् लीलया गृहमाययौ।। 126।।

— निर्भीक, सुप्रसिद्ध, कामदेव-तुल्य एवं कान्तिमान् (वह पुत्र भविष्यदत्त) अपने साथियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक जब अपने घर लौटा तब —

127 निरीक्ष्य पितरं तत्र रक्ताक्षं कुपिताननम्।
सजोषं परिवारं च निःश्रीकमिव मन्दिरम्।। 127।।

वहाँ अपने पिता को लाल-लाल आँखें किए हुए और क्रोधित मुख वाला देखकर एवं परिवार को भी एकदम चुपचाप तथा भवन को श्रीविहीन देखकर —

128 क्षणमेकमुपास्थाय पृष्ट्वा कमपि सेवकम्।
ज्ञात्वा तस्य मुखात्सर्वमुदन्तं विधिना यथा।। 128।।

एक क्षण तक वहीं ठहरकर, किसी गृहसेवक से पूछकर और उसी के मुख से समस्त वृत्तांत जानकर तथा —

129 अगात्सोऽपि द्रुतं तत्र मातरं द्रष्टुमुत्सुकः।
सत्यमेदिहास्ते गौर्यत्र तत्रैति तर्णकः।। 129।। — *त्रिकलम्*

माता को देखने के लिए उत्सुक, वह पुत्र भविष्यदत्त भी तुरन्त वहीं अपनी माता के पास (ननिहाल) चला गया। ठीक ही है — जहाँ गाय रहती है, वहीं पर नवजात बछड़ा भी चला ही जाता है। (पूर्व के तीनों पद्य एक साथ सम्बद्ध)

130 अपत्रं तनुजं दृष्ट्वा स्वेदबिन्दुचिताननम्।
कमलश्रीर्मनोमध्ये ततामातितरां तदा।। 130।।

छत्रविहीन तथा गर्मी के कारण आए हुए पसीने की बिन्दुओं से लथपथ मुख वाले पुत्र को देखकर वह माता कमलश्री भी मन में अत्यन्त दुःखी हो उठी।

131 नयनाश्रुप्रवाहेण क्षालितस्तनमण्डलाम्।
दृष्ट्वा भविष्यदत्तोऽपि जगाद जननीं निजाम्।। 131।।

विगलित अश्रुधारा से स्तनमंडल को धोती हुई, अपनी माँ को देखकर उस पुत्र भविष्यदत्त ने कहा—

पुत्र द्वारा संबोधन

132 किं रोदिषि वृथा मातः क्षालयास्यं गृहाण कम्।
सन्तिष्ठस्व यथास्थाने संवृण्वलकवेष्टनम्।। 132।।

—"हे माँ! व्यर्थ में क्यों रोती हो? जल लो और अपना मुख धो लो, उचित स्थान पर बैठ जाओ और अपने केशपाश को ठीक कर लो।"

133 सुखं दुःखञ्च यत्किञ्चित्भुज्यतेऽवश्यमेव तत्।
प्राणिभिः पूर्वजन्मात्तं भूतले नाऽत्र संशयः।। 133।।

—"इस पृथिवी पर प्राणी जो कुछ भी सुख और दुःख भोगता है वह सब पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही प्राप्त करता है। इसमें कोई संदेह नहीं—"

134 शोकेन शुष्यति तनुर्मतिविभ्रमः स्यात्,
बीभत्सता भवति संसृतिरेति वृद्धिम्।
ज्ञात्वेति मातरिह मा कुरु शोकमुग्रम्,
संसारकारणमशान्तिकरं विनिन्द्यम्।। 134।।

—"शोक-चिन्ता करने से शरीर सूखता है, मति-विभ्रम होता है, बीभत्सता होती है तथा उसी से सांसारिकता में वृद्धि होती है। अतः हे माँ! ऐसा विचारकर अधिक शोक न करो। क्योंकि शोक संसार का कारण है और अशान्ति उत्पन्न करने वाला है। अतः वह निन्द्य है—"

135 धर्म कुरुष्व सततं जिननाथदृष्टम्।
प्राप्नोषि येन सकलानि सुखानि नित्यम्।। 135।।

—"जिनपति द्वारा दृष्टधर्म का ही सदैव पालन करो, जिससे कि सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त कर सको—"

धर्म का फल

136 धर्म्मेण पापानि पुराकृतानि,
प्रध्वंसतां यान्ति विशुद्धकीर्तिः।
चन्द्रांशु तुल्या च मतिः सकामं,
सम्पद्यते सर्वमपि प्रशस्तम्।। 136।।

—"धर्म करने से पूर्वजन्म में किए गए पाप नष्ट होते हैं, विमल यश प्राप्त होता है, बुद्धि चाँदनी तुल्य परमोज्ज्वल हो जाती है तथा समस्त प्रशस्त कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं—"

137 धर्म्मेण सर्वेऽपि मनोरथाः स्यु,
र्द्रवन्ति विघ्नाः प्रशमन्त्यनिष्टाः।
सिद्धयन्ति विद्याः सकलाः प्रसन्ना,
भवन्ति भूपाः प्रणमन्ति दुष्टाः।। 137।।

—"धर्म करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, विघ्न द्रवीभूत हो जाते हैं तथा भावी अनिष्ट शांत हो जाते हैं। सभी प्रकार की विद्याएँ सिद्ध होती हैं, राजा लोग प्रसन्न हो जाते हैं तथा दुष्ट लोग नतमस्तक हो जाते हैं—"

138 धर्मेणाशु प्राणिनां वीतराग,
प्रोक्ते मार्गे न्यस्तशुद्धाशयानाम्।
उत्पद्यन्ते नप्तृजा मातृपुत्रा,
व्यूढोरस्काः शुद्धशीला अधृष्याः।। 138।।

—"धर्म के प्रभाव से वीतराग द्वारा कथित मार्ग पर चलने वाले, विशुद्ध चेता प्राणियों के भी शुद्धशील, अजेय तथा वृषभस्कन्ध वाले नाती-पोता एवं बन्धु-बान्धव आदि उत्पन्न होते हैं।" अतः—

139 धर्मप्रभाववशतश्च पिता मदीयो,
नूनं द्रुतं तव भविष्यति सानुकूलः।

श्रुत्वा वचांसि सुतवक्त्रविनिर्गतानि,
क्षिप्रं धनेश्वरसुतेति मुमोच शोकम्।। 139।।

—"हे माते, धर्म के प्रभाव से ही मेरे पिता भी तुम्हारे अनुकूल हो जाएँगे।" इस प्रकार उस धनेश्वरसुता (कमलश्री) ने सुतमुख से निकले वचनों को सुनकर शीघ्र ही शोक का परित्याग कर दिया।

140 **तौ द्वौ मातृसुतौ धनेश्वरगृहे धन्यौ मुदा तस्थतुः,**
कुर्वाणौ बल-लक्ष्मणस्तुतजिनाधीशस्य पादार्चनम्।
निश्चिन्तौ निजबन्धुनेत्रसुखदौ सर्वांगि वर्गप्रियौ,
भुञ्जानौ निजचित्तचिन्तितसुखं धर्मामलश्रीधरौ।। 140।।

इस प्रकार धर्म रूपी पवित्र सम्पत्ति को धारण करने वाले, सर्वांग सुन्दर तथा अपने बन्धु-बान्धवों के नेत्रों को सुख देने वाले वे दोनों माँ-बेटे बल-राम-लक्ष्मण तथा श्रीधर द्वारा स्तूयमान जिननाथ की चरण-पूजा करते हुए आत्म-चिन्तन-सुख का भोग करते हुए निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक उस सेठ धनेश्वर के घर में रहने लगे।

....

इतिश्रीभविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर विरचिते
साधुलक्ष्मणनामाङ्किते प्रथमः सर्गः।।

इस प्रकार महाकवि विबुधश्रीधर द्वारा विरचित, साधुलक्ष्मण के लिए लिखित इस भविष्यदत्तचरित महाकाव्य का यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

....

दूसरा सर्ग

141 **ये तीव्रोरुद्विविधतपसा व्यक्तसंसारभावाः,**
हत्त्वा कर्म्मप्रकरमभवन्स्वामिनो मोक्षलक्ष्म्याः।
ते तीर्थेशास्त्रिजगदाधिपैः संस्तुता भक्तिवद्भि-
र्यच्छन्त्वत्रप्रहतरिपवो लक्ष्मणाख्यस्य सौख्यम्।। 1।।

जो अपनी उग्र तथा दुष्कर अन्तरंग एवं बहिरंग तपस्या के द्वारा संसार के रागादि भावों का त्याग कर समस्त अष्ट कर्मों को नष्ट कर मोक्ष रूपी लक्ष्मी के स्वामी तीर्थंकर पद को प्राप्त हो चुके हैं, ऐसे तीनों लोकों द्वारा वन्दित स्तुत्य वे तीर्थेश, अपने शत्रुजनों के विजेता सुप्रसिद्ध **लक्ष्मण साहु** को सभी प्रकार के सुख प्रदान करें।

धनदत्त नामक दूसरे वणिक्पति की पुत्री— सुरूपा से विवाह

142 **अथ तत्र पुरेऽन्योऽस्ति सानुबन्धो धनाश्रयः।**
धनदत्त इति ख्यातो वणिक्पतिरनातुरः।। 2।।

उसी (हस्तिनापुर) नगर में अपने परिवार के साथ **धनदत्त** नामका एक दूसरा भी वणिक्पति रहता था, जो स्वस्थ, प्रसंन्न एवं धन-धान्य से युक्त था।

143 **यशांसि बभ्रमुर्यस्य निर्मलानि महीतले।**
अविश्रान्तोरुदानेन प्रीणिताखिलवन्दिनः।। 3।।

निरन्तर प्रचुर-दान के वितरण से अखिल वन्दियों (याचकों) को प्रसन्न करते रहने के कारण जिसका उज्ज्वल यश अखिल भूतल पर भ्रमण करता रहता था।

144 **जिनधर्म्मे महादक्षो कार्याकार्यविचारकः।**
गृहकार्येऽतिशक्तोऽपि त्रसपालनतत्परः।। 4।।

वह जिनधर्माचरण में निपुण, कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार करने वाला तथा गृहकार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी वह त्रस-जीवों के पालन में सदा तत्पर रहता था।

145 **वैश्यवंशप्रसूतस्य तस्यासीत् सुखदा प्रिया।**
मनोहरीति विख्याता मुखाभिख्याजिताम्बुजा।। 5।।

वैश्य-वंशोत्पन्न उस **धनदत्त** की अत्यन्त सुख प्रदान करने वाली एक प्रिया थी जो **'मनोहरी'** के नाम से परम प्रसिद्ध थी। अपने मुख-सौन्दर्य से वह कमल को भी जीतने वाली थी।

146 **तयोरभूतः सुता तन्वी ताराधिपनिभानना।**
तां निरीक्ष्य स्वनेत्राभ्यां विस्मयं को हि नाययौ।। 6।।

उनकी एक चन्द्रमुखी एवं कृशाङ्गी पुत्री थी। उसको देखकर कौन विस्मित नहीं हो जाता?

147 **इदं वक्त्रं यदि स्फीतं मुद्रिता शशिनः कला।**
अस्या ध्यायते नेत्रे तदा किं कञ्जशोभया।। 7।।

जबसे इसका मुख विकसित हुआ, तब से चन्द्रकला की प्रशंसा ही समाप्त हो गई। इसके नयनों का ध्यान करने पर, कमल-कान्ति का कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया।

148 **भ्रुवावेतौ च यद्यस्या धिक्कन्दर्पं धनुर्धरम्।**
हा हे हेम्नः कृशोदर्याश्चेदस्याः सुतनोर्द्युतिः।। 8।।

यदि उसकी भौंहें सम्मुख हैं तो फिर धनुर्धारी-कामदेव भी धिक्कार के योग्य है तथा उस सुन्दरी एवं कृशोदरी की कान्ति के सामने सोने की शोभा भी व्यर्थ हो गई थी।

149 इत्याशङ्क्य सुतारूपं जनकेन स्वचेतसा।
सुरूपाख्या कृता तस्या मत्वाऽत्यन्तसुरूपताम्।। 9।।

इस प्रकार की कल्पना कर पिता ने अपने मन में अपनी पुत्री के रूप को सोचकर और उसकी अति सुन्दरता को समझकर उसका नाम **सुरूपा** रख दिया।

धनपति-धनपाल सेठ का दूसरा विवाह

150 अभ्यर्थितो मुहुःस्वस्य बन्धुभिर्विनयान्वितैः।
तां सुतां धनदत्तोऽपि श्रेष्ठिने सोत्सवं ददौ।। 10।।

विनयान्वित बन्धुओं द्वारा बार-बार याचित होने पर **धनदत्त** ने भी अपनी उस पुत्री को उत्सवपूर्वक उस **धनपति-धनपाल** सेठ को समर्पित कर दिया।

151 पिता भविष्यदत्तस्य परिणीय शुभश्रिया।
निजवासं ततो निन्ये तां सुरूपां सुमगङ्लाम्।। 11।।

भविष्यदत्त का पिता **धनपाल** उस सुन्दरी कन्या से विवाह कर मङ्गलदायिनी उस **सुरूपा** को अपने निवास-स्थान पर ले गया।

152 क्रीडितश्च तया सार्द्धं श्रेष्ठिनस्तस्य सन्मतिः।
प्रकामं प्राप्तसौख्यस्य विस्मृता प्रथमाङ्गना।। 12।।

उस सुरूपा पत्नी के साथ क्रीड़ा करते हुए एवं अत्यन्त सुख-सुविधा को प्राप्त उस सेठ धनपाल (धनपति) ने अपनी सुबुद्धिमती पहली पत्नी (कमलश्री) को सर्वथा भुला ही दिया।

153 प्राप्य तन्वीं स्मराक्रान्तः कामिनीं नवयौवनाम्।
प्रायः पृथ्वीतले प्राणी को न विस्मृतिवान् भवेत्।। 13।।

इस पृथिवीतल पर कामदेव से आक्रान्त भला कौन-सा ऐसा प्राणी होगा जो कृशाङ्गी, नवयौवना कामिनी को पाकर विस्मरणशील-प्राय न हो जाए?

सुरूपा को बन्धुदत्त नामक पुत्र-प्राप्ति

154 अविज्ञातेन कालेन क्रमेण गलता सता।
मनोरमं सुरूपा सा सुरूपं सुषुवे सुतम्।। 14।।

अज्ञात क्रम से समय बीतते रहने पर उस सुरूपा ने भी एक सुन्दर एवं मनोहर पुत्र को जन्म दिया।

155 तस्य जन्मक्षणे सूनो ररासानकसंहतिः।
प्राङ्गणे गणना का वा वन्दिनां पठतां सताम्।। 15।।

उस सेठ के यहाँ पुत्रजन्म के समय नगाड़ों का समुदाय मुखरित हो उठा। उसके प्रांगण में स्तुति करते हुए वन्दियों की तो कोई गणना ही नहीं थी।

156 अजस्त्रं ददता दानं श्रेष्ठिना न निजाकरः।
सङ्कोचितो महामत्तमातङ्गेनेव तत्क्षणे।। 16।।

उस अवसर पर लगातार दान देते हुए सेठ ने अपना हाथ उसी प्रकार संकुचित नहीं किया, जिस प्रकार मद-जल को बरसाते हुए कोई मदमत्त हाथी अपनी सूँड़ को संकुचित नहीं करता।

157 समाययुर्नरास्तुष्टाः सर्वे संभूय नागराः।
रामाश्च मङ्गलद्रव्यपात्रालङ्कृतपाणिकाः।। 17।।

प्रसन्नता से भरकर नगर के सभी लोग वहाँ उपस्थित हो गए। स्त्रियाँ भी मङ्गलद्रव्यों से भरे पात्रों को हाथ में लिए हुए वहाँ उपस्थित हो गईं।

158 विधायार्चां जिनेशस्य क्रमाम्भोजद्वयोर्मुदा।
विहिता बन्धुदत्ताह्वा सूनोः पित्रा पटीयसा।। 18।।

विचारवान् पिता ने प्रमुदित होकर जिनेश के चरणद्वय की पूजा की और नवागत पुत्र का नाम बन्धुदत्त रखा।

159 **लालितः पञ्चवर्षाणि बन्धुदत्तः स्वबन्धुभिः।**
करात् करतले न्यस्य सद्रत्नमिव नित्यशः।। 19।।

अपने बन्धुओं के द्वारा निरन्तर ही एक हाथ से दूसरे हाथ में ले-देकर बहुमूल्य प्रशस्त रत्न की तरह पाँच वर्षों तक उस बन्धुदत्त का लालन-पालन किया गया।

160 **पञ्चस्वितेषु वर्षेषु बान्धवा निन्यिरे गृहम्।**
उपाध्यायस्य संयुक्ताः श्रेष्ठिनो पठनाय तम्।। 20।।

पाँच वर्ष बीत जाने पर वे सेठ बन्धु और बान्धवगण उसके घर आए और वे सब मिलकर उस बन्धुदत्त को पढ़ने के लिए उपाध्याय के घर ले गए।

161 **क्रमेण तेन विज्ञाताः श्रुतार्थाः सकला अपि।**
परीक्षणञ्च रत्नानां रोहणं गजवाजिनाम्।। 21।।

उस बन्धुदत्त ने क्रमशः सभी श्रुत-शास्त्रों के अर्थ समझ लिए। रत्नों का परीक्षण एवं हाथी तथा घोड़ों की सवारी करना भी सीख लिया।

162 **कियद्भिर्वासरैर्यातः स भविष्णुः ससंभ्रमम्।**
शीतगुः स्वकुलाकाशे सर्वत्र प्रथिताभिधः।। 22।।

वह भविष्णु बन्धुदत्त कुछ ही दिनों में बड़ी तेजी से अपने वंशाकाश में चन्द्रमा के समान ही प्रसिद्ध नाम वाला हो गया।

163 **स जहार स्वरूपेण मनांसि पुरयोषिताम्।**
न परं पश्यतां देवमानवानामपि स्फुटम्।। 23।।

उस बन्धुदत्त ने अपने सुन्दर रूप के द्वारा केवल नगर की युवति-नारियों के मानस को ही आकर्षित नहीं किया, अपितु देखने वाले देव एवं मनुष्यों के मन को भी उसने मोहित कर दिया।

धनार्जन हेतु कांचनू-द्वीप जाने की तैयारी

164 एकदा स समं मित्रैः रममाणो वनं ययौ।
तत्र सोऽभिहितः प्रीत्या सुहृद्भिः सहगामिभिः।। 24।।

एक बार वह बन्धुदत्त अपने मित्रों के साथ क्रीडार्थ जङ्गल में गया। वहाँ उसके सहगामी मित्रों ने प्रेमपूर्वक उससे कहा—

165 धन्यास्त एव भूभागे ये बबन्धुर्नरा दृढम्।
स्वदक्षिणभुजालानस्तम्भे श्री श्रीकरेणुकाम्।। 25।।

इस पृथ्वी पर वे ही धन्य हैं, जिन लोगों ने अपनी दक्षिण-बाहु रूप आलान (हाथी बाँधने का खूँटा) में लक्ष्मीरूपी हथिनी को बाँध रखा है।

166 न येऽत्रोपार्जने दाने समर्था विपुलश्रियः।
किमत्र तैनरैर्जातैः प्रजायाः परिपूरणैः।। 26।।

जो लोग धनी होते हुए भी धन के उपार्जन में और दान देने में असमर्थ हैं, उनके उत्पन्न होने से और प्रजाओं की वृद्धि करते रहने से कोई लाभ नहीं।

167 ये पितुर्भुञ्जते लक्ष्मीं मातृतुल्यां विबुद्धयः।
निकृष्टाः के परे तेभ्यो मनुजेभ्यो महीतले।। 27।।

जो मन्दबुद्धि, माता के समान पिता की लक्ष्मी का भोग करते हैं, उन मनुष्यों से बढ़कर निकृष्ट इस पृथ्वी पर और कौन हैं?

168 यैः समासाद्य मानुष्यं प्रांशुलभ्यं न चार्जितः।
अर्थो धर्मश्च कामो वा तैरात्मा विप्रतारितः।। 28।।

कठिनाई से प्राप्य मनुष्यता को पाकर भी जिन लोगों ने धर्म, अर्थ एवं काम को प्राप्त नहीं किया, उन्होंने अपनी आत्मा को ही प्रतारित किया है।

169 पितुर्द्रव्येण को नात्र श्रीमानहमहं ब्रुवेत्।
निजार्जितेन रिक्थेन विभाति विरलो जनः।। 29।।

पिता के धन से, 'मैं महान् धनवान हूँ' यह कौन नहीं कह सकता?

किन्तु स्वोपार्जित धन से विरले लोग ही सुशोभित हो पाते हैं।

170 **समुपार्ज्य स्वयं द्रव्यं कारयन्तीह ये नराः।**
कीर्त्तनानि मनोज्ञानि वित्तीर्य्य विपुलं धनम्।। 30।।

जो लोग स्वयं धन कमाकर तथा इस पृथ्वी पर पर्याप्त दान देकर मनोहर-कीर्तन (यशोगान) कराते हैं—

171 **तेषामिहैव गीयन्ते यशांसि प्रथमं पुनः।**
परत्र दिव्यसौख्यानि लभन्ते ते सुरालयम्।। 31।।—*युगलम्*

—उन्हीं का इस पृथ्वी पर सर्वप्रथम यशोगान होता है और परलोक जाने पर वे ही स्वर्ग में दिव्य-सुखों को प्राप्त करते हैं।

जीवन में पुरुषार्थ करना अत्यावश्यक

172 **उद्यमेन बिना क्वापि न स्थेयं पुरुषैः सखे।**
निरुद्यमान्नरांस्त्यक्त्वा प्रयान्ति तरसा श्रियः।। 32।।

हे मित्र! पुरुषों को कभी भी उद्योगहीन नहीं रहना चाहिए। क्योंकि सम्पत्तियाँ उद्योगरहित (पौरुष-विहीन) व्यक्तियों को छोड़कर बड़ी तेजी से भाग जाती हैं।

173 **त्वयका काञ्चन्द्वीपं वयं गन्तुं त्वरामहे।**
आनयामोऽमितं द्रव्यं यदि ते मित्र रोचते।। 33।।

हे मित्र! यदि तुम्हें अच्छा लगे, तो तुम्हारे साथ हम सभी **काञ्चन्द्वीप** चलना चाहते हैं, जहाँ से हम लोग प्रभूत धन अर्जित कर लाएँगे।

174 **मित्रवाक्यं समाकर्ण्य बन्धुदत्तस्ततो जगौ।**
ईदृशं भद्रमुद्घुष्टं को नाम प्रतिपद्यते।। 34।।

मित्र के वचन सुनकर **बन्धुदत्त** ने कहा—'इस प्रकार के कल्याणकारक कथन को भला कौन नहीं मानेगा?'

175 **इति मन्त्रं विधायोच्चैः सर्वे सानन्दमानसाः।**
जग्मुः पुरं वनं मुक्त्वा बन्धुदत्तादयोऽखिलाः।। 35।।

इस तरह बन्धुदत्त आदि सभी प्रसन्नमन से धनार्जन सम्बन्धी उच्च विचार करके वन-क्रीडा को छोड़कर अपने नगर में वापस लौट आए।

बन्धुदत्त का निवेदन

176 **अन्यस्मिन् वासरे जाते विजने निजमन्दिरे।**
क्षणमेकमवस्थाय पितुरभ्यर्णमात्मनः।। 36।।

अन्य किसी दूसरे दिन अपने भवन को जन-विहीन शून्य देखकर उस बन्धुदत्त ने अपने पिता के सामने एक क्षण तक बैठकर —

177 **मुकुलीकृत्य पाणी द्वौ द्रव्योपार्जनहेतवे।**
मित्रोदितं समावेद्य निःशेषं प्रियया गिरा।। 37।।

— अपने दोनों हाथों को जोड़कर द्रव्योपार्जन के लिए मित्रों द्वारा कहे गए विचारों को मधुर वचनों द्वारा निवेदित करके —

178 **जनकं काञ्चन्द्वीपं मनोज्ञं गन्तुलिप्सया।**
स्वयं विज्ञापयामास बन्धुदत्तो विशुद्धधीः।। 38।। — *त्रिकलम्*

— उस बुद्धिमान् **बन्धुदत्त** ने सुन्दर **काञ्चन्द्वीप** जाने की इच्छा से पिताजी के सामने इस प्रकार निवेदन किया —

179 **यदिं स्यान्मे त्वदादेशस्तदा वैश्यसुतैरिमैः।**
समेतः काञ्चनद्वीपं वाणिज्यायै व्रजाम्यहम्।। 39।।

— "हे पितः! यदि आपका आदेश हो तो मैं इन अपने वैश्य-पुत्रों के साथ व्यापार के लिए **काञ्चन्द्वीप** चला जाऊँ?"

पिता का उत्तर

180 **तदाकर्ण्य वचः सूनोः सस्मितः वदनं निजम्।**
कृत्वा धनपतिः श्रेष्ठी जगौ पश्यन् सुताननम्।। 40।।

अपने पुत्र **बन्धुदत्त** के उस निवेदन को सुनकर **धनपति सेठ** ने

प्रसन्नतापूर्वक पुत्र-मुख की ओर देखते हुए कहा—

181 **त्वं सुपुत्रः सुरूपस्त्वं त्वं कुलाकाशचन्द्रमाः।**
अतीव सुकुमारस्त्वं त्वमेव विनयालयः।। 41।।

—"हे पुत्र बन्धुदत्त—तुम सुपुत्र हो, सुन्दर हो एवं कुलरूपी गगन में चाँद के समान हो। तुम अत्यन्त सुकुमार हो और तुम ही विनय-गुण के स्थान हो।"

182 **युक्तमुक्तं त्वया पुत्र परं किन्तु त्वदग्रतः।**
विवक्ष्यामि स्थिरीभूय श्रृणु त्वं वचनं मम।। 42।।

"हे पुत्र! तुमने उचित ही कहा है किन्तु मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, अतः सावधान होकर मेरा कथन सुनो—"

समुद्र-यात्रा की कठिनाइयाँ

183 **यतो मार्गे महाक्लेशाः प्रजायन्ते प्रवासिनाम्।**
क्षुत्पिपासामहातङ्कशीतवातातपादयः।। 43।।

—"क्योंकि प्रवासियों को रास्ते में भूख, प्यास, महान् भय, शीत, धूप आदि के बड़े-बड़े कष्ट हुआ करते हैं—"

184 **अगाधो नीरधिर्दुर्गो नक्रचक्रसमाकुलः।**
नहि स्तोकेन पुण्येन तस्य पारमवाप्यते।। 44।।

"मगरमच्छ-घड़ियालों से भरा हुआ, अगाध-समुद्र अत्यन्त दुर्गम होता है। थोड़े से पुण्य से उससे पार नहीं पाया जा सकता—"

185 **सम्प्राप्ता अपि तत्पारं कथञ्चिद्दै वयोगताः।**
आगच्छन्ति नरा गेह द्रव्यमादाय दुःखतः।। 45।।

—"आयु-शेष लोग यदि किसी तरह समुद्र के पार चले भी जाते हैं, तो फिर वहाँ से द्रव्य लेकर बड़ी कठिनाई से ही घर वापिस लौट पाते हैं—"

**186 अतस्त्वमूनि सौख्यानि भुङ्क्ष्व पुत्र यथेच्छया।
तिष्ठ प्रेक्षणकं पश्यन् शृण्वन्गीतानि नित्यशः।। 46।।**

—"इसलिए हे पुत्र! अपनी इच्छा से तुम इन घरेलू सुख-सुविधाओं का भोग करो और दृश्य नाटकों के सुदृश्यों को देखते हुए तथा नित्य गीतों को सुनते हुए, यहीं घर में बने रहो।"

**187 तातोदितं वचःश्रुत्वा बन्धुदत्तो जगौ पुनः।
समीचीनमिदं तात यद्भवद्भिरुदीरितम्।। 47।।**

पिता के उक्त वचनों को सुनकर बन्धुदत्त ने पुनः कहा — हे पिता आपने जो कहा, वह एकदम उचित है।

**188 परं किन्तु किमत्राङ्गभुवां जातेन तेन वै।
निजमातृमनोहारियौवनश्री विनाशिना।। 48।।**

—"किन्तु हे तात्, जननी की मनोहर जवानी को विनष्ट करने वाले उस पुत्र-जन्म से क्या लाभ? जो अकर्मण्य रहता है— "

**189 न यः करोति सौख्यानि पितॄणां सुहृदां सताम्।
उपार्ज्य विपुलं द्रव्यं स्वहस्ताभ्यां प्रयत्नतः।। 49।।**

— युग्मकम्

— "जो यत्नपूर्वक अपने हाथों से प्रभूत धन अर्जित कर, अपने माता-पिता, मित्रों एवं सज्जनों को सुख नहीं दे सकता, उस पुत्र-जन्म से क्या लाभ?" (युग्मक)

**190 श्रुत्वा पुत्रवचः श्रेष्ठी तुतोष हृदि निर्भरम्।
एवमस्तु पुनस्तेन श्रेष्ठिना श्रेष्ठ बुद्धिना।। 50।।**

पुत्र के आत्म-निर्भर बनाने वाले वचन सुनकर वह सेठ हृदय से सन्तुष्ट हुआ और उसे 'एवमस्तु' कहकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। पुनः उस बुद्धिसम्पन्न सेठ ने —

191 अशेष सा नृपस्याग्रे किंवदन्ती प्रकाशिता।
अभ्युपेता नृपेणापि न दोषोऽस्त्यत्र कश्चन।। 51।। — *युग्मकम्*

राजा के सामने जाकर उस सेठ ने अपनी पूरी बात निवेदित की। राजा ने भी उसके इस प्रस्ताव को दोष-रहित कहकर स्वीकार कर लिया। (युग्मकं)

192 अथ राजाज्ञया वेगात् प्रदतः पटहः पुरे।
तस्य शब्देन निःशेषमक्षुभत् सहसा पुरम्।। 52।।

इसके बाद राजा की आज्ञा से पूरे नगर में पटहध्वनि गुञ्जित हो उठी। उसकी आवाज से सारा नगर एकाएक क्षुब्ध हो गया।

193 किं किं किमिति जल्पन्तः पृच्छन्ति स्म तदा जनाः।
पूत्कारं कुर्वता तेन प्रोक्तं पटहपाणिना।। 53।।

यह क्या है? यह क्या है? ऐसा कहते हुए लोग आपस में एक-दूसरे से पूछने लगे। हाथ में पटह लिए हुए वह पटह-पुरुष जोर-जोर से कहने लगा —

194 यः कश्चिद् गन्तुकामोऽस्ति वाणिज्यायै वणिक्सुतः।
कौतुकात् काञ्चनद्वीपं स मिलत्वेत्य वेगतः।। 54।।

—"इस नगर के वैश्यों के जो भी पुत्र व्यापार करने के लिए काञ्चनद्वीप (स्वर्णद्वीप) जाना चाहें, वे शीघ्र ही आकर सेठ बन्धुदत्त से मिलें।"

195 बन्धुदत्तस्य धीरस्य सार्थवाहस्य धीमतः।
सूनोर्धनपतेरद्य सर्वभाण्डातिशालिनः।। 55।।

समस्त सामग्रियों से सम्पन्न धनपति का पुत्र, बुद्धिमान् एवं धीर-वीर उस सार्थवाह बन्धुदत्त —

196 निशम्य तदवचःश्रव्यं श्रेष्ठिपुत्रस्य तत्क्षणात्।
शतानि पञ्च वैश्यानां सूनवो मिलितास्ततः।। 56।। — *युग्मकम्*

(सेठ पुत्र) की वह घोषणा सुनकर तत्क्षण ही पाँच सौ वैश्यों के पुत्र वहाँ

उपस्थित हो गए। (युग्मकम्)

बन्धुदत्त — 'नगरसेठ' घोषित

197 तेषां पुरस्सरं तस्य बन्धुदत्तस्य भूभृता।
ललाटे खण्डचन्द्राभे बद्धः पट्टः प्रमोदतः।। 57।।

उन उपस्थित वैश्य-पुत्रों के सामने ही **राजा भूपाल** ने उस **बन्धुदत्त-सार्थवाह** के चन्द्रखण्ड के समान ललाट पर प्रमुदित मन से मङ्गलपट्ट बाँधते हुए कहा—

198 अद्य प्रभृति भो लोक एषा श्रेष्ठी मया कृतः।
लङ्घनीयं न युष्माभिरस्य वाक्यं कदाचन्।। 58।।

— "ऐ लोगो! (वैश्य-पुत्रो) सुनो, आज से मैंने इसी बन्धुदत्त को **नगर-सेठ** बनाया है। तुम लोग कभी भी इसकी आज्ञा का उल्लङ्घन मत करना।"

199 अथ तां कस्यचिद् वैश्यमुखादाकर्ण्य निःसृताम्।
वार्तां भविष्यदत्तोऽपि मातुरग्रे न्यवेदयत्।। 59।।

अन्य किसी वैश्य के मुख से बन्धुदत्त द्वारा घोषित **विदेश-यात्रा** की बात को सुनकर **भविष्यदत्त** ने भी अपनी माता के सामने इस प्रकार निवेदन किया—

200 बन्धुदत्तेऽम्बुधेः पारं वाणिज्यार्थं गमिष्यति।
सद्धि पञ्चशतैः पुत्रैर्वैश्यानां विमलाशयैः।। 60।।

—"हे माँ, बन्धुदत्त पाँच सौ सज्जन वैश्य-पुत्रों के साथ व्यापार के लिए समुद्र के उस पार जाएगा।"

201 तेनाम्बाहमपि प्रान्तं व्रजामि सरितां पतेः।
अनुग्रहो यदि स्यात्ते पुर-द्वीपं दिदृक्षयाः।। 61।।

—"अतः हे माँ! मैं भी उसके साथ पुर-नगर-द्वीप को देखने की इच्छा से, यदि तुम्हारी कृपा हो तो, समुद्र के पार चला जाऊँ?"

202 पुत्रवाक्यं समाकर्ण्य कमलश्रीस्ततो जगौ।
भद्रमुक्तं त्वया पुत्र किन्तु बैरी स ते स्फुटम्।। 62।।

पुत्र का कथन सुनकर माता कमलश्री ने कहा — हे बेटे, तुमने ठीक कहा, किन्तु वह बन्धुदत्त तो तुम्हारा स्पष्ट रूप से दुश्मन है।

203 न योऽत्र सहते पुत्र तव नामापि दुष्टधीः।
मात्सर्यतः स किं क्रूरो न हन्ति त्वां बहिर्गतम्।। 63।।

"हे पुत्र! जो दुष्ट-बुद्धि तुम्हारा नाम भी यहाँ सहन नहीं कर सकता, क्या वह निर्दयी, तुम्हें बाहर (विदेश) जाने पर वहाँ ईर्ष्या से मार नहीं डालेगा?"

204 स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा बभाषे भयवर्जितः।
सुधीर्भविष्यदत्तः श्रीसुखाकाङ्क्षाहिताशयः।। 64।।

अपनी माता के वचन सुनकर, निर्भीक, चतुर एवं सुखाकांक्षा से युक्त हृदय वाले उस भविष्यदत्त ने कहा —

205 मा कुरुष्व भयं मातः मामके विषये यतः।
सन्ति सन्तः सदाचाराः वणिक्पुत्राः निवारकाः।। 65।।

—"हे माँ! मेरे विषय में तू भय न कर! क्योंकि सभी वणिक्पुत्र सदाचारी एवं सज्जन होते हैं। अतः वे मेरे रक्षक भी रहेंगे।"

206 तस्य माम् हन्तुकामस्य कथञ्चित् पापपाकतः।
न परं कुरुते सोऽपि कुकर्म्मेदं विनिन्दितम्।। 66।।

किसी पाप-कर्म के प्रभाव से मुझे मारने के इच्छुक उस बन्धुदत्त को रोकने वाले भी तैयार हो जावेंगे। अतः (निवारक वणिक्पुत्र हैं, पूर्व-पद्य से सम्बद्ध) वह भी इस तरह का कुकर्म नहीं कर सकेगा।

207 जायते हिंसनादुदुःखं मन्यमानः स्वमानसे।
अतो गच्छामि मा चिन्तां कृथाश्चेतसि मामकाम्।। 67।।

'हिंसा करने से दुःख ही उत्पन्न होता है' ऐसा अपने मन में विचार

करता हूँ। (पूर्व पद्य के अन्तिम वाक्य से सम्बद्ध) यही सोचता हुआ मैं जा रहा हूँ! अतः हे माता, मेरे सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की चिन्ता न करो।

208 इति सम्बोध्य सद्वाक्यैर्वाष्पाम्भः परिपूरिते।
स्वमातुर्नयनाम्भोजे प्रमृज्य निजपाणिना।। 68।।

इस प्रकार अश्रुजल से प्रपूरित माता के नयन-कमलों को अपने हाथों से पोंछकर और ढाढस भरे वाक्यों से उसे समझा-बुझाकर —

209 ततो भविष्यदत्तोऽसौ स सार गृहतोऽद्भुतम्।
मिलितो बन्धुदत्तस्य स्वयं गत्वा सतां प्रियः।। 69।।

सज्जनों का प्रिय और अद्भुत गुणग्राही वह भविष्यदत्त अपने घर से चल दिया और स्वयं जाकर बन्धुदत्त से मिला।

210 तन्निरीक्ष्य स्वचक्षुर्भ्यां बन्धुदत्तः प्रमोदतः।
तत्पादपङ्कजद्वन्द्वमवानंसीत् ससंभ्रमम्।। 70।।

बन्धुदत्त ने अत्यन्त प्रमुदित होकर अपने नयनों से भविष्यदत्त को स्वयं आया हुआ देखकर उसके चरण-कमलों में आदरपूर्वक प्रणाम किया और उससे बोला —

211 यदत्र त्वं समायातस्ताततुल्यो ममत्वतः।
तद्भद्रं भद्रकार्यज्ञ भ्रातरद्य त्वया कृतम्।। 71।।

हे कुशल-काम भ्रातः! हे पितृतुल्य, ममता के वशीभूत होकर तुम आज यहाँ जो आ गए हो, यह तुमने बड़ा ही अच्छा कार्य किया है।

212 गुणी भविष्यदत्तस्तं बन्धुदत्तं जगौ मुदा।
त्वया सार्द्धं महं भ्रातर्गन्तुमिच्छामि कौतुकात्।। 72।।

उस गुणवान् भविष्यदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक उस बन्धुदत्त से कहा — हे बन्धो! कौतुकवश तुम्हारे साथ मैं भी विदेश-यात्रा पर चलना चाहता हूँ।

213 गम्यतां बन्धुदत्तेन जगे भ्रातरहं पुनः।
तवाग्रे विनयं कुर्वन् गमिष्यामि न संशयः।। 73।।

यह सुनकर उस बन्धुदत्त ने कहा — हे भाई! आप अवश्य ही चलें। मैं भी आपके आगे सन्देह रहित होकर विनयपूर्वक चलूँगा।

214 इत्यन्योन्यं प्रजल्पन्तौ तौ निरीक्ष्य स्वचक्षुषा।
सुरूपया तयाऽवाचि बन्धुदत्तो दुरीशयाः।। 74।।

इस प्रकार अपने नेत्रों से परस्पर में उन दोनों को वार्तालाप करते हुए देखकर दुर्भावनायुक्त ईर्ष्यालु सुरूपा माता ने (एकान्त में बुलाकर) अपने पुत्र बन्धुदत्त से कहा —

215 एषस्त्वंशमुद्दामः स्वामी तव पितुः श्रियः।
श्रेष्ठोऽनिष्टकरः क्रूरः कुलक्रमसमागतः।। 75।।

यह भविष्यदत्त तुम्हारी पितृ-सम्पत्ति का अनिवार्य स्वामी है तथा कुलक्रमानुसार क्रूर एवं सबसे बड़ा अनिष्टकारी है।

216 इति मत्वा तथा मार्गे कर्तव्यं त्वयका यथा।
भूयो मन्मस्तके शूलो न भवेद् दृष्टिगोचरः।। 76।।

ऐसा समझकर हे पुत्र, मार्ग में तुझे इस प्रकार का काम करना चाहिए, जिससे कि आगें फिर कभी मेरे मस्तिष्क में पीड़ा उत्पन्न न हो (अर्थात् उस भविष्यदत्त को समुद्री-मार्ग में ही मार डालना)।

217 मत्वा मातृवचः सोऽपि दध्यौ मनसि दुष्टधीः।
सत्यमेतद्यथाऽवाचि मन्मात्रा भ्रान्तिरत्र नो।। 77।।

माँ की बात मानकर उस दुर्बुद्धि बन्धुदत्त ने भी सोचा कि मेरी माँ ने जैसा कहा, वह सच है इसमें किसी भी प्रकार की भ्रान्ति नहीं।

समुद्री-मार्ग की ओर प्रस्थान

218 **शोभनेऽहनि सर्वेऽपि प्रतस्थुर्वणिजां सुताः।**
सहिता बन्धुदत्तेन सभाण्डा भूरिवाहनाः।। 78।।

इस प्रकार शुभ-दिवस में सभी वणिक्पुत्रों ने विविध व्यापारिक सामग्रियों तथा अनेक समुद्री-वाहनों से युक्त होकर बन्धुदत्त के साथ विदेश के लिए प्रस्थान किया।

219 **सज्जना अपि ये चेलुरनुव्रजन हेतवे।**
दृढयालिङ्ग्य बाहुभ्यां ते पुनस्तैर्विसर्जिताः।। 79।।

जो सज्जन बन्धु-बान्धव उन सभी के लिए विदा देने हेतु उनके पीछे-पीछे चले थे, उन बन्धुदत्त आदि वणिक् पुत्रों ने उन्हें अपनी भुजाओं से दृढ़ आलिंगन कर उन्हें सादर वापस लौटा दिया।

220 **द्रुमैरन्तरिताः सन्तः सजनाः साश्रुलोचनाः।**
पुनरीयुर्निजावासं स्मरन्तो निजबान्धवान्।। 80।।

अपने लोगों के साथ रोते हुए वे सभी जन वृक्षों से ओझल होकर विदेश जाने वाले अपने-अपने बन्धुओं को याद करते हुए अपने-अपने आवास को लौट आए।

221 **सुरूपाङ्गभुवा सार्द्धं सर्वे वैश्या अहर्निशम्।**
पूर्व-दक्षिणकोणस्था व्रजन्ति स्म निराकुलाः।। 81।।

सुरूपा के पुत्र उस बन्धुदत्त के साथ वे सभी वैश्य-पुत्र रात-दिन निश्चिन्त होकर उसके दाएँ-बाएँ उसके अगल-बगल में चलते थे अथवा पूर्व-दक्षिण-दिशा में स्थित देशों (अर्थात् South-east Asia के देशों) की ओर उन्मुख होकर चल पड़े।

222 **नदीनगवनान्युच्चैर्लङ्घयन्तो वणिक् - सुताः।**
दिनैः कियद्भिरेवाशु तटं प्रापुः पयोनिधेः।। 82।।

वे वणिक् पुत्र, नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों और वनों को लाँघते हुए कुछ ही

दिनों में समुद्र के तट पर आ पहुँचे।

समुद्र-सौन्दर्य-वर्णन

223 नयान्वितनराधीशमिव सीमासमन्वितम्।
यतिचित्तमिवात्यन्तं सदैव तिमिराजितम्।। 83।।

जिस प्रकार राजा न्याय-नीति से मर्यादित रहता है, वह समुद्र भी उसी प्रकार अपनी मर्यादायुक्त था, जिस प्रकार यतिजनों का चित्त अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित अर्थात् वह सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश से युक्त होता है, उसी प्रकार वह समुद्र भी तिमि-मत्स्य से निरन्तर सुशोभित रहता था।

224 निर्वाणमिव मुक्तानां मालिकाभिरलङ्कृतम्।
प्रतीहारस्य दोर्दण्डमिव वेत्रलतान्वितम्।। 84।।

जिस प्रकार मोक्ष-स्थल मुक्त जीवों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह समुद्र भी मोतियों की राशियों से सुशोभित था। जिस प्रकार द्वारपाल का भुजदंड वेंत से सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह समुद्र भी वेत्रलताओं से सुशोभित था। तथा —

225 रथाङ्गिनमिवानेकप्रस्फुरद्रत्ननायकम्।
नवाम्बुदमिवाजस्रं गर्जन्तं जलसम्भृतम्।। 85।।

जिस प्रकार नारायण-विष्णु अनेक प्रकार के स्फुरायमान् रत्नों के नायक हैं, उसी प्रकार वह समुद्र भी कान्तिमान रत्नों का नायक-स्वामी था और जिस प्रकार नवीन सजल मेघ निरन्तर गरजता रहता है ठीक उसी प्रकार अगाध जल से भरा हुआ वह समुद्र भी निरन्तर गरजता रहता था। इस प्रकार —

226 अधो रत्नानि कुर्वन्तं रूपेणं वा भुवोभृशम्।
ईदृशं वारिधिं दृष्ट्वा मुदं सर्वे प्रपेदिरे।। 86।। — *चतुष्कलम्*

अपने अधोभाग में रत्नों को सुरक्षित रखे हुए तथा पृथिवी के लिए दर्पण के समान उस समुद्र को देखकर सभी अत्यन्त प्रमुदित हो उठे। (चतुष्कलम्)

शुभ-मुहूर्त्त में प्रस्थान की तैयारी

**227 तस्य वेला वने स्थित्वा दिनानि कतिचित्पुनः।
प्रशस्ते दिवसे जाते शुभलाभसमन्विते।। 87।।**

उसके तट-प्रदेश में स्थित उद्यान में कुछ दिनों तक ठहरकर शुभ-लाभ से युक्त प्रशंसनीय लग्न वाले दिवस के आने पर —

**228 सपर्यामिष्टदेवानां विधाय पद्पद्मयोः।
दधिदूर्वाक्षतद्रव्यैर्मङ्गलायातिभक्तितः।। 88।।**

अत्यन्त भक्तिपूर्वक, मङ्गलप्राप्ति के लिए दधि, दूब, अक्षत आदि द्रव्यों से इष्टदेवों के पादपद्मों की पूजा करके —

समुद्री-पोत के आवश्यक उपकरण

**229 सन्मार्जितातततस्तुष्टया पोताः सुप्रवणैर्नरैः।
अन्तरे विविशुः प्रौढ़ाः काण्डाधाराविचक्षणाः।। 89।।**

— *त्रिकलम्*

कुशल लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक नौकाओं (समुद्री जहाजों) का सम्मार्जन किया, फिर पतवार लिए हुए प्रौढ़ चतुर नाविकों ने उनके भीतर प्रवेश किया। (त्रिकलम्)

**230 ऊर्ध्वस्थानेषु सर्वेषु तस्थुर्निर्यामिका नराः।
नद्धाध्वजा परिस्थाप्य शृङ्खलैः सह मुद्गराम्।। 90।।**

सभी ऊँचे स्थानों में नियन्त्रक (संचालक) लोग खड़े हो गए। पाल बाँध दिए गए, ध्वजाएँ भी बाँध दी गई। साँकलों द्वारा मुद्गरों (लंगरों) को बाँध दिया गया और पोतध्वज भी फहरा दिया गया।

**231 इन्धनानि समादाय वह्निना पयसा सह।
ततः सर्वे समारुह्य यानपात्रं प्रतस्थिरे।। 91।।**

इसके बाद सभी यात्री अग्नि और पानी-पात्रों के साथ इन्धन लेकर

जहाज पर चढ़े और प्रस्थान कर दिया।

समुद्र-यात्रा प्रारम्भ

232 ऋक्षानुसारमाश्रित्य पोतौघा निशि यत्नतः।
मरुद्वेगाहताः सन्तो ययुर्ध्वजसमीरिताः।। 92।।

रात्रि में वायु के वेग से प्रभावित तथा ध्वज (पाल) से प्रेरित वह पोत-समुदाय बड़े ही प्रयत्नों के बाद ऋक्ष-नक्षत्रों का अनुसरण करते हुए चले।

233 बहुभिर्वासरैस्तेषां व्रजतामापगापतौ।
दुर्व्वातोऽभून्महाभूरि भूरुहावलिभञ्जनः।। 93।।

उन वणिक्पुत्रों द्वारा बहुत दिनों तक समुद्र में यात्रा करते रहने के बाद उसमें वृक्षों को भी उखाड़ फेंकने वाला महान् झंझावात (दुर्वात) उठा।

234 मुमुचुस्तत्क्षणादेव कैवर्ता मुद्गरानधः।
बबन्धुः पवनाधूतध्वजामालाश्च चञ्चलाः।। 94।।

तत्क्षण ही खेवटियों पोतचालकों ने मुद्गरों (लंगरों) को नीचे की ओर छोड़ दिया और हवा से अत्यन्त हिलते हुए चंचल पालों को भी बाँध दिया।

235 दिनानि कतिचित्तत्र सर्वे स्थित्वा स्थिराशयाः।
प्रतस्थिरे पुनः प्राप्य सानुकूलं प्रभञ्जनम्।। 95।।

स्थितप्रज्ञ वे सभी वणिक्पुत्र कुछ दिनों तक वहीं ठहरकर बाद में जब वह प्रभञ्जन (झंझावात) अनुकूल हुआ तब पुनः आगे चल दिए।

विश्व-प्रसिद्ध मदनद्वीप

236 पोतसंस्थैस्ततः सर्वैरग्रेगिरिरुदीक्षितः।
तत्र द्वीपोऽस्ति विस्तीर्णो मदनाख्यः क्षितौ श्रुतः।। 96।।

जहाज पर सवार उन सभी लोगों ने अपने आगे एक विशाल पर्वत देखा, जिस पर विश्व में प्रसिद्ध एवं अत्यन्त विस्तृत **मदनद्वीप** स्थित था।

237 पोतेभ्यश्च समुत्तीर्य्य तत्तीरे समुपस्थिताः।
सुखेन तत्र विश्रम्य कियत्कालं यथेच्छयाः।। 97।।

अपने-अपने जहाजों से उतरकर वे सभी वणिक्पुत्र समुद्र-तट पर उपस्थित हुए तथा वहाँ अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक सुखपूर्वक विश्राम करके तथा —

238 इन्धनैः सह पानीयं पोतेषु विधृतं तकैः।
नानानोकहसंभूतफलपूरेण चामितैः।। 98।।

उन लोगों ने इन्धनों और अनेक प्रकार के वृक्षों से उत्पन्न विविध अपरिमित फल-समुदायों के साथ पेय जल लेकर भी अपने जहाजों में रख लिया।

239 यावत्तावत्समाचख्यौ बन्धुदत्तो वणिक्पतिः।
गम्यताममधुना हन्त किं बिलम्बेन निष्फलम्।। 99।।

उसी समय उन वणिक्पुत्रों के स्वामी **महासार्थवाह — बन्धुदत्त** ने कहा — अरे, अब यहाँ से तत्काल चल दिया जाए। व्यर्थ विलम्ब करने से क्या लाभ?

240 समाकर्ण्य वचस्तस्य बन्धुदत्तस्य दुर्मतेः।
आरुह्य यानपात्रेषु सर्वे सम्भूय वेगतः।। 100।।

उस दुर्बुद्धि बन्धुदत्त का कथन सुनकर सभी यात्री तेजी से वहाँ इकट्ठे हुए और अपने-अपने वाहनों पर सवार हो गए।

241 भूयोऽपि बन्धुदत्तेन जगे गम्भीरनादिनाः।
किं सर्वेऽपि समायाता न वा वदत मत्पुरः।। 101।।

बन्धुदत्त ने गम्भीर आवाज देकर पुनः कहा — क्या सभी लोग आ गए या नहीं? मुझे सूचना दें।

242 निशम्य तद्वचोऽवाचि पुंसां केनापि तत्क्षणे।
नाद्यापीह समायाति त्वद्भ्राता स्वजनप्रियः।। 102।।

उस बन्धुदत्त का कथन सुनकर उन यात्री पुरुषों में किसी एक ने तत्काल कहा — स्वजनों का प्रिय एवं आपका भाई (भविष्यदत्त) अभी तक यहाँ नहीं आया है।

243 अथ मातुर्वचः स्मृत्वा बन्धुदत्तोऽलपद्वचः।
स मे भ्राता न दायादो दुरात्मा दुष्टमानसः।। 103।।

अपनी माता का कथन स्मरण करके बन्धुदत्त ने पुनः कहा — वह मेरा भाई नहीं है, बल्कि कुत्सित मन वाला वह दुरात्मा हमारी पितृ-सम्पत्ति का एक हिस्सेदार है।

244 किमागतेन तेनेह ममानिष्टविधायिना।
सानुकूलोऽनिलो हन्त वर्त्तते किं बहूदितैः।। 104।।

मेरा अनिष्ट करने वाले उस भविष्यदत्त के यहाँ आने से क्या लाभ? अरे, इस समय हवा एकदम मेरे अनुकूल है। अधिक कहने से क्या लाभ? अतः —

245 उद्धृत्य मुद्गरान् लौहान् प्रसार्य ध्वजमालिकाः।
प्रेर्यतां पोतसंघातो बिलम्बो मा विधीयताम्।। 105।।

पतवारों और लोहे के मुद्गरों (लंगरों) को खोलकर, पालों को फैलाकर पोत-समुदायों को प्रेरित कर चलाना प्रारंभ करें, उसमें देर न करें।

246 तन्निशम्य वणिक्पुत्रा ईक्षन्ते स्म परस्परम्।
मौनमादाय धुन्वन्तः स्वशिरांसि सविस्मयाः।। 106।।

उस बन्धुदत्त का यह अनिष्टकारी कथन सुनकर सभी साथी वणिक्पुत्र विस्मित हो गए और चुप-चाप अपने शिरों को धुनते हुए आपस में, वे एक-दूसरे की ओर देखने लगे तथा —

समुद्र-यानों का प्रस्थान

247 **पापिष्ठोऽयमिति प्रोच्य प्रेरिता पोतसंहतिः।**
वणिग्भिर्विलगद्बाष्पधाराधौताधराननैः।। 107।।

गिरती हुई अश्रुधारा से अपने-अपने मुखों और अधरोष्ठों को धोते हुए उन वणिक्पुत्रों ने 'यह बन्धुदत्त महापापी है' कहकर पोत-संमुदाय को चालू करा दिया।

भविष्यदत्त का आगमन

248 **अथाकुलमना वार्द्धितटे तत्र समाययौः।**
द्रुतं भविष्यदत्तोऽपि समादाय फलोत्करम्।। 108।।

तदनन्तर अपने मन में घबराकर वह **भविष्यदत्त** भी फलों को लेकर तीव्र गति से चलकर उस समुद्र के तट पर आ पहुँचा।

249 **न यावत्तत्राम्बुधिस्थानैक्षिष्ट प्रमदोज्झितः।**
खिद्यमानो मनोमध्ये तदाशां संविलोक्य सः।। 109।।

किन्तु जब उसने समुद्र-तट पर स्थित पोत-समूहों को नहीं देखा तो मन में खिन्न होते हुए वह चारों दिशाओं की ओर देखने लगा।

250 **मुञ्चन्निश्श्वासमुश्वासं समागृह्णन्नसौनतिम्।**
कुर्वन्यूत्कारमुदबाहुर्धावति स्माम्बुधेस्तटे।। 110।।

निःश्वासोच्छ्वास छोड़ता और गृहण करता हुआ, पूर्णतः झुका हुआ एवं दोनों भुजाओं को उठाकर 'यू' 'यू' करता हुआ वह बेचारा भविष्यदत्त समुद्र-तट पर इधर-उधर दौड़ने लगा।

251 **अपश्यंस्तांस्तथा तूर्णं स पपातावनीतले।**
दध्यौ हृदि प्रबन्धेन निमील्य नयनद्वयम्।। 111।।

समुद्र-तट पर उन साथी लोगों तथा पोतों को न देखकर वह **भविष्यदत्त** एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ा और दोनों आँखें बन्द कर प्रबन्ध-कथा के रूप

में अपने मन में सोचने लगा—

252 **हा पापिष्ठ दुराचारा ये म्लेच्छसदृशा नराः।**
निर्दाक्षिण्यास्त एवेह हीदृशं कर्म कुर्वते।। 112।।

— हाय रे पापी एवं दुराचारी, जो जन म्लेच्छ के समान निष्ठुर होते हैं, वे ही इस तरह के कुकर्म करते हैं।

253 **कृत्वा कर्म्मेदृशं दुष्टं शिष्टमार्गविमर्दनम्।**
न जाने बन्धुदत्त त्वं कां गतिं समुपेष्यसि।। 113।।

— हे बन्धुदत्त! मुझे पता नहीं, शिष्टमार्ग को दूषित करने वाले इस प्रकार के दुष्ट कर्म को करते हुए तुम कौन-सी गति को प्राप्त करोगे?

254 **अथवा तव को दोषो मया विगतमेधसा।**
दुष्टं कृतं पुरा कर्म्म निश्चितं तत्समागतम्।। 114।।

— अथवा, हे बन्धुदत्त, इसमें तुम्हारा क्या दोष? बुद्धिहीन मैंने ही पूर्वजन्म में कोई कुत्सित-कर्म किया होगा, निश्चय ही आज उसी का फल मुझे प्राप्त हुआ है।

255 **किमागत्य मयानेन सह कार्यं प्रसाधितम्।**
नाकारि वचनं मातुर्यत्तस्यैतत्फलं ध्रुवम्।। 115।।

इस बन्धुदत्त के साथ आकर मैंने कौन-सा कार्य सम्पन्न कर लिया है? मैंने माँ की बात न मानी, निश्चय ही यह उसी का कुफल है।

256 **मरणं बन्धनं दुःखं सुखं वाऽपयशो यशः।**
यद्येनोपार्जितं पूर्वं तन्नूनं लभते स ना।। 116।।

मरण, बन्धन, दुःख, सुख, यश, अपयश आदि जो कुछ भी जिसने पूर्वजन्म में अर्जित किया था, निश्चित रूप से उसी को वह (मनुष्य) उस जन्म में भी प्राप्त करता है।

257 न कोऽपि पण्डितः शूरो मुक्त्वा कर्म-पुरार्जितम्।
पूर्वात्तकर्मणः कोऽपि न शक्नोति पलायितुम्।। 117।।

कोई भी पण्डित या शूरवीर पूर्वजन्मार्जित-कर्म को छोड़कर नहीं रह सकता तथा पूर्वजन्म से प्राप्त कर्मफल को छोड़कर कोई भाग भी नहीं सकता।

258 इति संचिन्त्य विश्रम्य सम्बोध्यात्मानमात्मना।
उत्तस्थौ पाणिना स्वेदवारिबिन्दून् प्रमृज्य च।। 118।।

इस तरह विचार कर, कुछ विश्राम कर और स्वयं अपने को समझा-बुझाकर वह भविष्यदत्त उठा और अपने हाथों से पसीने की बूँदों को पोंछकर —

259 सम्भ्रमन् कानने तत्र क्वचिदैक्षत कुञ्जरम्।
मृगेन्द्रनखनिर्भिन्नकुम्भनिर्गतमौक्तिकम्।। 119।।

उसी जंगल में घूमते-भटकते हुए उस भविष्यदत्त ने कहीं पर एक ऐसे गजराज को देखा, जिसके मस्तक से, सिंह के नखों से विदीर्ण होने के कारण, मौक्तिक निकल रहे थे।

260 क्वचिन्नागावलीलीढं सुगन्धं चन्दनद्रुमम्।
क्वचिच्च सैरिभं श्यामं कृतान्तस्येव वाहनम्।। 120।।

वन-भ्रमण के समय उस भविष्यदत्त ने कहीं नागों (सर्पराजों) द्वारा चाँटे गए सुगन्धित चन्दन के वृक्षों को तो कहीं यमराज के वाहन (काले महिष) के समान काले सैरिभों-वनभैसों को देखा—

261 क्वचित् सिंहभयत्रस्तं प्रणश्यन्तं मृगव्रजम्।
क्वचित् पंङ्केषु निर्मग्नं शूकराणां कदम्बकम्।। 121।।

उसने कहीं सिंह से डरकर भागते हुए मृग-समुदाय को, तो कहीं कीचड़ में डूबे हुए सुअर-समुदाय को —(देखा) तथा —

262 क्वचिद्व्याघ्रं प्रगर्जन्तं गुहाद्वारस्थमुद्धतम्।
क्वचिदृक्षं करालास्यमधोवक्त्रकचावृतम्।। 122।।

कहीं गुफा के द्वार पर खड़े होकर गरजते हुए बाघ को और कहीं बालों से ढँके हुए तथा अपने विकराल मुँह को नीचे किए हुए भालू को (देखा)। और —

263 क्वचिच्छाखामृगं वृक्षे प्रधावन्तं फलेच्छया।
क्वचित्फलावनम्राङ्गं नमन्तं प्रश्रयादिव।। 123।।

कहीं फल की इच्छा से वृक्ष पर दौड़ते हुए लंगूरों को देखा, तो कहीं फल के भार से ही झुके हुए वृक्षों को देखा, मानों वे प्रेमवश ही झुके हुए हों।

भविष्यदत्त ने अतिमुक्तक नामक वृक्ष देखा

264 इति पश्यन्नसौ यावत् प्रययौ वनमध्यगः।
तावद् विलोकयामास महीजमतिमुक्तकम्।। 124।।

— कुलकम्

इस तरह उस भविष्यदत्त ने इधर-उधर वन-दृश्यों को देखते हुए बीच जंगल में जाकर उसने **अतिमुक्तक** नामक एक विशाल वृक्ष को देखा।

265 निर्झरस्य पयः पीत्वा प्रक्षाल्य चरणद्वयम्।
तत्रोपविश्य विस्तीर्णे चतुरस्रे शिलातले।। 125।।

उस वन-मध्य में निर्झर का पानी पीकर और अपने दोनों पैरों को धोकर वह विशाल और चौकोर एक शिलातल पर बैठ गया।

266 उद्दिश्यार्हत्पदद्वन्द्वं मुक्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः।
पन्थानमतिथेर्दृष्ट्वा पप्सौ नानाफलानि सः।। 126।।

जिनेन्द्र स्वामी के चरणयुगल के प्रति पुष्पाञ्जलि समर्पित कर कुछ देर तक उसने अतिथि का द्वारापेक्षण किया। इसके बाद विविध प्रकार के फलों से उसने अपनी भूख मिटाई।

267 अत्रान्तरेऽस्तं तपनो जगाम,
प्रकाश्यं सर्वं भुवनं विशिष्टैः।
तेजोभिरुग्रैः कथयन्निवेदं,
जगज्जनानां पुरतो ह्यनित्यम्।। 127।।

— उपजातिवृ

इसी बीच सूर्य अपनी विशेष तेजस्वी किरणों से सारे संसार को प्रकाशित करके अस्त हो गया और अस्त होकर उसने लोगों को बता दिया कि यह जगत् क्षणभंगुर है।

268 अथ समजनि सन्ध्या सान्द्रसिन्दूरवर्णा,
तदनु तिमिरचारी व्यापयामास लोकम्।
निजनिजनिलयेऽगुर्व्याकुलाः पक्षिसंघाः,
श्रमहतपथिकाः ये यत्र तत्रैव तस्थुः।। 128।।

— मालिनी

तदनन्तर गाढ़े सिन्दूर के वर्ण के समान लाल सन्ध्या उपस्थित हो गई और संसार को अन्धकारगामी बना दिया। व्याकुल होकर पक्षी-समुदाय अपने-अपने घोसलों में चला गया और थके-मादे राही जो जहाँ थे, वे वहीं ठहर गए—

269 विधायार्हत्पदाम्बुजयुगनतिं भक्तिभरतः,
स हि प्रत्याख्यानं तिमिरनिवहध्वंसकरणम्।
समाधाय त्रेधा परिहतमयो दृष्टिनिरतः,
शिलापृष्ठे सुप्तो भृशमुरसि धृत्वा जिनपतिम्।। 129।।

— शिखरिणी

—उस भविष्यदत्त ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक जिनस्वामी के चरणकमलद्वय को प्रणाम कर अज्ञानान्धकार-निवह के विनाशक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप त्रिप्रकारक मार्ग का चिन्तन किया। पुनः मन-वचन-काय से प्रत्याख्यान (अन्न-जल का त्याग) कर निर्मद वह जिनपति को हृदय में धारण कर वहीं शिलापट्ट पर सो गया।

270 **तनूभृतां शैलशिरःस्थितानां,**
वनेऽपि पूर्व्वार्जितपुण्यभाजाम्।
मृगाधिपाद्याः पशवोऽपि भीष्मा,
बलोद्धता न प्रभवन्ति नूनम्।। 130।।

पूर्वार्जित पुण्य वाले लोगों के पर्वतों की चोटियों पर रहने या निर्जन अरण्य में निवास करने पर भी सिंह आदि भयङ्कर बल वाले पशु भी कुछ बिगाड़ने में समर्थ नहीं होते।

271 **महात्मनो धर्मवतोऽपिवर्गाद्,**
भूताःपिशाचा अपि राक्षसा वा।
नश्यन्ति सर्वे विगतप्रभावा,
विवस्वतो ध्वान्तचया इवाशु।। 131।

— उपजातिवृत्तम्

धर्मात्मा-महात्माओं और पुण्यशालियों के प्रभाव से भूत, पिशाच या राक्षस, सभी प्रभावहीन होकर उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अन्धकार में उत्पन्न होने वाले कीड़े-मकौड़े सूर्य के तेज से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

272 **त्रैलोक्योदरवर्तिवस्तुनिचयप्रद्योतनोष्णत्विषम्,**
सर्वज्ञं बललक्ष्मणस्तुतपदं देवं स्थिरं श्रीधरम्।
पुण्यायानुदिनं स्मरन्ति मनसा भव्या विशुद्धाशया-
स्तापस्फेटनहेतवे शिशिरंगु केनाश्रयन्ते नराः।। 132।।

— शार्दूलविक्रीडितम्

तीनों लोकों में व्याप्त समस्त जीवाजीवादि वस्तु-तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिए तेजस्वी सूर्य के समान तथा श्री-मोक्ष रूपी शाश्वत लक्ष्मी के स्वामी सर्वज्ञदेव के चरण-कमलों में निरन्तर स्तुति करने वाले (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता —) महाकवि विबुध श्रीधर तथा (ग्रन्थ-लेखन हेतु —) उनके आश्रयदाता तथा प्रेरक साधु लक्ष्मण उन (सर्वज्ञदेव) का विशुद्ध आंशय वाले पुण्यार्जन-हेतु

सम्पूर्ण मन से स्मरण करते रहते हैं। यह उचित ही है कि अपनी ताप-शान्ति हेतु कौन सन्तप्त व्यक्ति चन्द्रमा की शरण में नहीं जाता?

....

इति श्रीभविष्यदत्तचरिते बिबुध श्रीधर विरचिते
साधुलक्ष्मण नामांकिते द्वितीयः सर्गः।

इस प्रकार साहु लक्ष्मण के नाम से अंकित विबुध श्रीधर द्वारा प्रणीत श्री भविष्यदत्त चरित नामक महाकाव्य में यह दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

....

तीसरा सर्ग

273 दुष्ठाष्टकर्मोरुकरीन्द्रवृन्दा —
स्तपः कृपाणेन विदारिता यैः।
संज्ञान-लक्ष्मीः परिरम्भिता यैः,
रक्षन्तु लक्ष्मणपदमत्र सिद्धाः।। 1।।

जिन्होंने दुष्ट अष्ट-कर्मरूपी गजवृन्दों को अपनी तपस्या रूपी खड्ग से विदीर्ण कर दिया तथा जिन्होंने सम्यग्ज्ञान रूपी लक्ष्मी का आलिङ्गन किया है, वे सिद्ध भगवान् प्रस्तुत ग्रन्थ-प्रेरक — साधु लक्ष्मण की रक्षा करें।

274 अथोद्गच्छन्तमादित्यम् —
मत्वा पूर्वदिशि द्रुतम्।
उदस्थाच्छयनं मुक्त्वा,
नन्दनः कमलश्रियः।। 2।।

तदनन्तर ऊपर की ओर बढ़ते हुए सूर्य को देखकर तथा उसे पूर्व दिशा जानकर वह कमलश्रीपुत्र (भविष्यदत्त) शयन छोड़कर शीघ्र ही उठा और —

275 कायशुद्धिं विधायाशु प्रक्षाल्य नयने ततः।
स्तुत्वा स्तुतिशतैर्भक्त्या जिननाथपदद्वयम्।। 3।।

तत्काल ही शरीर शुद्धि (स्नान) कर, आँखों को धोकर, फिर भक्तिपूर्वक सैकड़ों स्तुतियों द्वारा जिनस्वामी के चरणों में स्तुति कर —

दिग्भ्रमित भविष्यदत्त एक प्राचीन-मार्ग देखता है

276 असीधिकेति सम्प्रोच्य समुत्तीर्य शिलातलात्।
यावत्तावद्ददर्शासौ पृथुमार्गं पुरातनम्।। 4।।

— युग्मम्

"असही-असही" शब्द का उच्चारण कर जब वह शिलातल से नीचे उतरा, तभी उसने एक प्राचीन एवं चौड़ा विशाल मार्ग देखा।

277 प्रविलोक्य तमध्वानं दध्यौ धनपतेः सुतः।
कथं पन्था बभूवायमत्र मानुषवर्जिते?।। 5।।

उस मार्ग को देखकर धनपतिपुत्र उस भविष्यदत्त ने आश्चर्यचकित होकर मन में सोचा — मनुष्य रहित इस निर्जन स्थान में यह मार्ग बना कैसे?

278 देवा विद्याधरा व्योम्नि नानाभरणभूषिताः।
विमानोदरमध्यस्था व्रजन्ति न पुनर्भुवि।। 6।।

विविध अलङ्करणों से विभूषित तथा विमानों में बैठकर देवता एवं विद्याधर तो आकाश में ही उड़ते-फिरते हैं, न कि पृथ्वी पर। और —

279 अन्यद्वीपे नरा ये तु वाणिज्यायै यियासवः।
ते यान्त्यारुह्याम्बुधिस्थं जलमार्गेण निश्चितम्।। 7।।

— जो लोग दूसरे द्वीप में व्यापार के लिए जाने के इच्छुक होते हैं, वे तो निश्चित रूप से समुद्र में स्थित जलमार्ग से ही चलते हैं। अतः —

भविष्यदत्त उसी मार्ग से आगे बढ़ता है

280 समूषुर्मानुषा येऽत्र द्वीपे केचिदनाकुलाः।
तदीयोऽयं स्फुटो मार्गोऽमुना मार्गेण याम्यहम्।। 8।।

इस द्वीप में जो मनुष्य पहले से ही अनाकुल होकर रहते आए हैं निस्संदेह ही उन्हीं के लिए यह मार्ग बना है। अतः अब मैं इसी मार्ग से आगे चलता हूँ।

मनोरम दृश्य-वर्णन

281 इति ध्यात्वाऽटता तेन तस्मिन् मार्गे महौजसा।
ददृशेऽद्रिः स्पृशन् व्योम पुरतः शृङ्गकोटिभिः।। 9।।

ऐसा सोचकर उसी मार्ग पर चलते हुए उस ओजस्वी भविष्यदत्त ने आगे

एक पर्वत को देखा, जो अपने उन्नत शिखरों द्वारा आकाश का स्पर्श कर रहा था।

282 तस्योदरं समासाद्य गुहाद्वारेण निर्गतः।
स ददर्श वनान्युच्चैर्मनोज्ञानि फलोत्करैः।। 10।।

उस पर्वत के मध्य में जाकर तथा उसके एक गुफा-द्वार से निकलकर वहाँ उसने फलसमुदाय से सुशोभित उन्नत एक सघन-वन को देखा।

283 वापीकूपतडागानि सरांसि सपयांसि च।
वासितानि नवाम्भोजरजःपुञ्जैर्निरन्तरम्।। 11।।

वहीं पर उसने जल से लबालब भरे हुए अनेक वापी, कूप, तडाग एवं सरोवर देखे जो सभी नवकमल-गंध से निरन्तर सुगन्धित थे।

284 चक्रसारसहंसाद्या नानाविधविहङ्गमाः।
तस्य पत्नी समायोगं स्वशब्दैरवदन्निव।। 12।।

वहाँ चक्रवाक, सारस, हंस आदि विविध प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों, वे अपने-अपने शब्दों में उसके (भविष्यदत्त के) पत्नी-संयोग की ही सूचना दे रहे थे।

285 क्षेत्राणि विविधव्रीहिपूरितानि निरीक्ष्य सः।
अत्यन्तं मुमुदे को वा भद्रं दृष्ट्वा न तुष्यति।। 13।।

विविध प्रकार के अन्नों से युक्त खेतों को देखकर वह भविष्यदत्त अत्यन्त प्रमुदित हो उठा। भला ऐसा कौन होगा जो कल्याणकारी सुन्दर वस्तुओं को देखकर प्रमुदित न होगा?

तिलकपुर-नगर-सौन्दर्य-वर्णन

286 पुनः प्रहर्षतस्तेन पुरतो गच्छता सता।
तिलकाख्यं पुरं रम्यं ददृशे शालराजितम्।। 14।।

पुनः आगे बढ़कर चलते-चलते उसने उन्नत कोटों से सुशोभित अत्यन्त

सुन्दर **तिलकपुर** नाम के नगर को देखा।

287 तत्रत्यैर्निलयैर्वातसमुद्धूतमहाध्वजैः।
विशन् पुरान्तरं पान्थः स व्याहूत इवामलैः।। 15।।

वहाँ के सुन्दर-सुन्दर भवनों, जिनके कि ऊपर वायु के झकोरों से विशाल ध्वजाएँ फहरा रही थीं उनके मध्य जाकर उस भविष्यदत्त ने ऐसा अनुभव किया मानों वे ध्वजाएँ उसे आतिथ्य प्रदान करने हेतु ही बुला रही हों।

288 अगाधां परिखां दृष्ट्वा पयःपूरेण पूरिताम्।
कपाटोद्घाटनं कृत्वा स विवेश पुरान्तरम्।। 16।।

वहाँ अगाध जलधारा से भरी हुई परिखा को देखकर, पुनः उसके द्वार के किवाड़ खोलकर उसने वहाँ के नगर में प्रवेश किया।

289 पंक्तिं निरीक्ष्य सौधानां स जगामतिविस्मयम्।
समस्तवस्तुसम्पूर्णमापणं च मनोरमम्।। 17।।

वहाँ के उन्नत भवनों की पंक्तियाँ तथा समस्त वस्तुओं से परिपूर्ण सुन्दर बाजार को देखकर वह भविष्यदत्त अत्यन्त विस्मित हो उठा और कह उठा कि —

290 अहो चित्रं मयेदृक्षं नादर्शि क्वापि भूतले।
दृश्यते सर्वमेवाऽत्र न पुनः कोऽपि मानुषः।। 18।।

—"अरे यह महान् आश्चर्य है कि मैंने पृथिवी पर ऐसा कहीं नहीं देखा कि यहाँ सब कुछ तो दिखाई पड़ रहा है, किन्तु मनुष्य एक भी दिखाई नहीं दे रहा।"

राज-प्रासाद-वर्णन

291 इति ध्यात्वा मनोमध्ये पुनरग्रेयता सता।
अदर्शि तेन नेत्राभ्यां गृहं राज्ञः सतोरणम्।। 19।।

मन में इस प्रकार विचार करते हुए तथा और आगे बढ़ते हुए उसने

अपने नेत्रों से सुन्दर तोरणों से युक्त राजा का एक सुन्दर भवन देखा और —

292 सिंहासनञ्च सद्रत्नच्छत्रचामरराजितम्।
आस्थानञ्च मनोहारि नानाविष्टरसंयुतम्।। 20।।

—सुन्दर रत्नों तथा छत्र-चामरों से सुशोभित सिंहासन और विभिन्न प्रकार के आसनों से युक्त सभास्थल (राज-दरबार-स्थल) को देखा।

293 निशान्तनायिकावासास्ततो मज्जनवापिकाः।
कोष्ठागाराश्वशालाश्च कोषागारं विमुद्रितम्।। 21।।

— त्रिकलम्

अन्तःपुर की रमणियों का निवास, उसके बाद स्नान करने के लिए वापिकाएँ, कोष्ठागार एवं अश्वशाला तथा विशेष रूप से बन्द किया गया कोषागार भी था। भविष्यदत्त ने वहाँ इन सभी को देखा।

चन्द्रप्रभ-मन्दिर-दर्शन-पूजन

294 तस्मान्निर्गच्छता तेन चन्द्रप्रभनिकेतनम्।
व्यलोकि भव्यलोकानां पापपादपसातनम्।। 22।।

वहाँ से निकलकर भविष्यदत्त ने **चन्द्रप्रभ-स्वामी** के मन्दिर को देखा, जो सांसारिक भव्य लोगों के पापरूपी वृक्ष को ढहाने वाला था।

295 स्वर्गादिव समायातं नानामणिसमन्वितम्।
मरुद्धूतध्वजं दत्तकपाटयमलं दृढम्।। 23।।

— युग्मक

वह मन्दिर विभिन्न प्रकार की मणियों से युक्त था तथा इतना सुन्दर लग रहा था मानों उसे स्वर्ग से ही उठाकर ले आया गया हो। जिसकी ध्वजा हवा से फहरा रही थी और जो सुदृढ़ कपाटयुगल द्वारा बन्द किया गया था।

296 कपाटौ निजपाणिभ्यामुद्घाट्य सहसा ततः।
प्रविश्याभ्यन्तरे तेन ददृशे जिननायकः।। 24।।

उस भविष्यदत्त ने एकाएक मन्दिर के दोनों किवाड़ों को अपने हाथों से

खोलकर तथा भीतर प्रवेश कर जिनेन्द्र-स्वामी के दर्शन किए।

297 मुदा जयजयेत्युक्त्वा विधाय त्रिःप्रदक्षिणाम्।
कायोत्सर्गं ततो दत्त्वा कृत्वेर्यापथ शोधनं।। 25।।

प्रसन्नतापूर्वक जय-जय का घोष करके तीन बार परिक्रमा कर फिर कायोत्सर्ग (नौ बार णमोकार मंत्र की जाप) करके तथा ईर्यापथ की शुद्धि करके —

298 ततोऽग्रवापिकां गत्वा स्नात्वा वाचम्य वारिणा।
पुनरानीय पुष्पाणि वाटिकाया जिनोऽर्चितः।। 26।।

तत्पश्चात् आगे स्थित वापिका में जाकर, स्नान कर और पानी से आचमन (कुल्ला) कर वह भविष्यदत्त वाटिका से पुनः पुष्प लाया और उनसे जिनेन्द्र-नाथ की पूजा की।

जिनेन्द्र-स्तुति

299 अग्रे भूत्वा ततो भक्त्या प्रारेभे तेन संस्तुतिः।
जय देवाधिदेवेश वीतरागजिनेश्वर।। 27।।

इसके बाद कुछ आगे चलकर उसने भक्तिपूर्वक इस प्रकार से स्तुति आरम्भ की — हे देवाधिदेव, हे वीतरागी जिनेश्वर, तेरी जय हो, जय हो —

300 जय प्रोद्दामकन्दर्प्पसर्प्पप्रमदूर्दन।
जय जन्मजरामृत्युतरून्मूलनमारुत।। 28।।

— प्रचण्ड काम-वासना रूपी सर्प के गर्व को नष्ट करने वाले, हे वीतराग प्रभु, तेरी जय हो, जन्म, बुढ़ापा एवं मृत्युरूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिए प्रचण्ड झञ्झावात के समान हे जिनेश्वर, तेरी जय हो।

301 ये त्वदीयपदद्वन्द्वं स्मरन्ति मनसा सदा।
ते भवाम्भोधिमुत्तीर्य व्रजन्ति शिवमन्दिरम्।। 29।।

— त्रिकलम्

— हे जिनेश्वर, जो लोग अपने हृदय से निरन्तर ही तेरे चरणयुगल का

स्मरण करते हैं, वे संसार-समुद्र पार कर शिव-मंदिर को प्राप्त करते हैं। (त्रिकलम्)

भविष्यदत्त उसी जिन-मन्दिर में सो जाता है

302 **इति स्तुतिं विधायाऽसौ चन्द्रप्रभजिनेशिनः।**
तत्रैव मण्डपे सुप्तः पथश्रमसमाहतः।। 30।।

इस प्रकार वह भविष्यदत्त चन्द्रप्रभ-जिनस्वामी की स्तुति करके पथश्रम से व्याकुल होने के कारण उसी जिन-मंडप में सो गया।

मुनिराज यशोधर

303 **अथ पूर्वविदेहेऽस्ति निर्ग्रन्थो मुनिनायकः।**
यशोधर इतिख्यातस्तुषाराभ्रयशोधरः।। 31।।

और इधर, **पूर्व-विदेह** (नाम के क्षेत्र) में **यशोधर** नामके निर्ग्रन्थ मुनि-श्रेष्ठ विराजते हैं—जिनका यश शरत्कालिक मेघ के समान उज्ज्वल कहा गया है।

304 **त्रिलोकाधिपतिः श्रीमान् केवलज्ञानलोचनः।**
चतुर्विधसुरासारनरनाथैरुपासितः।। 32।।

वे मुनिश्रेष्ठ यशोधर तीनों लोकों के अधिपति, श्रीमान् तथा केवलज्ञान रूपी नेत्र के धारी हैं तथा चतुर्विध-निकाय के देवों तथा नरनाथों अर्थात् राजाओं द्वारा सदा सेवित-उपासित हैं।

305 **तं प्रणम्य जिनाधीशं लोकालोकप्रकाशकम्।**
विद्युत्प्रभाभिधः शक्रः पप्रच्छ गुरुभक्तितः।। 33।।

लोकालोक दोनों को प्रकाशित करने वाले उन जिनाधीश को प्रणाम करके **विद्युत्प्रभ** नामक एक शक्रने परमभक्तिपूर्वक उन **यशोधर मुनिराज** से पूछा—

भविष्यदत्त का पूर्व-भव कथन

306 स्वामिन्नासीत् पुरा योऽत्र धनमित्र समाह्वयः।
मामकं परम मित्रमिदानीं क्व बभूव सः।। 34।।

—"हे स्वामिन्! यहाँ पहले **धनमित्र** नामका जो एक मेरा परम मित्र था, अब वह कहाँ जन्मा है?

307 अथोवाच जिनाधीशः श्रूयतां भो सुरेश्वर।
ईप्सितं यत्त्वया प्रष्टुं तदशेषे ब्रवीमि ते।। 35।।

इसके बाद जिनाधीश-मुनीश्वर ने कहा—हे सुरेश्वर! तुमने प्रश्न कर जो पूछने की इच्छा व्यक्त की है, उसका पूर्ण उत्तर मैं देता हूँ। उसे सुनो—

308 इहैव भारते वास्ये हस्तिनाख्ये पुरे वरे।
उदपादि सुतः श्रीमान् श्रेष्ठिना कमलश्रियाम्।। 36।।

—इसी भरत-क्षेत्र में **हस्तिनापुर** नाम का एक श्रेष्ठ नगर है। वहीं पर एक श्रेष्ठी (सेठ) ने **कमलश्री** नाम की अपनी भार्या से सुन्दर एक पुत्र उत्पन्न किया है।

309 भविष्यदत्त इत्याख्यः ख्यातिमान् मदनोपमः।
वैश्यवंशस्फुरद्व्योममण्डनैकनिशाकरः।। 37।।

वह पुत्र **'भविष्यदत्त'** इस नाम से प्रसिद्ध, कामदेव के समान सुन्दर तथा वैश्यवंशाकाश का अलङ्कारभूत चन्द्रमा है।

310 स व्रजन् जलयानस्थो वणिज्यायै पयोनिधौ।
प्राप्तः कर्मविपाकेन द्वीपे मदन-संज्ञके।। 38।।

वह भविष्यदत्त व्यापार करने के लिए जलयान पर बैठकर समुद्र में जाता हुआ कर्मफल के प्रभाव से **मदन नामके द्वीप** में पहुँच गया।

311 तिलकादिपुरे रम्ये जिननाथनिकेतने।
सुप्तिस्तिष्ठति विस्तीर्ण शिलायामधुना स वै।। 39।।

उसी मदन द्वीप के एक सुन्दर **तिलकपुर** नामके नगर में स्थित

जिननाथ के मन्दिर में अभी वह एक विस्तृत शिलातल पर सो रहा है।

312 स भविष्यानुरूपाया योगं तत्राप्य सुन्दरम्।
भुक्त्वा द्वादशवर्षाणि कामसौख्यं यथेच्छया।। 40।।

वहाँ वह भविष्यदत्त **भविष्यानुरूपा** नामकी एक सुन्दरी कन्या से सुन्दर संयोग प्राप्त कर तथा बारह-वर्षों तक उसके साथ यथेष्ट कामसुख भोगकर—

313 ततः स्वबन्धुवर्गस्य गत्वा तोषान्मिलिष्यति।
भूपालनाम भूपालसुताभर्त्ता भविष्यति।। 41।।

बाद में सन्तुष्ट मन से वह भविष्यदत्त अपने बन्धु समुदाय से भेंट करेगा और वहाँ प्रजापालक **भूपाल** नामके राजा की पुत्री का भी स्वामी बनेगा।

314 अर्धराज्यं चिरं कृत्वा प्रान्ते सल्लेखनाविधिम्।
विधाय विधिवन्नूनं स यास्यति शुभां गतिम्।। 42।।

चिरकाल तक वह (— अपने श्वसुर भूपाल द्वारा प्रदत्त) आधे राज्य पर शासन करने के बाद अन्त में सल्लेखना-विधि सम्पन्न कर वह निश्चय ही शुभगति को प्राप्त करेगा।

315 इत्यावेद्य विदां वन्द्यो विरराम जिनाधिपः।
स सुरेशस्तु तुष्टात्मा तिलकाख्यं पुरं ययौ।। 43।।

इतना कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ जिनाधिपति वे मुनीश्वर रुक गए और वह **शक्र** भी सन्तुष्ट होकर **तिलकपुर** जा पहुँचा।

316 तत्र जैनगृहे सुप्तं मण्डपे विपुलोदरे।
ददर्श देवदेवोऽसौ तनूजं कमलश्रियः।। 44।।

वहाँ (तिलकपुर नगर स्थित) जैन मंदिर के विस्तृत मंडप में देवों के देव उस शक्र ने सोये हुए **कमलश्री** के पुत्र **भविष्यदत्त** को देखा।

विद्युत्प्रभ-शक्र वहाँ एक भित्ति-लेख लिख देता है

317 अक्षराणि ततो भित्तौ लिखित्वा स्थिरपाणिना।
उवाच मणिभद्राख्यं करे धृत्वा स्वगुह्यकम्।। 45।।

तब उस शक्र ने अपने स्थिर हाथ से दीवार पर कुछ **वर्ण-संकेत** लिखकर **मणिभद्र** नामके अपने यक्ष-अनुचर का हाथ पकड़ते हुए कहा—

318 त्वया भविष्यदत्तोऽयं भ्रातः भार्याधनान्वितः।
उल्लङ्घ्य सागरं यत्नान्नेत्वयो बन्धुसन्निधौ।। 46।।

—हे भाई यक्षराज, तुम **भविष्यरूपा** नामकी पत्नी तथा धन-धान्य से युक्त इस **भविष्यदत्त** को यत्नपूर्वक सागर लाङ्घकर सकुशल इसके बन्धुओं के समक्ष ले जाओ।

भविष्यदत्त जाग उठता है

319 इत्युदीर्य ययौ यावत् स्वविमानं सुरेश्वरः।
तावद्भविष्यदत्तोऽपि गतनिद्रः समुत्थितः।। 47।।

ऐसा कहकर वह शक्र जब अपने विमान से चला गया तभी वह भविष्यदत्त भी जागकर उठ बैठा।

वह उस भित्ति-लेख को पढ़ता है

320 पश्यता च दिशौ दृष्टास्तेन सद्वर्णमालिकाः।
विस्मयाकुलचित्तेनाचिन्ति शीर्षञ्च धुन्वताः।। 48।।

सभी दिशाओं की ओर निहारते हुए उस भविष्यदत्त ने भित्ति पर लिखित सुन्दर वर्ण वाली उस अक्षर-पंक्ति को देखा और विस्मयाकुल-हृदय होकर सिर धुनते हुए सोचा—

321 इदानीं लिखिता मन्ये वर्णाः केनाप्यमी ध्रुवम्।
दृश्यन्ते काकिनीजातरजांसि कथमन्यथा।। 49।।

—भित्ती पर लिखी गई यह अक्षर-पंक्ति निश्चय ही किसी के द्वारा

अभी-अभी लिखी गई है, ऐसा मैं मानता हूँ। यदि ऐसा नहीं होता तो **काकिनी-लेखनी** से उत्पन्न रज यहाँ कैसे दिखाई पड़ती?

322 वितर्क्यैवं मनोमध्ये मुदा स्तिमितलोचनः।
अर्थं विचारयंश्चित्ते कौतुकात् पठति स्म सः।। 50।।

इस प्रकार अपने मन में तर्क-वितर्क करके, प्रसन्नतापूर्वक अपलकदृष्टि से उस पंक्ति के अर्थ का विचार करते हुए, वह भविष्यदत्त कौतुकवश उसे पढ़ने लगा।

उस भित्ति-लेख में यह लिखा था

323 तिष्ठसि त्वं किमत्राङ्ग किन्न यासि प्रियागृहम्।
उत्तरस्यां दिशि स्वर्णनिर्मितं ध्वजराजितम्।। 51।।

उस **अक्षर-पंक्ति** में लिखा था कि— **"हे भाई, तुम यहाँ क्यों रुके हुए हो? इसकी उत्तर-दिशा में स्थित, सोने से बने हुए तथा पताका से सुशोभित अपनी प्रिया के घर क्यों नहीं जा रहे हो?"**

324 पञ्चमं प्रसृतज्योतिः पूर्वाभिमुखमुन्नतम्।
कार्त्तस्वरमयच्छिद्र-कपाटपिहिताननम्।। 52।।

— *युग्मम्*

जो (घर) यहाँ से पाँचवाँ है, प्रकाशमान है, पूर्वाभिमुख है, अत्यन्त ऊँचा है तथा जिसका दरवाजा सोने से निर्मित छिद्र वाले किवाड़ों से बन्द है।

325 समुत्थाय व्रज क्षिप्रमतस्त्वं जिनधामतः।
प्रविमुच्य मनःशोकं तनोः संतापकारणम्।। 53।।

इसलिए तुरन्त ही तुम इस जिनधाम से उठकर तथा शरीर को जलाने वाले मनःशोक को छोड़कर उस पाँचवें घर में चले जाओ।

326 **भो भविष्यानुरूपाख्यां कुमारीं नृमनोहरीम्।**
परिणीय सुखं भुङ्क्ष्व यथेष्टं सुपयोधराम्।। 54।।

अरे भाई, तुम जाकर मनुष्यों को मोहने वाली एवं सुस्तनी **भविष्यानुरूपा** नामकी उस कुमारी से विवाह कर यथेष्ट सुख भोगो।

भविष्यदत्त पाँचवें भवन के द्वार पर पहुँचता है

327 **अक्षरार्थमथ ज्ञात्वा निर्गत्य जिन-वेश्मनः।**
मुक्त्वा गृहचतुष्कञ्च द्वारे पञ्चमवेश्मनः।। 55।।

इसके बाद उन अक्षरों के अर्थ को समझकर वह **भविष्यदत्त** उस जिनगृह से निकलकर एवं चार घरों को छोड़कर पाँचवें घर के द्वार पर जाकर—

328 **तेन प्रियतमावाचि बिभ्रता पुलकश्रियम्।**
समुद्घाट्य तन्वङ्गि कपाटद्वितयं द्रुतम्।। 56।।

उस भविष्यदत्त ने पुलकित होते हुए प्रियतमा (भविष्यानुरूपा) को पुकारकर कहा—हे तन्वङ्गि! दोनों किवाड़ों को शीघ्र ही खोलो।

329 **मा कुरुष्व प्रिये शङ्कां त्वद्भर्त्ताऽहं समागतः।**
वर्त्तते मामकं चित्तं त्वद्दर्शनसमुत्सुकम्।। 57।।

"हे प्रिये! मैं (भविष्यदत्त) तुम्हारा पति तुम्हारे यहाँ आया हूँ, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह मत करो। मेरा चित्त तुम्हारे दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक है।"

330 **श्रुत्वा तज्जल्पितं वाक्यं सा बभूव समाकुला।**
कोऽयं कुतः कथं वेत्ति मम नाम निवेदितम्।। 58।।

उस भविष्यदत्त द्वारा अपने नाम से युक्त, कहे गए वचनों को सुनकर — यह कौन है? कहाँ से आया है? तथा मेरा नाम कैसे जानता है? यह सब सोचकर वह **भविष्यानुरूपा** अत्यन्त व्याकुल हो गई।

वनदेवी भ्रम को दूर करती है

331 इति चिन्ताकुला यावत् सा ततोऽवाचि सुन्दरी।
वनदेव्या त्वदीयोऽयं भर्त्ता भ्रान्तिं परित्यज।। 59।।

इस प्रकार जब वह सुन्दरी (भविष्यानुरूपा) चिन्ता से व्याकुल थी, तभी **वन-देवी** ने आकर उससे कहा — "यह तुम्हारा ही पति है। भ्रान्ति छोड़ दो।"

332 गतभ्रान्त्या ततस्तुङ्गकठिनस्तनया स्वयम्।
उद्घाटितौ कपाटौ द्वौ विस्मयं गतया पुनः।। 60।।

वनदेवी का कथन सुनकर शङ्काहीन होकर उन्नत और कठोर कुच वाली उस सुन्दरी (भविष्यानुरूपा) ने आकर स्वयं ही दोनों किवाड़ों को खोला और फिर अपरिचित उस भविष्यदत्त को देखकर वह विस्मित हो उठी।

भविष्यानुरूपा एवं भविष्यदत्त आमने-सामने

333 प्रविशन्तं तमालोक्य युवानं मदनोपमम्।
नरं व्रीडाहता तन्वी सा स्तम्भान्तरिताऽभवत्।। 61।।

प्रवेश करते हुए मदनतुल्य उस युवा-पुरुष को देखकर वह तन्वी भविष्यानुरूपा लज्जाहत एवं स्तम्भित हो खम्भे की ओट में खड़ी हो गई।

भविष्यदत्त सोचता है

334 तस्या रूपश्रियं वीक्ष्य मनोज्ञां मुदिताशयः।
सा पुमांश्चिन्तयामास मानसे विस्मयं गतः।। 62।।

उस भविष्यानुरूपा-कन्या की मनोज्ञ रूप-सम्पत्ति को देखकर अत्यन्त प्रसन्न एवं विस्मय-प्राप्त उस युवक भविष्यदत्त ने अपने मन में सोचा —

335 किमस्य नगरस्येयं देवी किंवामराङ्गना।
अथ विद्याधरी काचिदुतकन्या फणाभृताम्।। 63।।

— "क्या यह कन्या इस नगर की कोई देवी है? या कोई सुरसुन्दरी? अथवा कोई विद्याधरी है? या कोई नाग-कन्या?"

336 मीलनोन्मीलने चारु चक्षुषोः कुर्वती सती।
पादाङ्गुष्ठाग्रभागेन खनन्ती धरणीतलम्।। 64।।

अत्यन्त आकर्षक ढंग से अपने नेत्रों को बन्द करती और खोलती हुई तथा पैर के अङ्गुष्ठाग्रभाग से पृथ्वी को कुरेदती हुई—

337 मुक्ताफलसमाकार - स्वेद - बिन्दु - विराजिता।
सा तेन परिज्ञाता मानुषीयं विराजिता।। 65।।

और मुक्ताफल के समान पसीने की बूँदों से सुन्दर लगती हुई उसे उस भविष्यदत्त ने पहचान लिया कि यह नारी ही है कोई देवी नहीं।

प्यासा भविष्यदत्त उससे जल माँगता है

338 पुनर्भविष्यदत्तेनावाचि भयभाविता।
देहि कान्ते भयं मुक्त्वा क्षिप्रमाचमनं मम।। 66।।

फिर भविष्यदत्त ने भयभीत होते हुए कहा—हे कान्ते! भय छोड़कर मुझे शीघ्र ही आचमन-जल प्रदान करो।

339 ततस्तयाशु तन्वङ्ग्या स भविष्यानुरूपया।
अभाषि निजवक्त्रश्रीनिर्जिताम्बुजशोभया।। 67।।

इसके बाद अपने मुख की शोभा से कमल-सौन्दर्य को जीतने वाली उस तन्वङ्गी भविष्यानुरूपा ने तुरन्त कहा—

लज्जाहत भविष्यानुरूपा

340 अपूर्वदर्शनात्तेऽहं न शक्नोमि निरीक्षितुम्।
सन्मुखं त्वत्पुरो वच्मि त्वयासार्द्धं कथं वचः।। 68।।

आपके अपूर्व-दर्शन से मैं आपको देखने में भी असमर्थ हो रही हूँ, फिर सामने स्थित होकर आपके साथ कैसे बातें करूँ?

341 मा कुरुष्व भयं कान्ते तव भर्त्ताऽहमागतः।
प्रेर्यमाणः पुरोपात्तपुण्यकर्मोरुवायुना।। 69।।

हे कान्ते! तुम भय न करो। पूर्वजन्म के पुण्य-कर्म रूपी वायु से प्रेरित

मैं तुम्हारा पति होकर यहाँ आया हूँ।

342 भविष्यदत्तवाक्यानि श्रुत्वा त्वक्त्वा भयं ततः।
आगताभ्यागतं भूरि स्नेहतो विदधे पुनः।। 70।।

पुनः भविष्यदत्त के उन वाक्यों को सुनकर तथा अपने भय को त्यागकर उस भविष्यानुरूपा ने बड़े ही स्नेह से उसका आतिथ्य-सत्कार किया।

भविष्यानुरूपा ने कहा

343 वित्तीर्य्यासनमुत्तुङ्गं कृत्वा भोज्यं महारसम्।
ऊचे भविष्यदत्ताख्यः स भविष्यानुरूपया।। 71।।

ऊँचे आसन पर बैठाकर तथा अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन बनाकर **भविष्यानुरूपा** ने उस **भविष्यदत्त** से कहा—

344 विधाय सरसि स्नानं सपर्याञ्च जिनेशिनाम्।
आगच्छ पुनरत्राशु भोजनाय सतां प्रियः।। 72।।

हे सज्जनप्रिय! सरोवर में स्नान कर और जिननाथों की पूजा करके आप शीघ्र ही भोजन के लिए पधारें।

भविष्य० का भविष्या० द्वारा स्वागत

345 तदशेषं कृतं तेन यदेव भणितं तया।
समागतस्य तस्याम्बु गृहीत्वा सा समुत्थिता।। 73।।

जैसा-जैसा उस भविष्यानुरूपा ने कहा, भविष्यदत्त ने ठीक वैसा-वैसा ही किया। उसके आने पर वह पानी लेकर खड़ी हो गई।

346 प्रक्षाल्य चरणद्वन्द्वं ततस्तस्मै तया मुदा।
संवितीर्य्यासनं मङ्क्षु मृदूवादिगुणसंयुतम्।। 74।।

भविष्यानुरूपा ने प्रसन्नतापूर्वक उसके दोनों चरणों को पखारा (धोया), इसके बाद उसे सुकुमार मूँज आदि से बुने हुए आसन पर बैठाकर शीघ्र ही मधुरादिगुणों से युक्त—

347 कार्त्तस्वरमये स्थाले रौप्यकच्चोलकैः सह।
भक्तं तुषविनिर्मुक्तं सूपं सर्पिः पयो दधि।। 75।।

348 नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शब्दशास्यमिवोत्तमम्।
भुक्त्वा तृप्तिमगात्सोऽपि धनादिपतिनन्दनः।। 76।।
—युग्मकम्

—चाँदी के चमचमाते हुए सुन्दर कटोरों के साथ सोने की थाली में भात, बिना छिलके वाली दाल, घी, दूध, दही— विभिन्न प्रकार की सब्जियों और पक्वानों से युक्त, शब्दशास्त्र की तरह ही उत्तमोत्तम भोजन कराया। वह धनपति-पुत्र (भविष्यदत्त) भी वैसा भोजन करके बड़ा तृप्त हुआ।

349 ततस्तस्य व्यतीर्यन्त भूषणानि प्रहर्षतः।
निर्मितानि स्फुरद्रत्नैस्ताम्बूलेन समं तया।। 77।।

तत्पश्चात् उस भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त के लिए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक चमकते हुए रत्नों से बने हुए बहुमूल्य आभूषणों द्वारा पुरस्कृत कर उसे ताम्बूल प्रदान किया।

भोजनान्तर दोनों का वार्तालाप

350 स्वयं भुक्त्वा तु तत्पार्श्वे निविष्टा यावदासने।
सा ततोऽवाचि धीरेण सूनुना कमलश्रियः।। 78।।

स्वयं भी भोजन करके जब वह **भविष्यानुरूपा** उसके बगल में आसन पर बैठ गई, तब कमलश्री के धैर्यशाली पुत्र उस **भविष्यदत्त** ने पूछा—

प्रश्न

351 इदं पुरं मनोहारि सर्ववस्तुसमन्वितम्।
दृश्यते न परं लोकः कारणं कथयस्व मे।। 79।।

यह नगर सभी वस्तुओं से युक्त एवं अत्यन्त मनोहर है, किन्तु यहाँ एक भी मनुष्य दिखाई नहीं देता, इसका कारण मुझे बतलाओ।

उत्तर

352 तदुक्तं वचनं श्रुत्वा सा बभाषे मृगेक्षणा।
ईषद्विहस्य तस्याग्रे ततः कोमलया गिरा।। 80।।

भविष्यदत्त का प्रश्न सुनकर उस मृगनयनी ने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए सुकोमल शब्दों में उसे कहा—

मदन-द्वीप में तिलकपुर नगर

353 तिलकादिपुरं रम्यमेतज्जगति विश्रुतम्।
वसतिस्म सदा द्वीपे मदनाख्ये मनोरमे।। 81।।

इसी मनोरम **मदनद्वीप** में विश्वप्रसिद्ध सुन्दर यह **तिलकपुर** नामका नगर है।

राजा यशोधर

354 अभूच्छास्ता पुरस्यास्य नरनाथो यशोधनः।
परिपूर्णशरच्चन्द्रचन्द्रिकाभ यशोधरः।। 82।।

इस नगर का शासक **यशोधर** नामका राजा था, जिसका यश शरत्कालिक पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी के समान उज्ज्वल था।

भविष्यानुरूपा के माता-पिता

355 आसीत्पिता मदीयोऽत्र भगदत्तोऽतिविश्रुतः।
श्रेष्ठी श्रेष्ठगुणाधारो नागसेनाप्रियान्वितः।। 83।।

यहीं पर मेरे पिता निवास करते थे, जो **भगदत्त** के नाम से प्रसिद्ध थे। वे श्रेष्ठ गुणों के आधार थे। उनकी पत्नी का नाम **नागसेना** था तथा वे यहाँ के **नगर-सेठ** थे।

356 अहं तस्य भविष्यानुरूपाख्या तनुजाऽभवम्।
हिमाचलस्य गौरीव लक्ष्मीरिवसरित्पतेः।। 84।।

जिस प्रकार हिमाचल की पुत्री पार्वती और समुद्र की पुत्री लक्ष्मी थी।

ठीक उसी प्रकार **भविष्यानुरूपा** नामकी उन्हीं की मैं पुत्री हूँ।

राक्षस की दुष्टता से नगर निर्जन हो गया

357 नगरस्यास्य सर्वोऽपि लोकःकर्मविपाकतः।
असुरेण प्रचण्डेन नीत्वा क्षिप्तः पयोनिधौ।। 85।।

पूर्वजन्म के कर्मफल के प्रभाव से इस नगर के सभी लोग एक **प्रचण्ड राक्षस** के द्वारा उठाकर समुद्र में फेंक दिए गए।

358 अहं त्वदीयपुण्येन परं मुक्ता दुरात्मना।
तेन इहैवेति निःशेषं कथयित्वा प्रबन्धतः।। 86।।

किन्तु तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से ही उस दुरात्मा राक्षस के द्वारा मैं अकेली ही यहाँ छोड़ दी गई। इस प्रकार विस्तार से अपनी सम्पूर्ण कथा एवं इतिहास कहकर —

भविष्या० भविष्य से यहाँ आने का कारण पूछती है

359 पुनस्तया स सम्प्रोक्तः प्रीत्यास्फारितचक्षुषा।
मत्पुरः कथय स्वामिन्नत्र त्वं कथमागतः।। 87।।

फिर प्रेम से विकसित नयनों वाली उस भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त से पूछा — हे स्वामिन्! आप यहाँ कैसे आए? कृपा कर यह मुझे बतावें।

भविष्यदत्त आत्म-वृत्तान्त सुनाता है

360 प्रियाया वचनं श्रुत्वा कमलश्रीसुतो जगौ।
हस्तिनाख्ये पुरे श्रेष्ठी धनादिपतिरीरितः।। 88।।

प्रिया **भविष्यानुरूपा** का प्रश्न सुनकर कमलश्री के पुत्र-**भविष्यदत्त** ने अपने उत्तर में कहा — सुप्रसिद्ध **हस्तिनापुर** में **धनपति** नामक एक समृद्ध सेठ निवास करता है।

361 भविष्यदत्त इत्याख्यस्तस्याऽहं तनुजोऽभवम्।
लघुभ्राताऽस्ति मे तन्वि! बन्धुदत्त समाह्वयः।। 89।।

मैं उन्हीं का पुत्र **भविष्यदत्त** हूँ। हे कृशाङ्गि! **बन्धुदत्त** नामका मेरा

छोटा भाई है।

362 अहं तेन सहागाराद्वणिज्यायै विनिर्गतः।
जलयानं समारुह्य समागच्छन्पयोनिधौ।। 90।।

विदेश में व्यापार करने के लिए मैं उसके साथ घर से चला और समुद्री-जलयान पर चढ़कर यहाँ आया हूँ।

363 बिभ्रता मानसे बैरं विमुक्तस्तेन कानने।
मृगाक्षि! दैवयोगेन मिलितश्च तवाधुना।। 91।।

हे मृगनयनि! मन में दुश्मनी रखते हुए उसने मुझे एक घने जङ्गल में छोड़ दिया और दैवयोग से इस समय मैं तुमसे आ मिला हूँ।

364 इत्यन्योन्यसुखालाप प्रीणितश्रुतिरन्ध्रयोः।
तयोर्द्वयोरितो वृद्धिं रागवारिधिरुल्वणः।। 92।।

इस प्रकार पारस्परिक सुखालापों के द्वारा आनन्दित कर्ण-कुहरों वाले उन दोनों का प्रेम-पयोधि तरङ्गित होकर वृद्धिंगत होता गया।

365 द्वावेव विनयन्यायरूपसौभाग्यलक्षणैः।
लक्षिताङ्गौ कलालापौ कलाकलितमानसौ।। 93।।

वे दोनों ही विनय, न्याय, रूप और सौभाग्य के लक्षणों से युक्त होकर परस्पर में एक दूसरे के अंङ्गों को देखते थे, कलात्मक पद्धति से वार्तालाप करते थे तथा कलात्मक ढंग से ही एक-दूसरे के मन को आकर्षित कर रहे थे।

नगर-विनाशक असुर पुनः वहाँ आ जाता है

366 एवं तयोः सुधर्म्मेण क्षणवन्नयतोर्दिनम्।
स कुतोऽपि समायातो नगरस्य विनाशकः।। 94।।

इस प्रकार वे दोनों जब धर्म-मर्यादा के अनुसार अपने सुखद दिनों को क्षणों के समान व्यतीत कर रहे थे तभी **तिलक नगर** का विनाश करने वाला

वही **असुर** कहीं से घूमता-भटकता हुआ पुनः वहाँ आ पहुँचा।

367 **कोपेनाशनिवेगाख्यः प्रज्ज्वलन्नसुरो बली।**
उर्द्धवकेशः करालास्यो गर्जत्सिंहो इवोद्धातः।। 95।।

उस असुर का नाम **अशनिवेग** था, जो अत्यन्त क्रोधी और बलवान् था। उसके बाल खड़े थे। वह विकराल मुख वाला तथा गरजते हुए उद्धत सिंह के समान प्रतीत होता था।

अशनिवेग असुर चिल्लाकर कह रहा था

368 **मदीयाज्ञामनासाद्य न कोऽपि विशतिध्रुवम्।**
देवो विद्याधरो वाऽपि नराणामिह का कथा?।। 96।।

मेरी आज्ञा को प्राप्त किए बिना इस नगर में कोई देवता या विद्याधर भी प्रवेश नहीं कर सकता, फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या?

असुर की भविष्यदत्त के लिए धमकी

369 **कोऽयं पुरे मदीयेऽत्र प्रविष्टो भयवर्जितः।**
नीत्वा क्षिपामि कूपारे क्रूरमेनं मदान्वितम्।। 97।।

मेरे इस नगर में भयरहित होकर किसने प्रवेश किया है? उस मदान्ध-क्रूर को मैं उठाकर अभी समुद्र के पार फेंक देता हूँ।

370 **इति जल्पन्तमालोक्य दूरादेव महासुरम्।**
न जगाम भयं धीरः कमलश्रीस्तनंधयः।। 98।।

इस प्रकार दूर से ही बड़बड़ाते हुए उस **महाराक्षस — अशनिवेग** को देखकर धैर्यवान् कमलश्री का वह पुत्र **भविष्यदत्त** जरा भी भयभीत नहीं हुआ।

371 **अथासुरेण भीमेन भणितः श्रेष्ठिनन्दनः।**
क्व रे क्रूर प्रयासि त्वं प्रलयं त्वां नयाम्यहम्।। 99।।

तब भयङ्कर असुर ने उस सेठ पुत्र-भविष्यदत्त से पुनः कहा — अरे क्रूर,

कहाँ जा रहा है? मैं प्रलय उत्पन्न कर तुझे अभी विनष्ट कर डालता हूँ।

372 इति जल्पन्तदन्तेऽसौ यावदेत्यऽसुरो रुषा।
तावत्तस्यासुरस्याशु शमेन जगृहे मनः।। 100।।

इस प्रकार क्रोध से बड़बड़ाता हुआ वह **राक्षस-अशनिवेग** जब **भविष्यदत्त** के समीप पहुँचता है, तभी आश्चर्य है कि— उस राक्षस का मन (स्वतः ही) शान्त हो जाता है। वह अशनिवेग आश्चर्यचकित होकर अपने मन में सोचता है—

373 अधुनैव गतः कोपो मदीयहृदयात्कुतः।
तमश्चय इव स्फारस्फूर्जदादित्यबिम्बतः।। 101।।

स्फुरायमान आदित्य-बिम्ब द्वारा विनष्ट अन्धकार समुदाय के समान ही मेरे हृदय से क्रोध अभी-अभी कहाँ विलीन हो गया है?

374 इति चिन्ताप्रपन्नेनावधिस्तेन प्रयुञ्जितः।
अबोधितत्क्षणात्पूर्वजन्म तस्यात्मनश्च वै।। 102।।

इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर उसने अपने कु-अवधिज्ञान से विचार किया और उसके बल से उसने तत्काल ही भविष्यदत्त तथा अपने पूर्वजन्म की बातें जान लीं।

375 तस्याभ्यर्णं समागत्य क्षमाभावावलम्बिना।
तेनऽसुरेण सोऽवाचि बिभ्रता प्रेम मानसे।। 103।।

क्षमाभाव से युक्त तथा मन में प्रेम-भाव धारण करते हुए उस राक्षस ने उस भविष्यदत्त के समीप जाकर उससे कहा—

376 भो स्ववंशनभश्चन्द्र धनमित्र-हितंकर।
प्रियंवद मदत्यक्त सर्वदा कुशलं तव।। 104।।

—"अये! अपने वंश रूपी आकाश के चन्द्र, धनमित्र के हितकारक, मद से रहित हे प्रियंवद भविष्यदत्त! तुम्हारा सर्वथा कुशल-मंगल हो।"

असुर को प्रमुदित देखकर भविष्य० उसका परिचय पूछता है

377 असुरस्य वचःश्रुत्वा श्रवणस्य सुखप्रदम्।
श्रेष्ठिपुत्रो जगौ मित्र! कस्त्वं मम निवेदय।। 105।।

कानों को सुख प्रदान करने वाले, असुर के वचनों को सुनकर उस श्रेष्ठिपुत्र भविष्यदत्त ने पूछा — हे मित्र! तुम कौन हो? मुझे बतलाओ।

असुर का उत्तर

378 ततोऽसुरः समाचष्टे तापसोऽहं पुराभवे।
त्वं पुनः सुसुहृददक्षः सर्वकार्येषु मामकः।। 106।।

भविष्यदत्त का प्रश्न सुनकर उस राक्षस ने उत्तर में कहा — हे मित्र, पूर्वजन्म में मैं एक **तपस्वी** था और सभी कामों में कुशल तुम मेरे प्रिय मित्र थे।

379 अद्यापि त्वद्गुणान् मित्र स्मरामि मनसाऽनिशम्।
मा जानीहि गतः स्नेहः कालेन बहुना किल।। 107।।

हे मित्र! आज भी मैं निरन्तर ही तुम्हारे गुणों का स्मरण करता रहता हूँ। बहुत समय बीतने के कारण भी मुझे प्रेमरहित मत समझो।

वह असुर भविष्य० को वरदान देना चाहता है

380 वृणीष्व यद्वरं भद्र! रोचते तव सुन्दरम्।
तद्वदाम्यधुना नूनं मत्पुण्यात्वमिहागतः।। 108।।

हे भद्र! तुम्हें जो रुचिकर लगे, उसी का वर माँगो। इस समय मैं तुम्हें वही वरदान दूँगा, क्योंकि मेरे पुण्य से ही तुम यहाँ आ पहुँचे हो।

381 असुरोक्तं समाकर्ण्य कमलश्री - तनूरुहः।
जातिस्मरत्वमासाद्य जगादप्रसृतेक्षणः।। 109।।

असुरकुमार का सुखद कथन सुनकर उस कमलश्री के पुत्र को जाति-स्मरण हो गया। अतः प्रफुल्लित-नेत्र होकर उसने कहा —

वह असुर समारोहपूर्वक भविष्या० को वरदान स्वरूप उसे सौंप देता है

382 यदि त्वं मे प्रसादेन ददासि वरमीहितम्।
तदेमां देहि मे क्षिप्रं कुमारीं विधिना स्वयम्।। 110।।

हे असुरकुमार-अशनिवेग, यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक मुझे इच्छित वरदान देना ही चाहते हो, तो शीघ्र ही विधिवत् इस कुमारी **भविष्यानुरूपा** को मुझे प्रदान कर दो।

383 ततो जगौ स्फुरत्तेजा असुरोऽपि पुरा मया।
त्वन्निमितं धृताचैषा तव दत्ताऽधुना पुनः।। 111।।

तब स्फुरित तेज वाला वह असुर बोला — मैंने पहले से ही तुम्हारे लिए इसे सुरक्षित रखा था। अतः अब तुम्हें पुनः इसे सौंपता हूँ।

चतुर्मुखी विशाल-मण्डप बनाया गया

384 इत्युक्त्वा तत्पुरः पश्चात् स विधायविकुर्व्वणाम्।
चकार मण्डपं रम्यं महास्तम्भसमुद्धतम्।। 112।।

उसके सम्मुख ऐसा कहकर उस असुरकुमार ने पुनः संकल्प किया और उसने एक सुन्दर विशाल मंडप का निर्माण किया, जो बहुमूल्य स्तम्भों पर स्थित था। तथा —

सजावट एवं मांगलिक कार्य

385 नानारत्नकृतोद्योतं चतुर्द्वार - विराजितम्।
वेदिकायां विशालायां कानकाःकलशाधृताः।। 113।।

उस (मंडप) को विभिन्न प्रकार के रत्नों से प्रकाशित कर चतुर्दिक चार द्वारों से सुशोभित किया गया और उसकी विशाल वेदी पर सोने के कलश स्थापित किए गए।

386 स्नापयित्वा ततस्तौ द्वौ चन्दनेन विलेपितौ।
वस्त्राभरणैः पुष्प-मालिकाभिर्बिभूषितौ।।114।।

इसके बाद चन्दन से विलेपित उन दोनों को स्नान कराकर, वस्त्र, आभूषण एवं फूलमालाओं से विभूषित कराया गया।

387 चतुर्विधमहावाद्यैर्वाद्यमानैर्निरन्तरम्।
गीयमानैर्मुदा स्त्रीभिर्मङ्गलैः कृतमङ्गलैः।। 115।।

लगातार बजते हुए चार प्रकार के महावाद्यों के और सुसज्जित कामिनियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक गाए जाते हुए मङ्गल गीतों के साथ—

388 धूमपानान्विता वह्नेः कारयित्वा प्रदक्षिणाः।
निवेश्य विष्टरे रम्ये वेदिकायं वधूवरौ।। 116।।

—निर्धूम अग्नि की परिक्रमाएँ कराकर वर-वधू को सुसज्जित वेदिका पर स्थित सुन्दर आसन पर बैठाकर —

389 ततो भृङ्गारमादाय स्वहस्तेनामृताशनः।
असुरोऽशनिवेगाख्यो भूषाप्रद्योतिताम्बरः।। 117।।

—फिर अपने हाथों में स्वर्णकलश लेकर अमृत-भोजी उस अशनिवेग नामक असुर ने, जो कि अपने अलङ्कारों के प्रकाश से आकाश को भी प्रकाशित कर रहा था, उसने —

असुर द्वारा प्रस्तुत संकल्प-वाक्य

390 इदं पुरमिमं द्वीपमिमां कन्यामिदं धनम्।
मया ते दत्तमित्युक्त्वा ततोऽदादम्बु तत्करे।। 118।।

—इस नगर को, इस द्वीप को, इस कन्या को तथा इस धन को मैंने तुम्हें दान में दिया—ऐसा कहकर उस असुरकुमार ने भविष्यदत्त के हाथ में संकल्प-जल सौंप दिया।

391 कृत्वा भविष्यदत्तेन समं सम्भाषणं ततः।
अमुरः प्रीतिसंयुक्तो मित्रयोगाद् ययौ गृहम्।। 119।।

बिछुड़े हुए मित्र के मिलन से प्रसन्न वह असुर उस भविष्यदत्त के साथ सम्भाषण कर अपने घर लौट गया।

सौभाग्यशाली वर-वधु का सम्मिलन

392 अथ तत्र भविष्यानुरूपया परिरम्भितः।
वरः स्वं शक्रवन्मेने रममाणो यदृच्छया।। 120।।

इसके बाद भविष्यानुरूपा द्वारा आलिङ्गित उस वर भविष्यदत्त ने उसके साथ यथेष्ट रमण करते हुए अपने को इन्द्रतुल्य सौभाग्यशाली समझा।

393 क्षणमेकमपि त्यक्तुं न शशाक स तां प्रियाम्।
प्रथम स्नेहभावत्वाद्भास्वानिव करावलीम्।। 121।।

जीवन में प्रथम बार प्रथम स्नेह मिलने के कारण वह भविष्यदत्त उस प्रेयसी को क्षण-भर के लिए भी उसी प्रकार नहीं त्याग सका जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणावली को नहीं छोड़ता।

394 लोचनाभ्यां प्रियारूपं पश्यन्नेकाग्रमानसः।
तृप्तिं भविष्यदत्तोऽसौ लभते स्म न सस्मरः।। 122।।

अपने नेत्रों से नई नवेली प्रिया के रूप को एकाग्रमन से निहारता हुआ भी कामासक्त वह भविष्यदत्त तृप्त नहीं होता था।

395 चन्द्रप्रभस्य देवस्य जिनस्य पदपद्मयोः।
द्वावेव तौ त्रिधाभक्त्या सपर्यामधिचक्रतुः।। 123।।

उन दोनों ने ही मन, वचन एवं काय की शुद्धिपूर्वक चन्द्रप्रभ-जिननाथ के पादपद्मों की भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चना की।

396 दर्शनस्पर्शनालापरतगुह्याङ्गवीक्षणैः।
वनाटनजलक्रीडामण्डनालिङ्गनादिभिः।। 124।।

दर्शन, स्पर्शन, सरस-वार्तालाप, परस्पर में गुप्तांगों के दर्शन-स्पर्शन,

अरण्य-भ्रमण, जलक्रीड़ा एवं मण्डनादि और आलिङ्गनों के द्वारा तथा—

397 अन्योन्यप्रेमसंसक्त चेतसोर्युगलं तयोः।
न विवेद गतं कालं सुखाकूपार मग्नयोः।। 125।।

—परस्पर में प्रेम-रस में पगे हृदय वाले उन दोनों की जोड़ी ने, जो कि सुख-सागर में निमग्न थी, वह बीतते हुए दीर्घकाल को भी न समझ सकी।

398 गच्छन्नम्बुनिधौ जनोज्झितवने मुक्तोऽप्यसौ बैरिणा,
प्राप्तः सौख्य मनल्पमुत्तमतमं नाश्चर्यमेतत्सताम्।
किं किं नात्र नरः स्वपुण्यवशतः प्राप्नोति भूमण्डलै,
सर्वज्ञं बल लक्ष्मणार्चितपदं ध्यायंस्तपः श्रीधरम्।। 126।

— शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

समुद्र-यात्रा में जाते हुए तथा शत्रु (बन्धुदत्त) के द्वारा (धोखे से) निर्जन-वन में छोड़े जाने पर भी, उस भविष्यदत्त ने पर्याप्त उत्तम सुख-भोग प्राप्त किए। किन्तु सज्जनों के लिए यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि इस पृथिवी पर बलदेव और लक्ष्मण के द्वारा पूजित तथा अपने-अपने पुण्य के प्रभाव से (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता महाकवि विबुध) श्रीधर तथा साधु लक्ष्मण (ग्रन्थ प्रेरक) द्वारा स्तुत्य सर्वज्ञ देव के श्रीचरणों के ध्यानाराधन से मनुष्य क्या-क्या मनोभिलषित सुख-सन्तोष उपलब्ध नहीं करता?

....

इतिश्रीभविष्यदत्तचरिते बिबुध श्रीधरविरचिते साधुलक्ष्मण नामांङ्किते तृतीयो सर्गः।।

इस प्रकार साहु लक्ष्मण के नाम से अंकित विबुध-श्रीधर द्वारा विरचित श्री भविष्यदत्त-चरित का यह तृतीय-सर्ग समाप्त हुआ।

....

चौथा सर्ग

399 **पञ्चाचारविधिप्रवीणमनसः पञ्चव्रताराधकाः,**
पञ्चेषुप्रवरेभकुम्भदलनव्यासक्त पञ्चाननाः।
पञ्चानां परमेष्ठिनां पदपयोजालीद्विरेफाश्चये,
आचार्य्या विगतप्रमादविषया रक्षन्तु ते लक्ष्मणम्।। 1।।

पञ्चाचारों की विधि में प्रवीण मन वाले, पञ्चव्रतों का पालन करने वाले, सच्चे आराधक, पञ्चबाण-कामदेवरूपी श्रेष्ठ हाथी के कुम्भदलन के लिए सिंह के समान और जो पाँचों परमेष्ठियों के चरणकमलों के लिए भ्रमर स्वरूप हैं ऐसे प्रमाद और विषय-भावना से रहित वे आचार्यगण इस ग्रन्थ के प्रेरक श्रीमान् **साहू लक्ष्मण** की रक्षा करें।

माता कमलश्री की व्यथा-कथा

400 **अथ पुत्रवियोगोत्थदुःखक्षपितविग्रहा।**
कमलश्रीर्द्वितीयेन्दुप्रतिमेव कृशाऽभवत्।। 2।।

पुत्र के वियोग से उत्पन्न दुःख के कारण पीड़ित शरीर वाली वह **कमलश्री** द्वितीया-तिथि के चन्द्रमा की तरह कृश-काय हो गई।

401 **न बबन्ध रतिं क्वापि मानसं कमलश्रियः।**
स्मरति स्म परं पुत्रं दिवारात्रौ निरन्तरम्।। 3।।

उस **कमलश्री** का मन कहीं भी नहीं रमता था। वह लगातार रात-दिन केवल अपने पुत्र का ही स्मरण करती रहती थी।

402 **नेत्रनिर्गतवाष्पाम्बुधाराधौतपयोधरा।**
रोदिति स्म प्रलापेन कमलश्रीर्यथा-यथा।। 4।।

नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधारा के द्वारा अपने स्तनों को धोती हुई वह

कमलश्री जैसे-जैसे प्रलाप के साथ रोती रहती थी—

403 **विलोक्य निजनेत्राभ्यां तादृशीं तां सुदुःखिताम्।**
दुःखिता बान्धवाः सर्वे जायन्ते स्म तथा-तथा।। 5।।

—उस दुःखिता को स्वतः ही अपनी आँखों से देख-देखकर उसके सभी बन्धु-बान्धव भी वैसे ही वैसे दुःखी होते रहते थे।

404 **दह्यमाना मनःशोकहुताशेनानिशं भृशम्।**
मलिनत्वमगात्तन्वी सा हिमेनेव पद्मिनी।। 6।।

मन की शोकाग्नि से अहर्निश अत्यन्त जलती हुई वह तन्वी (कृशांगी-कमलश्री) उसी प्रकार मलिन हो गई, जिस प्रकार बर्फ के द्वारा कमलिनी मुरझाकर सूख जाती है।

405 **शैलापगा यथा ग्रीष्मे सूर्यांशुपरितापिता।**
शुशुभे न तथात्यन्तं कमलश्रीरपि ध्रुवम्।। 7।।

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से पर्वतीय नदियाँ श्रीविहीन हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार वह कमलश्री भी अत्यन्त कान्तिविहीन हो गई।

406 **सलिलेन विनिर्मुक्ता पद्मिनीव सरोवरे।**
गतच्छायाऽभवत्सापि सुतेन रहिता सती।। 8।।

पानी से रहित सरोवर में कमलिनी की तरह ही पुत्र से विहीन होकर वह सती कमलश्री भी कान्तिरहित होकर मुरझा गई।

407 **स्मरन्ती मानसे पुत्रं दुःखशङ्कुसमाहता।**
न जहास न चाशेत नाभुङ्क्त भाषते स्म नो।। 9।।

दुःखरूपी शूल से समाहत वह बेचारी **कमलश्री** अपने मन में पुत्र का स्मरण करती हुई, न हँसती थी, न सोती थी, न खाती थी और न ही किसी से बोलती-चालती ही थी।

408 करिणीवाश्रुसिक्ताक्षी कलभेन वियोजिता।
सा दुरिताधिसंदग्धा नाप्नोति स्म सुखासिकाम्।। 10।।

अपने कलभ (बच्चे) से वियोजित हथिनी की तरह अश्रु से भींगी आँखों वाली वह **कमलश्री** पुत्र-वियोग के कष्ट से जले हृदय वाली होकर कभी भी प्रसन्न नहीं रह पाती थी।

409 तां प्रलापान्प्रकुर्वन्तीं वाष्पप्रक्षालिताननाम्।
निरीक्ष्य स्त्रीजनः पौरो रोदिति स्म समाकुलः।। 11।।

प्रलाप करती हुई तथा आँसुओं से अपने मुख को धोती हुई उस **कमलश्री** को देखकर नगर की स्त्रियाँ भी व्याकुल होकर रोती रहती थीं।

उपस्थित नारियों द्वारा व्यथा-कथा का लेखा-जोखा

410 काचिदूचेऽनयापूर्वं काचिदासीद्वियोजिता।
पुत्रेण वनिता तेन समभूदिति दुःखिता।। 12।।

उस नगर की ही किसी स्त्री ने कहा— "प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म में इस **कमलश्री** ने किसी अन्य स्त्री को पुत्र से वियोजित किया होगा, इसीलिए यह अभी (इस जन्म में) अत्यन्त दुःखी हो रही है।"

411 अन्याऽवोचत्करे दत्त्वा कपोलं कमलानना।
पात्राय नानया दत्तं फलं तेन विपुत्रका।। 13।।

उसी समय किसी अन्य कमलमुखी ने उसके कपोल पर हाथ रखते हुए कहा— "इसने पूर्वजन्म में सुपात्रों को दान नहीं दिया होगा, अतः इस जन्म में पुत्र-वियोग होना उसी का दुखद फल है।"

412 बभाषेऽन्याङ्गना नूनं न साक्षाद्विहितोऽनया।
धर्मो जिनोदितस्तेन सुतेनेयं वियोजिता।। 14।।

किसी अन्य रमणी ने कहा— "निश्चित ही इस **कमलश्री** ने जिन-कथित धर्म का शास्त्रोक्त-विधि से पालन नहीं किया है, इसी से यह पुत्र से वियोजित हो गई है।"

माता की सान्त्वना

413 **विमनस्कां सुतां दृष्ट्वा जननीकमलश्रियः।**
उवाच वचनं मुञ्च सुते शोकं मृगेक्षणे।। 15।।

उदास मन वाली पुत्री **कमलश्री** को देखकर उसकी माता ने कहा — "हे मृगनयनि! पुत्रि! चिन्ता छोड़ो।"

414 **शोकाकुलं निरीक्ष्य त्वां मदीयं दह्यते मनः।**
अतस्त्वं धीरतां नयस्व नलिनानने।। 16।।

— "तुमको शोकाकुल देखकर मेरा मन अत्यन्त जला जा रहा है। अतः हे कमलमुखि, बेटी, तुम धैर्य धारण करो।"

शोकाकुल कमलश्री का उत्तर

415 **मातृवाक्यं समाकर्ण्य कमलश्रीर्जगौ वचः।**
किं करोमि मनो नालं धर्त्तुं शोके व्रजन्मुहुः।। 17।।

माँ के वचन सुनकर **कमलश्री** ने अपने उत्तर में कहा — "बार-बार शोक को प्राप्त करता हुआ मेरा मन धैर्य धारण करने में समर्थ नहीं, हो पा रहा। है। माते, मैं क्या करूँ?"

416 **धन्यास्ता एव कामिन्यो यास्तिष्ठन्तिकुमारिकाः।**
अथवा सर्वदा बन्ध्याः पूर्वकर्म्मविपाकतः।। 18।।

पुनः उसने कहा — "सचमुच ही वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जो अपने जीवन में अविवाहिता — कुमारी ही रह जाती हैं अथवा, पूर्व-कर्म्मों के फलस्वरूप वे सर्वदा बन्ध्या ही रह जाती हैं।"

417 **अथवा या व्यधुर्जैनं व्रतं बाला अपि स्त्रियः।**
श्रेयसे तनुभूशोकानभिज्ञाः पतिवर्जिताः।। 19।।

— "अथवा, जो बालाएँ या विधवा-स्त्रियाँ पुत्रशोक से अपरिचित और पति से रहित रहकर स्व-कल्याणार्थ जैन-व्रतों को धारण करती हैं, वे भी धन्य हैं।"

418 **अहं पुनर्महामोह दृढपाशनियन्त्रिता।**
न शक्नोमि तपः कर्त्तुं मुक्त्वाशोकं सुदुःसहम्।। 20।।

—"मैं स्वयं तो महामोहरूपी सुदृढ़ पाश में आबद्ध हूँ। अतः इस असह्य शोक को त्यागकर तपस्या करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।"

419 ***मूल पाण्डुलिपि में यह श्लोक अनुपलब्ध है।। 21।।***

420 **न पुत्रो न चावासो न भर्त्ता न परिग्रहः।**
एवमेवेह तिष्ठामि न वेद्मि हृदि मोहतः।। 22।।

—"मेरा न पुत्र है, न आवास-भवनादि, न पति है और न किसी प्रकार का परिग्रह अथवा बन्धु-बान्धव। मैं इनसे विहीन ही हूँ," किन्तु मोह के कारण मैं यह यथार्थ तत्त्व समझ नहीं पा रही हूँ।

421 **अथवा यत्कृतं किञ्चित् पुराकर्म्भ तदेव वै।**
भुज्यते प्राणिभिः कर्त्तुं नान्यथा परिशक्यते।। 23।।

—"अथवा पिछले भव में जो कुछ भी कर्म किए जाते हैं, प्राणियों के द्वारा उन्हीं का इस जन्म में भोग किया जाता है। उसके प्रतिकूल कुछ भी नहीं किया जा सकता।"

422 **न बध्नाति स्थितिं क्वापि क्षणमेकमपि भ्रमात्।**
मामकीनं मनो मातरतः किं विदधाम्यहम्।। 24।।

—"हे माँ! मैं क्या करूँ? भ्रम के कारण एक क्षण के लिए भी मेरा मन स्थिर नहीं हो पा रहा है।"

पुत्री कमलश्री का उत्तर सुनकर माँ ने कहा

423 **स्वसुतावाक्यमाकर्ण्य चिन्ताकुलितमानसा।**
गिरा गद्गदया भूयो बभाषे जननी ततः।। 25।।

अपनी पुत्री **कमलश्री** की करुण-व्यथा सुनकर चिन्ता से व्याकुल मन वाली उसकी माँ ने गद्गदस्वर में पुनः कहा।

424 यदि ते पुत्रशोकाग्निर्नविध्याति प्रदीपितः।
लोचने न निवर्त्तेते मुञ्चत्यश्रुप्रवाहकम्।। 26।।

—"हे पुत्रि, यदि तेरी प्रदीपित पुत्र-शोकाग्नि शान्त नहीं होती और यदि अश्रुप्रवाह छोड़ते हुए तेरे दोनों नेत्र शान्त नहीं होते —" और —

425 न यद्यत्र धृतिस्तेऽस्ति सुते तर्हि निजाननम्।
प्रक्षाल्य वारिणागच्छ सुव्रताार्य्यासमीपकम्।। 27।।

—"हे पुत्रि! यदि तुझे यहाँ धैर्य नहीं मिल रहा है, तो तूँ जल से अपना मुख धोकर **आर्या सुव्रता** के समीप चली जा।"

शोकाकुल कमलश्री सुव्रता-आर्या के पास गई

426 मातुर्वचो हितं श्रुत्वा कमलश्रीर्जिनालये।
सुतशोकापनोदाय सुव्रतार्यान्तिकं ययौ।। 28।।

— माता के हितकारी वचन सुनकर वह **कमलश्री** अपने सुतशोक को दूर करने के लिए जिनभवन में विराजित **सुव्रता-आर्या** के समीप जा पहुँची।

427 प्रणम्य भक्तितस्तस्या आर्यायाश्चरणद्वयम्।
कमलश्रीस्तदन्ते सा सशोका समुपाविशत्।। 29।।

उन सुव्रता-आर्य्या के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम कर शोकविह्वल वह **कमलश्री** उनके समीप जाकर बैठ गई।

आर्या सुव्रता ने उसे इस प्रकार प्रबोधित किया

428 सुतशोकेन सन्तप्तां तां दृष्ट्वा कमलश्रियम्।
कृपया तत्प्रबोधाय जगाद सुव्रता वचः।। 30।।

सुतशोक से सन्तप्त उस कमलश्री को देखकर उसे समझाने-ढाढस बँधाने के लिए उन **आर्य्या-सुव्रता** ने कृपापूर्वक कहा —

429 न किं सुते त्वयाऽश्रावि कदाचित्क्वापि कर्णयोः।
जिननाथोदितं वाक्यं कस्मादपि मुनीन्द्रतः।। 31।।

—"हे पुत्रि! क्या कभी तुमने जिननाथ के द्वारा कथित आगम-वाक्यों को किसी भी मुनीन्द्र के श्रीमुख से अपने कानों द्वारा नहीं सुना?" और —

430 स न कोऽपि नरो देवः खगो वा यो न भूतले।
सुते प्राप्नोति संयोगवियोगौ चिरकर्म्मतः।। 32।।

—"हे बेटी! इस भूतल पर ऐसा कोई भी मनुष्य, देव या पशु-पक्षी नहीं है, जो पुरातन-पूर्व-जन्म के कर्मों के प्रभाव से संयोग और वियोग के सुख-दुखों को प्राप्त नहीं करता।" तथा—

431 न किं त्वया श्रुतं भद्रे सगरस्य कथानकम्।
यथा मृताः सुताः षष्टिसहस्राणि सहेलया।। 33।।

—"हे कल्याणि! क्या तुमने पुराणों में वर्णित **सगर** की कथा नहीं सुनी है, जिसके कि साठ हजार पुत्र देखते-ही-देखते लीला-मात्र में ही समाप्त हो गए थे।"—

432 षट्खण्डमण्डितां पृथ्वीं यो भुनक्ति स्वपुण्यतः।
दुखं तस्यापि यत्रेदृक् तस्मिन्नन्यस्य का कथा।। 34।।

—"हे भद्रे, अपने पुण्य के प्रभाव से जो छह खण्डों से सुशोभित पृथिवी का भोग करता है, यदि उसका भी ऐसा ही दुःख हो, तो फिर दूसरों के विषय में तो कहना ही क्या?" एवं —

433 कोऽपि केनापि दुःखेन दुःखितः क्वापि तिष्ठति।
एकान्ततो न कोपीह सर्वदा सुखितो भवेत्।। 35।।

—"कोई भी और कहीं भी किसी-न-किसी दुःख से वह दुःखी अवश्य रहता है। इस संसार में कोई भी निरन्तर केवल सुखी नहीं रह सकता।"

434 संसारासारतां मत्वा कुरु धर्मं जिनोदितम्।
न येन शोकदुःखानि पश्यसि त्वं कदाचन।। 36।।

"अतः हे भद्रमुखि, संसार की असारता को समझकर अब तुम जिननाथ द्वारा कथित धर्म का आचरण करो जिससे कि तुम्हें शोक-दुखों का कभी भी अनुभव न करना पड़े।"

435 छिद्यन्ते लीलया येन जन्ममृत्युजरा नगाः।
शोकवल्लीं सरोजास्ये छिन्दतस्तस्य कः श्रमः।। 37।।

"और, हे कमलमुखि! जिस धर्म के पालन से लीला मात्र में ही जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा रूपी विकट पर्वत भी नष्ट हो जाते हैं, फिर शोक रूपी लता को छेदने में उसे कितना-सा परिश्रम करना पड़ेगा?"

436 तदार्य्याया वचः श्रुत्वा धनेश्वरसुता जगौ।
किं करोमि हताशाहमार्ये वर्यगुणान्विते।। 38।।

तब **सुव्रता-आर्या** का कल्याणकारी उपदेश सुनकर धनेश्वरपुत्री उस **कमलश्री** ने विनयावनत होकर कहा — "हे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आर्य्ये! मेरी तो आशाएँ ही समाप्त हो गई हैं, अब मैं क्या करूँ?"

437 तत्किञ्चिन्मम निष्पापे कथय स्वोपरोधतः।
येन संसारदुःखानि न पश्यामि कदाचन।। 39।।

— "अतः हे निष्पापे आर्य्ये! मेरे अनुरोध से अब ऐसा कुछ उपाय बतलाइए जिससे कि मैं सांसारिक दुःखों को कभी न देखूँ। अर्थात् उनसे मुक्त हो सकूँ।"

438 तन्निशम्य वचः श्रव्यं सुव्रतार्या जगौ सुधीः।
रत्नत्रयं मनोमध्ये चिन्तयस्व निरन्तरम्।। 40।।

उस **कमलश्री** की श्रव्य मधुर-वाणी सुनकर उन सुमति **आर्य्या-सुव्रता** ने कहा — "हे भद्रे, अब तुम निरन्तर अपने मन में रत्नत्रय का चिन्तन करो —"

439 अन्यदप्यतियत्नेन भण्यमानं मयादरात्।
शृणु बाले विशालक्षि सम्यगाहितचेतसा।। 41।।

"और, हे विशालनयने! हे बाले! और भी मैं जो कुछ कह रही हूँ उसे भी तुम अत्यन्त यत्नपूर्वक सावधानचित्त होकर आदरपूर्वक सुनो।"

श्रुत-पञ्चमी व्रत-पूजा-विधि-विधान एवं उसका फल

440 विधानं श्रुतपञ्चम्या यदि त्वं कुरुषे त्रिधा।
तदा योगं सुतस्याप्य लभसे क्रमतः शिवम्।। 42।।

—"यदि तुम त्रियोग की शुद्धिपूर्वक **श्रुतपञ्चमी-व्रत** का विधान करो, तो पुत्र का संयोग प्राप्त करके तुम क्रमशः मोक्ष को भी प्राप्त करोगी।"

441 अथैवं किल चन्द्रास्ये सुतनो त्वं भणिष्यसि।
कीदृशोऽसौ विधिस्तर्हि शृणु संक्षेपतो ब्रुवे।। 43।।

हे सुतनो, हे चन्द्रमुखि! इसके बाद यदि तुम पूछोगी कि इस व्रत की क्या विधि है? तो लो मैं संक्षेप में उसे भी बता रही हूँ, सुनो—"

442 सद्दृष्टिधारणापूर्वं श्रुतपूजा विधीयते।
श्रुतपूजानुभावेन चारित्रं परिवर्द्धते।। 44।।

—"सम्यग्दर्शन की धारणापूर्वक सर्वप्रथम श्रुतपूजा की जाती है, क्योंकि उस (श्रुतपूजा) के प्रभाव से ही चारित्र में अभिवृद्धि होती है।"

443 चारित्रवृद्धितो याति पूर्वकर्मक्षयं द्रुतम्।
कर्मक्षयाद्भवेद्ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमुत्तमम्।। 45।।

—"चारित्रवृद्धि से शीघ्र ही संचित कर्मों का क्षय होता है और कर्मक्षय से सम्यग्ज्ञान तथा उससे उत्तम निर्वाण प्राप्त होता है।"

444 आषाढे कार्त्तिके मासे फाल्गुने वापि निर्मले।
सम्पूर्णे कृतकल्याणे बलक्षे पञ्चमीदिने।। 46।।

—"**आषाढ, कार्त्तिक** या **निर्मल फाल्गुन** माह के कल्याणकारी शुक्ल-पक्ष

की पञ्चमी-तिथि के सम्पूर्ण दिन में— "

445 सर्वारम्भविनिर्मुक्तः सर्वज्ञाज्ञाप्रतीक्षकः।
निर्म्मदो निःकषायात्मा त्यक्ततन्द्रो विमत्सरः।। 47।।

—"सभी लौकिक कार्यों का परित्यागकर, सर्वज्ञ की आज्ञा के अनुसार मद और अहङ्कार छोड़कर, कषायरहित होकर तथा आलस्य और ईर्ष्या से रहित होकर— "

446 देवधर्म्मगुरुज्येष्ठशास्त्रार्थप्रविचारकः।
ब्रह्मचर्यसमायुक्तः शुचिर्भूत्वा कृपाकरः।। 48।।

देव, धर्म एवं गुरु को प्रधान मानकर एवं शास्त्र के अर्थों के आदेश का पवित्र मन से चिन्तन करता हुआ, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य-व्रतों का पालन करता हुआ "

447 यः प्रणम्य पदद्वन्द्वं गुरोर्गुणगरीयसः।
उपवासं समादाय त्रिधा गुरुनिदेशतः।। 49।।

—"जो गुणश्रेष्ठ गुरु के चरणद्वय को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से त्रियोग शुद्धिपूर्वक उपवास करे।" तथा —

448 शृण्वन् कथां जिनेन्द्राणां चक्रिणामर्धचक्रिणाम्।
नयत्येकाग्रभावेन तद्दिनं नयभावितः।। 50।।

— "चक्री और अर्धचक्री तथा जिनेन्द्रों की कथा को सुनता हुआ, एकाग्र भाव से और नियमपूर्वक उस दिन को व्यतीत करे।"

449 सन्ध्याकाले समाचम्य स्तुत्वा स्तुतिशतैर्जिनान्।
तार्णके संस्तरे शेते धृत्वा नामार्हतो हृदि।। 51।।

—"फिर, सूर्यास्त-पूर्व-सन्ध्या के समय आचमन कर (चुल्लु में जल लेकर), सैकड़ों स्तुतियों से जिनों की स्तुति कर हृदय में जिनस्वामी का नाम धारण कर तृण की शय्या पर सोवे।"

450 प्रातरुत्थाय वेगेन कृत्वा संस्तरशोधनम्।
स्वयं स्नात्वा जिनेन्द्राणां प्रतिमां स्नापयेत्ततः।। 52।।

—"पुनः, सुबह शीघ्रता से उठकर, बिछावन का शोधन कर तथा स्नान करने के बाद जिनेन्द्रों की प्रतिमा का उसे स्वयं अभिषेक करे।"

451 विधायार्चां विधानेन वसुभेदसमन्विताम्।
वितीर्योत्तमपात्रेभ्यो भोजनञ्च-चतुर्विधम्।। 53।।

—"और, विधि-विधानानुसार अष्ट-प्रकारी पूजा करके उत्तम पात्रों को चार प्रकार का दान देकर और चारों प्रकार का भोजन कराकर—"

452 नत्वा विसर्ज्य सत्पात्रं ततः सन्तुष्टमानसः।
उपविश्य यथास्थानं स्वयं भुङ्क्ते सबान्धवः।। 54।।

"सत्पात्रों को (दान देने के बाद) नमस्कार कर उन्हें सादर विदाई दे। तत्पश्चात् सन्तुष्ट मन से यथास्थान बैठकर बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे।"

453 मासे-मासे करोत्येवमुपवासमनातुरः।
यावत् स पञ्चमासान् वा वर्षाणि वा पञ्च यत्नतः।। 55।।

—"इसी तरह प्रत्येक माह या पाँच महीनों या पाँच वर्षों तक यत्नपूर्वक, आतुरता से रहित होकर उपवास करता रहे—"

454 परिपूर्णे विधौ पश्चान्निजवित्तानुसारतः।
उद्यापनं यथाशक्तया विदधाति प्रियंवदः।। 56।।

—"और विधि पूरी होने पर अपनी सम्पत्ति के अनुसार मधुरभाषी होते हुए यथाशक्ति उद्यापन (व्रत-समापन) करे।"

455 श्रुतानि पञ्च सद्भक्त्या विलेख्य वर-लेखकान्।
संवेष्ट्य वरवस्त्रेण दत्ते मुनिजनाय वै।। 57।।

—पुनः भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ लेखकों द्वारा पाँच श्रुतों (शास्त्र-ग्रन्थों) को लिखवाकर उन्हें सुन्दर वस्त्र से लपेटकर मुनिजन को बाँटे—"

456 अम्बराणि वलक्षाणि चार्यकाभ्यो विचक्षणः।
ददात्यन्यदपि प्रीत्या च यद्योगं यस्य तत्तदा।। 58।।

—"तथा उन लेखक-विद्वानों तथा आर्यिकाओं को पीताभ शुभ-वस्त्र पहिनाकर तथा जो जिसके योग्य है, उसे अपनी शक्ति के अनुसार कुछ और भी दान दे—"

457 चञ्चच्चन्द्रमरीच्याभचामराणि ध्वजावली।
ताराच्छत्रत्रयं शङ्खं सुप्रतीकं वितानकम्।। 59।।

—"साथ ही स्फुरित (चन्द्र-किरणों) के समान चँवर, ध्वजाएँ, तीन ताराच्छत्र, शङ्ख, एवं सुप्रतिष्ठ (ठोना) वितान (चंदोवा)—"

458 दर्प्पणं तालभृङ्गारकुम्भतूर्याणि सादरम्।
शासनस्य जिनेन्द्राणामुत्सवाय प्रयच्छति।। 60।।

—"एवं, दर्पण, तालपत्र (पंखे), भृंगार, स्वर्णकलश एवं तूर्यों को सादर जिनेन्द्रों के उत्सव के लिए प्रदान करें।"

459 चतुःप्रकारसंघाय दत्ते भोजनमुत्तमम्।
श्रद्धाविनयतुष्टादिसप्तभेदगुणान्वितः।। 61।।

—"और श्रद्धा, विनय, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्व रूप दातार के सप्तगुणान्वित होकर वह चतुर्विध-संघ के लिए उत्तम आहार-दान दे।"

460 इत्याद्युद्यापनं भक्त्या कुरुतेऽस्य व्रतस्य यः।
स संसाराम्बुधेः पारं लभते नात्र संशयः।। 62।।

—"अतः हे बेटी! जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से उक्त व्रत का भक्तिपूर्वक उद्यापन करता है, वह निःसन्देह ही संसार-सागर का पार पा जाता है।"

461 न चेदुद्यापनं पुत्रि भावदारिद्र्यदोषतः।
तदा वैराग्यभावेन कर्तव्यो द्विगुणोविधिः।। 63।।

—"और हे पुत्रि! भावना-दोष या गरीबी के कारण यदि उद्यापन न हो

सके, तो भी वैराग्यभाव से विधि को द्विगुणित कर, व्रत को सम्पन्न करना चाहिए।"

462 **यदीदृक्षं करोपि त्वं विधानं विधिपूर्वकम्।**
तदा न दुर्ल्लभं किञ्चित्तवास्तीह जगत्त्रये।। 64।।

—"अतः हे पुत्रि! यदि तुम विधिपूर्वक इस विधान को सम्पन्न करोगी, तो इस त्रैलोक्य में तुम्हें कुछ भी दुर्ल्लभ नहीं होगा।"

463 **दीयन्ते येन सौख्यानि निर्वाणस्य तनूभृताम्।**
स तनूजस्य संयोगसुखंदत्ते न किं सुते?।। 65।।

—"हे पुत्रि! जो व्रत शरीरधारियों को निर्वाण के सुखों को दे सकता है, क्या वह पुत्र-संयोग का सुख प्रदान नहीं कर सकता?"

464 **इत्युदीर्य व्यरंसीत्सा सुव्रतार्या गतस्मरा।**
शोकाकुलितचित्तायाः पुरतः कमलश्रियः।। 66।।

काम-विकार रहित वह **सुव्रता-आर्या** शोकाकुल चित्तवाली उस **कमलश्री** के सामने इतना कहकर मौन हो गई।

465 **आर्यावचनतोऽग्राहि तयाऽयं विधिरुत्तमः।**
विधायजिननाथानामर्च्चामाश्चर्यकारिणीम्।। 67।।

कमलश्री ने उन **सुव्रता-आर्या** के उपदेश के अनुसार ही उस व्रत का उत्तम-विधि से पालन किया और जिननाथों की आश्चर्यकारी पद्धति से पूजा-अर्चा कर—

466 **कुर्व्वती जिननाथानां पुरतः संस्तुतिं त्रिधा।**
जयन्ती मन्मथत्यक्तशरप्रजनितव्यथाम्।। 68।।

—जिनेन्द्रों के सम्मुख मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक स्तुति करती हुई और कामदेव द्वारा छोड़े गए काम-शरों से उत्पन्न कष्टों को जीतती हुई—

467 **स्थापयन्ती मनोवृत्तिं जिननाथोदिते वृषे।**
ददती दानमत्यन्तं मुनिभ्यो गुरुभक्तितः।। 69।।

— जिननाथ द्वारा कथित धर्म में अपने मन की परिणति को स्थापित करती हुई तथा अत्यन्त भक्तिपूर्वक मुनियों को दान देती हुई —

468 **दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयं हृदि बिभ्रती।**
माता भविष्यदत्तस्य दिनानि नयति स्म सा।। 70।।

— सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र रूपी रत्नत्रय को हृदय में धारण करती हुई भविष्यदत्त की माँ **कमलश्री** अपने दिनों को व्यतीत कर रही थी।

469 **एकदा मनसि स्मृत्वा मनोज्ञं स्वसुतं तया।**
अवाचि यदि लभ्येत विधानात् फलभीहितम्।। 71।।

अन्य किसी एक दिन उस कमलश्री ने अपने मन में अपने सुन्दर पुत्र—**भविष्यदत्त** का स्मरण कर अपने मन में कामना करते हुए कहा — "यदि इस व्रत-विधान से मुझे इच्छित फल प्राप्त होना हो तो"—

पहले पुत्र-संयोग तत्पश्चात् निर्वाण-सुख

470 **तदादौ पुत्रसंयोगो ममास्तु सुखकारणम्।**
पश्चाद्भवतु निर्वाणसुखं संसारसातनम्।। 72।।

—"सबसे पहले मुझे अपने सुख का कारण मेरा पुत्र-मिलन ही हो। फिर बाद में संसार-यातना को समाप्त करने वाला निर्वाण-सुख मिले।"

सुव्रता-आर्या कमलश्री को मुनिराज के सम्मुख ले जाती है

471 **पुत्रमोहवशान्म्लानमुखां तां कमलश्रियम्।**
दृष्ट्वार्या सुव्रतानिन्ये जिननाथ निकेतनम्।। 73।।

पुत्रमोह के कारण म्लान-मुख वाली उस **कमलश्री** को देखकर वह आर्या-सुव्रता उसे जिन-मन्दिर में ले गई।

472 तत्र त्रिज्ञानिनं नत्वा मुनीन्द्रं मदनद्विषम्।
उवाच वचनं भक्त्या सुव्रतार्या विरागणी।। 74।।

वहाँ उन विरागिनी आर्या-सुव्रता ने भक्तिपूर्वक वहाँ विराजित कामरिपु, त्रिज्ञानी मुनीन्द्र को प्रणाम करते हुए कहा—

मुनिराज से प्रश्न

473 भगवंस्त्वं त्रिकालज्ञो ज्ञानदृष्टिरनिर्जितः!
लोभ-मोह-भय-द्वेष-मान-माया-मदाहितैः।। 75।।

"हे भगवन्! आप लोभ, मोह, भय, द्वेष, मान, माया, मद और शत्रुओं द्वारा पराजेय नहीं हो, तीनों कालों के ज्ञाता एवं तृतीय ज्ञानरूप दृष्टि वाले अर्थात् अवधिज्ञानी हो—"

474 पद्मबन्धुरिवाशेषभुवनाभोगभूषणः।
भव्याम्भोजाकरस्य त्वं श्रीप्रदस्तिमिरापहः।। 76।।

"हे भगवन्! आप सूर्य के समान सम्पूर्ण संसार के विस्तार के अलङ्कार स्वरूप, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाले एवं सुभव्यरूपी कमलाकरों को सौन्दर्य प्रदान करने वाले हो।"

475 विधाय हृदि कारुण्यं कथयस्व प्रसादतः।
यदहं नाथ पृच्छामि परोपकृतिहेतवे।। 77।।

"हे नाथ! परोपकार के लिए जो मैं आपसे पूछने जा रही हूँ, उसे अपने हृदय में कारुण्य-भाव रखकर, कृपापूर्वक मेरे लिए कहिए।"

476 अस्या वितीर्य्य दुःखानि वणिज्यायौ गतः सुतः।
कदा तस्यागमो नाथ भविष्यति निवेदय।। 78।।

"हे नाथ! इस (कमलश्री) का पुत्र (भविष्यदत्त) इसे दुःखी बनाकर, व्यापार के लिए बाहर विदेश में चला गया है, उसका आगमन कब तक होगा? यह बताइए।"

मुनिराज का कथन-भविष्यवाणी

477 आर्योदितं वचः श्रुत्वा जगाद मुनिपुङ्गवः।
दन्तपङ्क्तिलसद्दीप्त्या श्वेतीकृत जिनालयः।। 79।।

सुव्रता-आर्या द्वारा पूछे गए प्रश्न को सुनकर उन मुनिश्रेष्ठ ने अपनी दन्तपंक्ति के प्रकाश से जिनमन्दिर को प्रकाशित करते हुए कहा —

478 अस्याः सुतो गुणाधारो लक्षणैरुपलक्षितः।
पुण्यप्रभावतः प्राप्तो द्वीपान्तरमनुक्रमात्।। 80।।

—"इस (कमलश्री) का पुत्र (भविष्यदत्त) जो कि सभी गुणों का आधार एवं सभी लक्षणों से युक्त है, अपने ही पुण्य के प्रभाव से वह क्रमशः एक दूसरे द्वीप में चला गया है।"

479 तत्र तिष्ठति भुञ्जानः कामसौख्यमनारतम्।
सहस्राक्ष इव स्वर्गे सुन्दरीपरिरम्भितः।। 81।।

—"और स्वर्ग में सुन्दरियों द्वारा आलिङ्गित इन्द्र के समान ही वह वहाँ निरन्तर काम-सुखों का भोग कर रहा है।"

480 गतेषु द्वादशाब्देषु सत्सुकार्त्तस्वरोत्करम्।
नाना रत्नानि दिव्यानि वस्त्राणि सह भूषणैः।। 82।।

—"बारह वर्ष बीत जाने पर बहुमूल्य आभूषणों, प्रचुर-मात्रा में स्वर्ण तथा विविध प्रकार के रत्नों, दिव्य वस्त्रों" और —

481 अन्यान्यपि हि वस्तूनि समादाय विशेषतः।
कान्तया कान्तयायुक्तो नानाभरणभूषितः।। 83।।

—"अन्यान्य वस्तुओं को भी लेकर, विशेषतः विभिन्न प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित अपनी सुन्दरी प्रियतमा के साथ"—

482 वैशाखसितपञ्चम्यां निजमातुर्मनः प्रियः।
रजन्या पश्चिमे यामे मिलिष्यत्येत्य वेगतः।। 84।।

—"वह वैशाख-शुक्ल-पञ्चमी-तिथि में रात के अन्तिम प्रहर के व्यतीत

होते-होते अपनी माँ का प्रिय बेटा — (वह भविष्यदत्त) तीव्र गति से आकर उससे मिलेगा।"

कमलश्री सन्तुष्ट हो जाती है

483 **निशम्य वचनं साधोः श्रुतिरन्ध्र सुखावहम्।**
माता भविष्यदत्तस्य तुतोष हृदि निर्भरम्।। 85।।

कर्ण-कुहर को सुख प्रदान करने वाली, उन साधु महाराज की भविष्यवाणी सुनकर भविष्यदत्त की माता अपने मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हुई।

484 **मुनिपादाम्बुजद्वन्द्वं प्रणम्य शिरसा ततः।**
सुव्रताऽगान्निजावासं कलिती कमलश्रिया।। 86।।

उन मुनि-महाराज के चरणकमलद्वय को सिर से प्रणाम कर वे सुव्रता-आर्या उस कमलश्री के साथ अपने आवास-स्थल पर वापस लौट आईं।

मुनिराज की भविष्यवाणी ध्रुव सत्य होती है

485 **तत्र तस्याः पुरोऽवाचि सुव्रताभिधयार्यया।**
नान्यथा जायते पुत्रि! यत्किञ्चन्मुनिनोदितम्।। 87।।

वहाँ आकर आर्या-सुव्रता ने उसके सम्मुख कहा — "हे पुत्रि! जो कुछ मुनि-महाराज द्वारा कहा गया है, उसके प्रतिकूल कुछ भी नहीं होगा।"

486 **जायते जातुचिद्भानुः शीतलो दहनः शशी।**
समुद्रो निर्जलः शैल-शिखरे कमलाकरः।। 88।।

— "कदाचित् सूर्य शीतल हो जाए, चन्द्रमा दाहक बन जाए, समुद्र जलहीन हो जाए, और पर्वत की चोटी पर कमल-समूह खिल उठें।"—

487 **वायुः स्थिरः सुनासीरो निर्भोगो निर्विषो विषी।**
नो वचो मुनिनाथस्य क्वापि स्यादन्यथा ध्रुवम्।। 89।।

— युग्मम्

— "और, भले ही, वायु गतिहीन हो जाए, इन्द्र भोगहीन रहने लगे,

शेषनाग विषविहीन हो जाए, तो हो जाए किन्तु मुनिनाथ के वचन कभी भी अन्यथा नहीं होते। वे ध्रुव सत्य होते हैं।"

488 आर्यावचोऽम्बुसंसिक्ता कमलश्रीरितामुदम्।
लतेवाभिनवाम्भोदमुक्तपानीययोगतः।। 90।।

नूतन मेघ-जल की वर्षा के संयोग से प्रफुल्लित लता के समान ही आर्या-सुव्रता के वचन रूपी जल से सिक्त होकर शोकाकुल उस कमलश्री ने प्रसन्नता प्राप्त की।

489 कुर्व्वन्तीं दिनपक्षमासगणनां हस्ताङ्गुली पर्वभिः।
पुत्र-स्वामिवियोगतीव्रशिखिना दन्दह्यमानाऽनिशम्।।
ध्यायन्ती जिनमत्र लक्ष्मणयुतं ज्ञानामलश्रीधरम्।
सद्धर्मेण भविष्यदत्तजननी निन्ये तदा वासरान्।। 91।।
शार्दूलविक्रीडितम्

अपने पुत्र-**भविष्यदत्त** और स्वामी **धनपति** की तीव्र वियोगाग्नि से अहर्निश सन्तप्त तथा अपने हाथ की अंगुलियों की पोरों पर दिन, पक्ष एवं महीनों की गणना करती हुई वह **कमलश्री**, साहू **लक्ष्मण** (इस ग्रंथ के प्रेरक) तथा **विबुध श्रीधर** (प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक-महाकवि) के समान ही निर्मलज्ञान (केवलज्ञान) के धारी जिनेन्द्र देव का ध्यान करती हुई, अपनी सद्धर्म-वृत्ति पूर्वक दिनों को व्यतीत करने लगी।

....

इति श्रीभविष्यदत्तचरिते बिबुधश्रीधरविरचिते
साहू लक्ष्मणनामाङ्किते चतुर्थः सर्गः समाप्तः।

इस प्रकार बिबुधश्रीधर द्वारा निर्मित साहूलक्ष्मण के नामसे अङ्कित प्रस्तुत भविष्यदत्त-चरित का चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

....

पाँचवाँ सर्ग

490 **प्रवरवचनपोतं प्राप्य येषां विनेया,**
अशरणभववार्द्धेः लीलया यान्ति पारम्।
परिहृतगृहकार्याः पाठकाः पापमुक्ताः,
शमितमदनमोहाः पान्तु ते लक्ष्मणाख्यम्।। 1।।

जिन उपाध्यायों के श्रेष्ठ उपदेशरूपी पोत (नाव) को प्राप्त कर भक्तजन अशरणरूप इस संसार-समुद्र को हँसते-खेलते पार कर जाते हैं, ऐसे वे **उपाध्याय**, गृहकार्यों के त्यागी, शास्त्रों के अध्येता, निष्पाप तथा प्रशमित काम-भावना वाले **श्रीलक्ष्मण साहू** (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक) की रक्षा करें।

491 **अथैकदा भविष्यानुरूपया पुरतः स्थितः।**
अवाचि स्वपतिः प्रीत्या कर्णविश्रान्तनेत्रया।। 2।।

इसके बाद अन्य किसी एक दिन कर्ण-पर्यन्त प्रसृत नेत्र वाली उस **भविष्यानुरूपा** ने अपने सम्मुख स्थित अपने पति **भविष्यदत्त** से प्रेमालाप करते हुए कहा —

492 **त्वद्रूपासक्तचेतस्का कामसौख्याब्धि मध्यगा।**
व्यतीतान्यपि वर्षाणि द्वादशात्र न वेद्म्यहम्।। 3।।

—"तुम्हारे रूप में आसक्त-चित्त और काम-सुख के समुद्र में डूबी हुई मैं स्वयं नहीं जान पा रही हूँ कि यहाँ बारह-वर्ष कैसे बीत गए?"

भविष्या० भविष्य० से पूछती है

493 **यदभाषि पुरा वृत्तं मदग्रे त्वयकात्मनः।**
तदाशयमगान्नाथ विस्मृतित्वं ममाधुना।। 4।।

—"हे नाथ! पहले आपने मेरे सामने जो अपना वृत्तान्त सुनाया था, इस

समय उसका आशय मैं भूल ही गई हूँ।"

494 बहुनात्र किमुक्तेन कथं त्वं निजहर्म्यतः।
निर्गतः पितरौ मुक्त्वा पुरं देशञ्च शोभनम्।। 5।।

—"मैं और अधिक क्या पूछूँ? मुझे केवल यही बतला दें कि आप अपने भवन से क्यों निकल गए? और सुन्दर देश तथा माता-पिता को छोड़कर"—

495 दुर्गं समुद्रमुल्लङ्घ्य कथमत्र समागतः।
बान्धवाः सुहृदः केन कारणेन समुज्झिताः।। 6।।

—"अगम्य समुद्र को लाँघकर यहाँ तक कैसे आ गये तथा किस कारण से साथी बन्धु-बान्धव और मित्र-गण छूट गए?"

496 सर्वमेतद् विशेषेण श्रोतुमिच्छामि कौतुकात्।
त्वदीय वक्त्रनिर्यातं गम्भीरमधुरध्वने!।। 7।।

—"हे गम्भीर और मधुर-वाणी वाले! कुतूहलवश आपके मुख से निकला हुआ यह समस्त वृत्तान्त मैं पुनः सुनना चाहती हूँ।"

भविष्य० उत्तर देता है

497 तदाकर्ण्य वचः पत्न्या धनेश्वर-सुता-सुतः।
दुःखितोऽभून्मनोमध्ये शल्यसंचालनादिव।। 8।।

धनेश्वर की पुत्री उस **कमलश्री** का पुत्र **भविष्यदत्त** अपनी नवोढा पत्नी का यह प्रश्न सुनकर काँटा चुभने की तरह अपने मन में अत्यन्त दुःखी हो गया।

498 दध्यावसौ मया मुक्ता जननी या निजालये।
शोकाहतां न तां वेद्मि किं जीवति मृताथवा।। 9।।

भविष्यदत्त ने अपने मन में सोचा—"जिस माँ को मैंने अपने घर में छोड़ दिया है, उस शोकाहता को मैं नहीं जानता कि वह इस समय जी रही है, अथवा मर गई है।"

वात्सल्यमयी माता के गुण-भावों की प्रशंसा

499 ययाऽहं यत्नतो दध्रे मासान्नव निजोदरे।
प्रत्याशां हृदि कुर्वन्त्या पुत्रस्य कुलतिग्मयोः।। 10।।

—"जिसने अपने हृदय में वंश-प्रकाशक पुत्र की प्रत्याशा से मुझे नौ महीनों तक अपनी कोख में यत्नपूर्वक रखा।"

500 आरोपकइवात्यन्तमभिषिच्य प्रवर्द्धितः
उपायैर्बहुभिः पुत्रस्नेहतः प्रतिपालितः।। 11।।

—"और वृक्ष लगाने वाले-वृक्षारोपक के समान ही अपने पुत्र-स्नेह से अभिसिञ्चित कर मुझे बड़ा किया और विविध उपायों से मुझे पाला-पोसा।"

501 सर्वदा सर्वरत्नानां निधानमिव वीक्षितः।
यस्याःस्तन्यं मया पीतं पश्यता मातुराननम्।। 12।।

—'जिसने मुझे निरन्तर ही सभी बहुमूल्य रत्नों की निधि के समान देखा तथा जिस माँ का मुँह देखते हुए ही मैंने उसका स्तनदुग्ध का पान किया।"

502 न तस्या गुणमञ्जर्या मयकामन्दमेधसा।
उपकारः कृतः कश्चिदपि निर्लज्जचेतसा।। 13।।

—"उस गुणशालिनी अपनी माता का, निर्लज्ज एवं मन्दबुद्धि मैंने कोई भी उपकार नहीं किया है।"—

503 किं मदीयेन भोगेन सुखेनापि धनेन वा।
न येन तर्प्यते माता मदीया सहबन्धुभिः।। 14।।

—"मेरे भोग, सुख एवं इस धन से क्या लाभ? यदि उनसे बन्धु-बान्धवों के साथ-साथ मेरी माँ को भी सुख-सन्तोष न मिले।"

504 सुखदानक्रिया दूरेऽप्यास्तां तावत् स्वमातृका।
महता शोकदुःखेन मया प्रत्युत पूरिता।। 15।।

—"किन्तु उसे सुख देने का कार्य तो दूर, उल्टे मैंने उसे (अपनी माता

को) महान् वियोग-शोक के दुःखों से भर दिया।"

505 मयि जाते जनन्या मे गुणो जातो न कोऽपि वै।
निर्घृणो न मया तुल्यो विद्यते कोऽपि भूतले।। 16।।

— "उसका (अपनी माँ का) पुत्र होने पर भी, उसका (माँ का) कोई भी गुण (मुझमें) उत्पन्न नहीं हुआ। सचमुच ही इस संसार में मेरे समान कोई भी घृणित नहीं।"

506 पितरौ बान्धवाः सन्तः सुहृदः सुखहेतवः।
सर्वेऽपि विस्मृता बाढं मम मूढस्य दुर्मतेः।। 17।।

— "सुख के कारणभूत माता-पिता, भाई-बन्धु, हितैषी-मित्र आदि को भी मुझ जैसे दुर्मति एवं मूर्ख ने भुला दिया।"

पूर्वजन्म के पुण्य-कर्मों का प्रभाव

507 वरं पुरं वरं हर्म्यं वरा भार्या वरं धनम्।
समस्तं पुण्यतः प्राप्तं मया चित्तसमीहितम्।। 18।।

— "फिर भी, अब मेरे पास सुन्दर नगर, सुन्दर महल श्रेष्ठ पत्नी एवं भरपूर धन है। अपनी अभिलाषा के अनुसार ही यह सब कुछ मैंने अपने पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से ही प्राप्त किया है।"

अर्जित धन की प्रशस्यता और सफलता कब?

508 परं तदेव मन्येऽहं धनं धनवतां वरम्।
भुज्यते यत्सदासार्द्धं सद्भिःशुद्धमतिप्रदै।। 19।।

— "किन्तु धनवानों का वही धन मैं उत्तम मानता हूँ जो सुबुद्धि प्रदान करने वाले सज्जनों के द्वारा सदा भोगा जाता हो।"

509 कार्य्यन्ते चैत्यहर्म्याणि येन निःशेष दर्शिनः।
विलेख्यन्ते च शास्त्राणि तद्धनं सफलं सताम्।। 20।।

— "दूरदृष्टि-सम्पन्न सज्जन लोग जिस धन से सर्वज्ञदेव के चैत्यालय,

जिन-मन्दिर एवं धर्मशालाएँ आदि बनवाते हैं तथा जिस धन से शास्त्र लिखवाए जाते हैं, वही धन सफल कहा जाता है।"

510 मुनिभ्यो दीयते येन भक्त्या दानं चतुर्विधम्।
भावशुद्ध्या धनं मन्ये तदेवाहं वरं नृणाम्।। 21।।

—"जिस धन से शुद्धभाव एवं भक्तिपूर्वक मुनिराजों के लिए चतुर्विध दान दिया जाता है। मनुष्यों के उसी धन को मैं सर्वश्रेष्ठ सफल मानता हूँ।"

511 वस्त्राणि येन दीयन्ते साध्विकाभ्यो भवाम्बुधेः।
तारणाय तदेवाहं धनं मन्ये मनोहरम्।। 22।।

"संसाररूपी सागर पार करने के लिए साधनारत, त्यागियों, व्रतियों एवं साध्वी-आर्यिकाओं को जिस धन द्वारा सुयोग्य वस्त्र दान किए जाते हैं, उसी धन को मैं मनोहर एवं प्रशस्त मानता हूँ।"

512 वन्दिनां भव्यलोकानामन्येषामपि देहिनाम्।
सन्ततिस्तर्प्यते येन तदेव सफलं धनम्।। 23।।

—"जिस धन से, बन्दियों, भव्यलोकों एवं अन्य शरीरधारियों का समुदाय सन्तुष्ट होता रहे, वही धन प्रशस्य एवं सफल है।"

513 मामकीनं पुनश्चैतद्धनं सर्व निरर्थकम्।
सुकलत्रं यथा चारु यौवनेन बिना नृणाम्।। 24।।

—"अतः यह मेरा सम्पूर्ण धन उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार मनुष्यों के सुन्दर यौवन के बिना सुन्दर युवति स्त्री बेकार होती है।"

514 यन्न दृष्टं धनं सद्भिः पितृभिर्बन्धुभिर्जनैः।
न कार्यं तेन भोगानां भाजनेनापि मेऽधुना।। 25।।

—"जो धन सज्जनों, पितरों, बन्धुओं एवं अन्य लोगों के द्वारा नहीं देखा-भोगा गया है, भोग के योग्य होते हुए भी अब उस धन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं।"

515 **जिनपूजा तपोदानं - धर्म - वर्जित - चेतसः।**
विफलानि व्यतीतानि वर्षाणि द्वादशेह मे।। 26।।

— "जिनेन्द्र पूजा, तपस्या, दान एवं धर्म से हीन-चित्त मेरे यहाँ पर बारह वर्ष व्यर्थ में ही बीत गए। अब और अधिक क्या कहूँ।"

516 **इति स्वं प्रविनिन्द्याऽसौ जगाद् निजवल्लभाम्।**
श्रूयतां तन्वि यत्पृष्टं त्वया तत्कथयामि ते।। 27।।

इस प्रकार उस भविष्यदत्त ने अपने-आप ही निन्दा कर अपनी प्रेयसी भविष्यरूपा से कहा — "हे कृशाङ्गि! तुमने जो मुझसे पूछा है, उसे ही तुम्हें मैं बतला रहा हूँ।" उसे और सुनो।

भविष्य० भविष्या० को आत्मवृत्त कहता है

517 **इहैव भरते क्षेत्रे कुरुजाङ्गलनामनि।**
देश - देशागतानेकनरवृन्दमनोहरे।। 28।।

इसी भरत-क्षेत्र में देश-देश से आए हुए मनुष्य-समुदायों से सुशोभित कुरुजाङ्गल नामक देश में—

518 **हस्तिनागपुरं तत्र भूपालाख्यो नरेश्वरः।**
नाम्ना धनपतिस्तस्य श्रेष्ठी श्रेष्ठजनान्वितः।। 29।।

हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँ **भूपाल** नामक राजा राज्य करता है। धनपति नामका एक सेठ उस राजा का प्रिय (नगरसेठ) एवं अनेक श्रेष्ठजनों से युक्त है।

519 **तस्यास्ति सुन्दरी भार्या कमलश्रीरितीरिता।**
नाम्ना भविष्यदत्तोऽहं तत्पुत्रः प्रथितः प्रियः।। 30।।

कमलश्री नाम से विख्यात उसकी एक सुन्दरी भार्या है। मैं **भविष्यदत्त** नामका, उसी का प्रिय एवं प्रसिद्ध पुत्र हूँ।

520 मामकीनोऽनुजो भ्राता बन्धुदत्तोऽन्यमातृजः।
समं तेन वणिज्यायै निरगामहमोकसः।। 31।।

—"**बन्धुदत्त** नामका मेरा छोटा भाई है, जो कि दूसरी सौतेली माँ से उत्पन्न है। उसी के साथ व्यापार के लिए मैं **(समुद्री-पोत से)** घर से निकला था।"

521 स मां मुक्त्वा महारण्ये गृहीत्वा पोतकानितः।
अहन्तु दैवयोगेन भ्रमन्नत्र समागतः।। 32।।

("दुर्भाग्य से-) वह मुझे इस महारण्य में अकेला छोड़कर और अपने समुद्री-पोतों को लेकर (दूर) चला गया, और मैं दैवयोग से भटकता हुआ ही यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

522 मद्वृत्तं यत्त्वया पृष्टं तदशेषं मयोदितम्।
अन्यदेव तवाग्रेऽहं कथयामि शृणु प्रिये।। 33।।

— "तुमने मेरा जो वृत्तान्त मुझसे पूछा था, मैंने उसे पूरा कह सुनाया है। हे प्रिये! अब मैं तुम्हें कुछ और भी सुनाना चाहता हूँ। उसे भी सुनो।"

भविष्यदत्त प्रियतमा के साथ स्वदेश लौटने का संकल्प करता है

523 किं धनेन पुरेणापि मम भोगेन नाशिना।
विधीयतां तत्र तत् किञ्चित् पश्यावो येन बान्धवान्।। 34।।

—"नाशवान् इस धन से, नगर से एवं भोगोपभोगों से मुझे क्या प्रयोजन? अतः अब ऐसा कोई उपाय किया जाए, जिससे कि हम दोनों चलकर अपने बन्धु-बान्धवों के दर्शन-स्पर्शन कर सकें।"

524 उद्यमेन बिना सिद्धिं कार्यस्य लभते न ना।
सोद्यमस्य नरस्येह सर्वं सिद्ध्यति वेगतः।। 35।।

—"मनुष्य उद्योग (पुरुषार्थ) के बिना कार्य की सिद्धि कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। हाँ, इस लोक में उद्यमी-पुरुष को अपने कार्य में सिद्धि शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है।"

समुद्री तट पर आकर वे दोनों अतिमुक्तक-वृक्ष के ऊपर बैठ जाते हैं

525 **उपकण्ठे समुद्रस्य निवासः प्रविधीयते।**
एष्यन्ति तत्र ते पान्थाः गमिष्यावः समं तकैः।। 36।।

"अतः समुद्र के किनारे चलकर वहीं निवास करें। वहाँ पर वे ही पथिक जब लौटकर आएँगे तभी उनके साथ-साथ हम दोनों भी चले चलेंगे।"

526 **इत्युदीर्य समादाय साररत्नसमुत्करम्।**
दिव्यवस्त्राणि मुक्तानां मालिकां मलवर्जिताम्।। 37।।

ऐसा कहकर श्रेष्ठरत्न-समुदाय, दिव्यवस्त्र एवं निर्दोष मोतियों की माला लेकर—

527 **गत्वाभ्यर्णं समुद्रस्य ध्वजमुद्धृत्य पादपे।**
तस्थतुर्द्वावपि स्नेहादतिमुक्तकपादपे।। 38।।

—युग्मकम्।

समुद्र के नजदीक जाकर, वृक्ष पर ध्वजा को फहराकर वे दोनों ही प्रेमपूर्वक **अतिमुक्तक** वृक्ष के ऊपर चढ़कर यात्रियों के आगमन की प्रतीक्षा में बैठ गए।

दुष्ट बन्धुदत्त लौटकर वहीं आ जाता है

528 **अत्रान्तरे खलः क्रूरो बन्धुदत्तो विरुद्धधीः।**
समं वणिक्सुतैर्गत्वा काञ्चन-द्वीपमाययौ।। 39।।

इसी बीच दुष्ट, क्रूर एवं प्रतिकूल-बुद्धि वाला वह **बन्धुदत्त** अपने साथी वणिक्पुत्रों के साथ **काञ्चनद्वीप** जाकर लौट आया।

529 **शतानि पञ्च तान्येव जलयानानि सागरे।**
तस्थुः पूर्वप्रदेशेषु विमानानीव नाकिनाम्।। 40।।

बन्धुदत्त तथा उसके साथियों के वे ही पाँच सौ **समुद्री-जलयान** सागर के पूर्वीतटों पर आकर रुक गए। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो, देवों के

विमान ही हों।

530 ददृशे दूरतो वातप्रविधूतो महाध्वजः।
तैर्वणिग्भिः क्वणत्क्षुद्रघण्टाभिर्व्याहरन्निव।। 41।।

उन वणिक्पुत्रों ने दूर से ही हवा के द्वारा फहराते हुए भविष्यदत्त के उस विशाल झण्डे को देखा, जो कि छोटी-छोटी घण्टियों की कण-कण की आवाज से मानों कुछ सन्देश दे रहा था।

531 तन्निरीक्ष्य स्वनेत्राभ्यां बन्धुदत्तेन संशयात्।
तस्यावलोकनं कर्त्तुं प्रेषिता वणिजां सुताः।। 42।।

बन्धुदत्त ने अपनी आँखों से स्वयं उसे देखकर तथा मन में शांकित होकर उसका अवलोकन-परीक्षण करने के लिए उसने अपने साथी वणिक्पुत्रों को भेजा।

532 तदुक्तितः पयोयानात् त्वरमाणा ययुर्नराः।
हस्तविन्यस्त निस्त्रिंशाः कौतुकाकुलिताशयाः।। 43।।

बन्धुदत्त का आदेश पाकर सभी साथी वणिक्पुत्र हाथ में तलवार लेकर, उत्सुकता से आकुल होते हुए एवं जलयान को तेज करते हुए उस ओर चले।

533 तत्र तैर्विस्मयापन्नैस्तौ समालोक्य दम्पती।
नानाभरणाभादीप्तौ माधवीलतिकातले।। 44।।

वहाँ पहुँचते ही उन वणिक्पुत्रों ने विभिन्न अलङ्कारों की प्रभा से प्रकाशित उन दोनों पति-पत्नी को **माधवीलता** के नीचे देखकर तथा विस्मित होकर—

534 अचिन्ति हृदये हन्त किमेतौ रतिमन्मथौ।
अथवा श्रीहृषीकेशौ किं वा गौरीमहेश्वरौ।। 45।।

—अपने मन में सोचा—अहा! क्या ये दोनों रति और कामदेव हैं? अथवा लक्ष्मी और विष्णु हैं अथवा पार्वती और महादेव?

535 विकल्प्यैवं मनोमध्ये प्रणम्य चरणौ तयोः।
अवाचि तैः समागत्य बन्धुदत्तस्य दुर्मते।। 46।।

अपने मन में ऐसा विकल्प कर उन वणिक्पुत्रों ने उन दोनों के चरणों में प्रणाम किया और वापस लौटकर उन्होंने उस दुष्ट बुद्धि **बन्धुदत्त** को उन दोनों के विषय में इस प्रकार बतलाया —

536 न वयं विद्महे नूनं देवीदेवौ यथा दिवि।
तथैवेतौ हि रेजाते रममाणौ परस्परम्।। 47।।

—"हम नहीं जान पाए कि वे दोनों कौन हैं? किन्तु जिस प्रकार स्वर्गलोक में देवी एवं देवता सुशोभित होते हैं उसी प्रकार वे दोनों भी परस्पर में रमण करते हुए सुशोभित हो रहे थे।"

537 यावन्न गच्छतस्तस्मान्नो स्वधामसमीहितम्।
तावत्त्वं तत्र गत्वा सुनिरीक्ष्यस्व वणिक्पते।। 48।।

—"अतः हे वणिक्पते (बन्धुदत्त)! जब तक वे दोनों वहाँ से अपने इच्छित भवन को न चले जाएँ, उसके पहले ही आप स्वयं वहाँ जाकर उन्हें अच्छी तरह देख लें।"

538 तच्छ्रुत्वा तत्क्षणादेव तत्र गत्वा दुरात्मना।
बन्धुदत्तेन तौ दृष्टौ देवीदेवाविवागतौ।। 49।।

उनका कथन सुनकर उस दुरात्मा **बन्धुदत्त** ने तुरन्त ही वहाँ जाकर देवी और देवता के समान दिखाई देने वाले उन दोनों को स्वयं देखा।

539 नमःस्तुतौ च शीर्षेण वणिजां पञ्चभिः शतैः।
कम्पमाय भविष्यानुरूपाह्वा वणिजां भयात्।। 50।।

पाँच सौ बनियों (वणिक्पुत्रों) के द्वारा सिर झुकाकर प्रणाम और स्तुति किए जाने पर वह **भविष्यानुरूपा** उन वणिक्पुत्रों के भय से काँपने लगी।

540 स्मेरास्येन ततोऽवाचि कमलश्रीतनूभुवा।
स्पृशता श्मश्रु कान्तायाः मा प्रिये भव कातरा।। 51।।

प्रियतमा की ठुड्डी (दाढ़ी) को छूता हुआ एवं प्रसन्नमुख उस **भविष्यदत्त** ने कहा — "हे प्रिये! यह सब दृश्य देखकर भयभीत न हो।"

भविष्यदत्त एवं बन्धुदत्त की पुनर्भेंट और वार्तालाप

541 ज्ञात्वा भविष्यदत्तोऽसौ बन्धुदत्तं समागतम्।
गाढमालिङ्ग्य बाहुभ्यां बभाषे कुशलं तव।। 52।।

उस **भविष्यदत्त** ने **बन्धुदत्त** को लौटकर आया हुआ जानकर अपनी भुजाओं से उसका गाढ़ालिंगन करते हुए पूछा — "तुम्हारा कुशल-मंगल तो है?"

542 तन्निशम्य समाचष्टे बन्धुदत्तः सविस्मयः।
कुशलं यद्यथा वृत्तं तत्तथा चान्यदैव वै।। 53।।

भविष्यदत्त का यह कथन सुनकर विस्मय के साथ उस बन्धुदत्त ने अपने उत्तर में कहा — "मैंने जैसा आचरण किया है, ठीक उसी तरह की अन्य काल में भी कुशल रही।"

543 पुनः प्रणम्य तत्पादपद्मयोर्द्वयमादरात्।
उवाच बन्धुदत्तोऽसौ वञ्चनासक्तमानसः।। 54।।

फिर उसके दोनों चरणकमलों में आदरपूर्वक प्रणाम कर वञ्चना से युक्त मन वाले उस **बन्धुदत्त** ने कहा—

बन्धुदत्त क्षमा-याचना करता है

544 यन्मया दुष्टचित्तेन भ्रातस्त्वं विप्रतारितः।
कृत्वा कौटिल्यमत्यन्तं तदशेषं क्षमस्व मे।। 55।।

—"हे भाई (भविष्यदत्त)! दूषित-हृदय वाले मेरे द्वारा आप जो अत्यन्त कुटिलतापूर्वक सताए गए हैं, उसे अब सब क्षमा कर दीजिये।"

545 त्वद्वियोगजदुःखेन पीडितोऽहं दिवानिशम्।
पश्चात्तापाग्नितीव्रोरुज्वालाभिः परितापितः।। 56।।

—"आपके वियोग से उत्पन्न दुःख के कारण मैं रात-दिन पीड़ित बना रहा एवं पश्चात्तापाग्नि की तीव्र ज्वाला से सन्तप्त बना रहा हूँ।"

546 अरुचिर्भोजने जाता निद्रयाहं विवर्जितः।
कथंचिद्दैवयोगेन न मृतस्त्वद्वियोगतः।। 57।।

—"भोजन में अरुचि उत्पन्न हो गई है एवं नींद ने मेरा साथ छोड़ दिया है। दैवयोग से किसी तरह आपके वियोग के कारण ही मैं अब तक मरा नहीं।"

547 गृहे गत्वा करिष्यामि किं मयाऽचिन्ति मानसे।
प्रत्युत्तरं च दास्यामि कीदृशं सुहृदां सताम्।। 58।।

—"किन्तु अब घर जाकर मैं क्या करूँगा? सज्जन-मित्रों को कैसे प्रत्युत्तर दूँगा? यही मैं अपने मन में सोचता रहा हूँ।"

548 मुखमाविष्करिष्यामि जनानां पुरतः कथम्।
किं भणिष्यामि भूपस्य पितुर्मातुर्विपश्चिताम्।। 59।।

—"राजा, सुधीजनों एवं माता-पिता के आगे जाकर मैं उन्हें अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा और क्या कहूँगा?"

549 इति चिन्ताप्रपन्नेन मयेह त्वं निरीक्षितः।
क्षन्तव्यम्मे महाभाग महदागस्त्वयाऽधुना।। 60।।

—"इन्हीं चिन्ताओं से मैं ग्रस्त था कि अचानक अब आपसे भेंट हो गई। अतः हे महाभाग! अब इस समय आप मेरे उन महान् अपराधों को (कृपापूर्वक) क्षमा कर दीजिए।"

बन्धुदत्त ने जिज्ञासावश भविष्यदत्त से पूछा

550 **इति प्रेमवचोभिस्तं कमलश्रीशरीरजम्।**
क्षमाप्य बन्धुदत्तोऽसौ पप्रच्छ पुनरादरात्।। 61।।

इस प्रकार प्रेम-समन्वित वचनों द्वारा **भविष्यदत्त** से क्षमा कर देने की स्वीकृति लेकर उस **बन्धुदत्त** ने आदरपूर्वक पुनः उससे पूछा—

551 **एकाकिना त्वया भ्रातर्भ्रमता गहने वने।**
कथं प्राप्तं धनं भूरि स्त्रीरत्नेन समन्वितम्।। 62।।

—"हे भाई (भविष्यदत्त)! गहन वन में अकेले-अकेले घूमते हुए भी आपने इस स्त्रीरत्न से युक्त पर्याप्त धन कैसे प्राप्त कर लिया?"

भविष्यदत्त ने उत्तर में कहा

552 **तदाकर्ण्य वचस्तस्य बन्धुदत्तस्य दुर्धियः।**
धनेश्वरसुतापुत्रो जगाद जनवल्लभः।। 63।।

तब उस दुर्बुद्धि बन्धुदत्त का कथन सुनकर कमलश्री के जनप्रिय पुत्र **भविष्यदत्त** ने अपने उत्तर में कहा—

पूर्वजन्म के कर्म-फल भोग ही अटल

553 **क्रियते किं कृताटोपैः सहायैर्बहुभिर्भटैः।**
भुज्यते पूर्वजन्मात्तकर्मणः फलमङ्गिभिः।। 64।।

—"बाह्याडम्बर रखनेवाले अनेकानेक वीर-भट सहायकों से क्या लाभ? पूर्वजन्म के देहधारी जीव पूर्वजन्म के शुभाशुभकर्मों के ही फल भोगते हैं।"

554 **सुखं दुःखञ्च संयोगो वियोगो वधबन्धने।**
जीवितं मरणं पूर्वं यद्दत्तं तदवाप्यते।। 65।।

—"सुख-दुःख, संयोग-वियोग, वध-बन्धन, जीवन-मरण पूर्वजन्म में किए गए शुभाशुभ-कर्मों के अनुसार ही मिलते हैं।"

555 वने वार्द्धौ जले शैले स्थले द्वीपे पुरेऽङ्गिनः।
न जातु क्वापि मुच्यन्ते पूर्वात्त निजकर्मणा।। 66।।

—"वन में, समुद्र में, जल में, पहाड़ पर, स्थल में, द्वीप में या नगर में, कभी भी और कहीं भी यह जीव अपने पूर्वजन्म में किए गए कर्म फल-भोग से बच नहीं सकता।"

556 सुकृतं दुष्कृतञ्चापि यत्कृतं पूर्वजन्मनि।
तत्फलं लभते प्राणी दूरस्थोऽपि न संशयः।। 67।।

—"पूर्वजन्म में इस जीव द्वारा जो भी पुण्य या पाप-कर्म किया जाता है, वह भले ही दूर स्थित रहे, उसे उसका फल प्राप्त होता ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

557 अप्राप्तव्यं पुनर्वस्तु प्राणिनां पापकर्मतः।
तत्क्षणादेव दुष्प्राप्यं हस्तस्थमपि नश्यति।। 68।।

—"पुनः पूर्वजन्मकृत पापकर्म के कारण कोई भी वस्तु प्रयत्न करने पर भी अप्राप्य ही रहती है और हाथ में स्थित दुष्प्राप्य वस्तु भी उसे बचाने का प्रयत्न करने पर भी वह नष्ट हो ही जाती है।"

558 वियोगामानरुक्शोकधनहानि पराभवाः।
अवश्यमेव दीयन्ते प्राणिनां पापकर्मणा।। 69।।

—"पूर्वजन्मकृत पापकर्मों के द्वारा वियोग, अपमान, रोग, शोक, धनहानि एवं पराभव आदि प्राणियों को अवश्य रूप में प्राप्त होते ही हैं।"

559 पुण्यप्रभावतो नूनं न किञ्चिदपि दुर्ल्लभम्।
यद्यन्मनोहरं वस्तु सुलभं तत्तदङ्गिनाम्।। 70।।

—"और, पुण्य के प्रभाव से निश्चय ही कोई भी वस्तु दुर्ल्लभ नहीं होती। जो-जो मनोहर वस्तुएँ हैं, प्राणियों के लिए वे सब सुलभ हो जाती हैं।"

560 मया मनोवचःकायैर्यत्कृतं सुकृतं पुरा।
तत्प्रभावादिदं द्रव्यं सम्प्राप्तं सहभार्यया।। 71।।

—"पूर्वजन्म में मैंने मन, वचन और काय से जो पुण्य-कर्म किए थे, उन्हीं के प्रभाव से सुन्दर पत्नी के साथ-साथ मुझे यह धन भी प्राप्त हुआ है।"

भविष्या० भविष्य को भोजनार्थ बुलाती है

561 एवं वादिनि सानन्दे नन्दने कमलश्रियः।
भोजनाय भविष्यानुरूपया भणितः पतिः।। 72।।

जब वह भविष्यदत्त आनन्दित होकर यह सब सुना रहा था, तभी मुझे भविष्यानुरूपा ने अपने स्वामी को भोजन कर लेने के लिए आग्रह किया।

भविष्यदत्त बन्धुदत्तादि सभी वणिक्पुत्रों को भोजन कराता है

562 तेनापि क्रमतः सर्वे बन्धुदत्तपुरस्सराः।
यथायोग्यं निवेश्याशु दिव्याहारेण भोजिताः।। 73।।

भविष्यदत्त ने भी बन्धुदत्त आदि सभी वणिक्पुत्रों को क्रमशः यथायोग्य स्थान पर बैठाकर उन सभी को दिव्य आहार का भोजन कराया।

563 ताम्बूलं लेपनं दत्वा भूषणैरम्बरैः सह।
ततो भविष्यदत्ताख्यो बन्धुदत्तं जगाद सः।। 74।।

इसके बाद भविष्यदत्त ने उस बन्धुदत्त को आभूषण और सुन्दर वस्त्रों के साथ-साथ पान और लेपन तथा सुगन्धित इत्रादि देकर कहा—

भविष्यदत्त बन्धुदत्त के साथ चलने की प्रार्थना करता है

564 पितृमातृसमीपं मां नय त्वं विनयान्वितः।
पत्नीधनयुतं भ्रातर्मन्यसे यदि मे गुणम्।। 75।।

—"हे विनयावनत भाई बन्धुदत्त, यदि तुम मुझे सद्गुणी मानते हो, तो मेरी इस धर्मपत्नी एवं धन के साथ मुझे अपने माता-पिता के पास ले चलो।"

बन्धुदत्त सहर्ष स्वीकृति दे देता है

565 **श्रुत्वा भविष्यदत्तस्य वचो रम्यं सुखप्रदम्।**
बन्धुदत्त प्रहृष्टात्मा जगाद नतमस्तकः।। 76।।

भविष्यदत्त की सुखप्रद सुन्दर-वाणी को सुनकर प्रसन्नचित्त एवं नतमस्तक उस बन्धुदत्त ने अपने उत्तर में कहा —

566 **यमादेशं मम स्वामिन् देहि त्वं विदधामि तम्।**
इत्युक्तं तत्क्षणात्तेन समाज्ञाता वणिक्सुताः।। 77।।

—"हे स्वामिन्! आप मुझे जो भी आदेश देंगे, मैं वही करूँगा।" ऐसा कहकर उस बन्धुदत्त ने अपने वणिक्पुत्रों को तत्क्षण आज्ञा प्रदान की।

भविष्य० भविष्या० का सारा सामान पोतों पर चढ़ा दिया जाता है

567 **तदादेशात्तकैः सर्वं स्वं स्वकीयेषु सुन्दरम्।**
भाण्डं भविष्यदत्तस्य यानपात्रेषु ढौकितम्।। 78।।

उस बन्धुदत्त के आदेश से उन सभी साथी वणिक्पुत्रों ने भविष्यदत्त का धन एवं सभी सुन्दर भाण्डों को अपने यान-पोतों पर ढो-ढोकर चढ़ा लिया।

वे दोनों भी पोत पर बैठ जाते हैं

568 **ततस्तुष्टा भविष्यानुरूपा रूपवती सती।**
भूषाभिरभिभूष्य स्वंजलयानेऽध्यरुक्षत।। 79।।

इसके बाद पतिव्रता सुन्दरी **भविष्यानुरूपा** सन्तुष्ट होकर अलङ्कारों से अपने को आभूषित करके जलयान पर बैठ गई।

569 **तस्मिंन्नवसरे साध्व्या तया पूर्णेन्दुवक्त्रया।**
अवाचि बालसंत्रस्तमृगाक्ष्या जीवितेश्वरः।। 80।।

उसी समय पूर्णचन्द्रमुखी एवं भयभीत बाल-मृग के समान नेत्र वाली उस साध्वी भविष्यानुरूपा ने अपने जीवन-स्वामी-**भविष्यदत्त** से कहा —

भविष्यदत्त अकेला ही विस्मृत शय्या एवं नागमुद्रा लाने हेतु पैदल ही वन में चल देता है

570 **मम शय्या भुजङ्गाख्या नागमुद्रा च सुन्दरा।**
माधवीशाखिनो मूले तिष्ठतो द्वे अपि प्रिय।। 81।।

—"हे प्रिय! मेरी **भुजङ्गा** नामकी शय्या एवं परमसुन्दर **नागमुद्रा** ये दोनों **माधवी-वृक्ष** की जड़ के पास ही छूट गई हैं।"

571 **द्रुतं प्रयाहि ते लात्वा समागच्छ ममान्तिकम्।**
बिना ताभ्यामहं नाथ न प्राप्नोमि सुखासिकाम्।। 82।।

—"अतः हे नाथ! आप शीघ्र ही वहाँ जाएँ एवं उन दोनों वस्तुओं को लेकर मेरे पास आवें। क्योंकि उन दोनों के बिना मैं कभी भी सुखी नहीं हो सकती।"

572 **तन्निशम्य गतो यावत् कमलश्रीस्तनंधयः।**
प्रियाप्रेमप्रसक्तात्मा तदर्थं व्याकुलाशयः।। 83।।

भविष्यानुरूपा का चिन्ताग्रस्त कथन सुनकर प्रिया-प्रेमासक्त हृदय एवं व्याकुल चित्त कमलश्री का वह पुत्र (भविष्यदत्त) उन दोनों वस्तुओं को उठा लाने के लिए जब वन में चला गया—

573 **तावत् स बन्धुदत्तोऽपि दुष्टशीलःखलः कुधीः।**
वञ्चयित्वा गतो दूरे प्रेर्य प्रवहणावलीम्।। 84।।

तब तक दुष्ट स्वभाव वाला, दुरात्मा एवं कपटबुद्धि वह **बन्धुदत्त** उसे ठगकर एवं जलयानों को संचालित कर दूर चला गया।

उसके आने के पूर्व ही जल-पोत जा चुके थे

574 **अत्रान्तरे भविष्यानुरूपायाः पतिरायथौ।**
स शय्यां नागमुद्रां तां गृहीत्वा जलधेस्तटे।। 85।।

इसी बीच उस भविष्यानुरूपा का पति **भविष्यदत्त** शय्या एवं नागमुद्रा

को लेकर जब समुद्र के किनारे लौटकर आया और –

575 अपश्यंस्तत्र कान्तां स्वां जलयानानि तं खलम्।
सुतांश्च वणिजां बाढं स दध्यौ निजमानसे।। 86।।

जब उसने वहाँ अपनी प्रिया (भविष्यानुरूपा), उन जलयानों, उस दुष्ट बन्धुदत्त एवं वणिक्पुत्रों को नहीं देखा तब अपने मन में सोचा –

576 किमिदं न भवेत्स्थानं तदन्यत्राहमागतः।
इत्याशंक्य मुहुस्तस्मान्मोहितात्मा ससारसः।। 87।।

–"सम्भवतः यह वही स्थान नहीं है और भूल से मैं दूसरी ही जगह आ गया हूँ।" ऐसी आशंका करके मुग्ध-आत्मा वह **भविष्यदत्त** वहाँ से चल दिया।

577 कथञ्चित् चिह्नतः स्थानं पुनर्ज्ञात्वा विलोकयन्।
ददृशे जलयानानि तेन तानि पयोनिधौ।। 88।।

निशानों के द्वारा जिस किसी प्रकार पता लगाते हुए और पुनः पूर्व-स्थान को जानकर उस भविष्यदत्त ने समुद्र में जाते हुए उन जलयानों को देखा।

भविष्यदत्त शोकाकुल हो जाता है

578 तद्दर्शनेन तस्याङ्गे, प्रियाशोकः प्रदीपितः।
अजस्रंघृतधाराभिरभिषिक्तः शिखीव वै।। 89।।

जाते हुए उन जलपोतों के दर्शन से उस भविष्यदत्त के शरीर में प्रिया का शोक उसी प्रकार प्रज्ज्वलित हो उठा जिस प्रकार लगातार घी की धारा पड़ने से भींगी हुई अग्नि।

579 श्लोक नं० 90 प्रस्तुत पाण्डुलिपि में उपलब्ध नहीं है

प्रियतमा के विरह की वेदना

580 सशोकः चिन्तयामास स सुतः कमलश्रियः।
निधिं संदर्श्य मे धात्रा नेत्रद्वयमपाकृतम्।। 91।।

शोक से युक्त उस भविष्यदत्त ने अपने मन में कहा – "विधाता ने मुझे

अमूल्य निधि दिखाकर उन दोनों को मेरी आँखों से ओझल कर दिया है।"

581 प्रियाविरह संजातमहादुःख निपीडितः।
क्षणमेकं जगामाऽसौ मूर्च्छां प्राणावरोधिनीम्।। 92।।

प्रिया-विरह के कारण उत्पन्न महादुःख से परिपीड़ित उस **भविष्यदत्त** ने एक क्षण तक प्राणों को भी रोक देने वाली मूर्च्छा को प्राप्त किया।

582 शीतलस्य सुगन्धस्य मन्दस्य मरुतः पुनः।
संस्पर्शं प्राप्य पुण्येन स संजातः सचेतनः।। 93।।

पुनः शीतल, सुगन्ध एवं मन्द पवन का स्पर्श पाकर सौभाग्य से वह चेतनायुक्त हो गया।

583 त्रोटनं करशाखानामङ्गभङ्गं विधाय च।
पश्यन्नाशां जलार्द्राभ्यां नेत्राभ्यां पुनरुत्थितः।। 94।।

वह भविष्यदत्त अपनी अङ्गुलियों को चटकाते-मोड़ते हुए एवं अङ्गों को ऐंठते हुए, जलार्द्रनेत्रों से दिशाओं की ओर निहारते हुए उठा।

584 शाखामृगान् गजान् सिंहान् वराहान् शरभानहीन्।
पृच्छन् वार्त्तां स कान्तायाः बम्भ्रमीति स्म कानने।। 95।।

शाखामृगों, हाथियों, सिंहों, सुअरों, शरभों एवं सर्पों से अपनी प्रियतमा के समाचार पूछता हुआ वह भविष्यदत्त जङ्गल में इधर-उधर घूम-भटक रहा था।

585 प्रस्खलद्विह्वलीभूतः प्रियाशोकेन वेगिना।
वने व्रजंस्तले तस्थौ सोऽतिमुक्तकशाखिनः।। 96।।

प्रबल प्रियाशोक के कारण विह्वल होकर वह भविष्यदत्त इधर-उधर लुढ़कते-पुड़कते हुए वन में चक्कर काटते हुए उसी **अतिमुक्तक-वृक्ष** के नीचे जाकर वहीं ठहर गया।

वह शून्याकाश का आलिंगन करता है

586 स प्रविद्धोऽत्र तीक्ष्णाग्रैर्मकरध्वजसायकैः।
बाहुभ्यां शून्यमाकाशमालिलिङ्ग मुहुः स्निहा।। 97।।

अतिमुक्तक-वृक्ष के नीचे आते ही वह विरही भविष्यदत्त कामदेव के तीक्ष्ण बाणों से बिद्ध हो गया और प्रेमपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर बार-बार शून्य आकाश का बारम्बार आलिंगन करने लगा।

587 नवैकस्मिन् प्रदेशे स संस्मरन् मनसि प्रियाम्।
धृतिं बबन्ध दुःखार्त्तः प्रियाविरहकातरः।। 98।।

प्रिया-विरह के कारण व्याकुल एवं दुःखार्त्त वह बेचारा भविष्यदत्त मन में अपनी प्रिया का निरन्तर स्मरण करता हुआ किसी एक भी स्थल पर धैर्य धारण नहीं कर सका।

588 एह्येहि सुतनो देहि प्रिये मे परिरम्भनम्।
ममोपरि दयां कृत्वा वदतिस्मेत्यसौ मुहुः।। 99।।

—"हे प्रिये! हे सुन्दरि! आओ, आओ और मुझ पर दया करके मुझे आलिङ्गन दो।" इस तरह वह बार-बार चिल्ला रहा था।

589 स ततः प्रस्थितः स्थानात् तिलकादिपुरं प्रति।
पुरातनपथा जल्पन्ननिबद्धं वचो वने।। 100।।

वहाँ उस वन्य-स्थल से लगातार बड़बड़ाता हुआ वह भविष्यदत्त पुराने रास्ते से **तिलकपुर** की ओर चल दिया।

सर्पराज से अपनी प्रियतमा का पता पूछता है

590 व्रजन्मार्गे जगादाऽसौ लोलजिह्वं भुजङ्गमम्।
यदि दृष्टा त्वया हन्त मत्कान्ताऽऽचक्ष्व मे तदा।। 101।।

रास्ते में चलते हुए उस भविष्यदत्त ने चञ्चलजिह्वा वाले एक सर्प से पूछा —"हाय, यदि तुमने मेरी कान्ता को देखा है, तो मुझे अवश्य बताओ।"

591 **प्रियाविरहदुःखाग्निशिखाभिस्तप्तमानसः।
स कष्टेन निजं धाम जगाम मदनाहतः।। 102।।**

प्रिया-विरह रूप दुःखाग्नि की लपटों से झुलसा सन्तप्त चित्त, मदनाहत वह भविष्यदत्त बड़े ही कष्टों को झेलता हुआ तिलकपुर के अपनी प्रियतमा वाले भवन में पहुँचा।

तिलकपुर के शून्य-भवन को देखकर वह अतीत की स्मृतियों में डूब जाता है

592 **आसनं शयनं स्थानं केतनं प्रियया बिना।
सर्वाण्यपि स वस्तूनि प्रज्ज्वलन्तीव दृष्टवान्।। 103।।**

उस भवन में पहुँचकर उस भविष्यदत्त ने अपनी प्रियतमा के बिना वहाँ पर स्थित आसन, शयन, विश्रामकक्ष एवं भवन, आदि सभी को जलते हुए के समान देखा और स्मरण करने लगा कि—

593 **अत्र सम्मानिता चाऽत्र गाढमालिङ्गिता मया।
रमिताऽनुगता चात्र जगादेति स सस्मरः।। 104।।**

—"यही वह स्थान है जहाँ मैंने उससे प्यार किया था, वहाँ उसके साथ गाढालिंगन किया था, यहाँ उसके साथ रमण किया था और यहाँ से उसके साथ मैंने अनुगमन किया था।" इस प्रकार स्मरण करते हुए कामाहत वह भविष्यदत्त बार-बार बड़बड़ा रहा था।

594 **इति मदनहताङ्गो गौरसिद्धार्थवर्णो,
नयनविगलदश्रुः श्मश्रुविन्यस्तहस्तः।
कथमपि निजसौधादुत्सृतानेककेतो—
रगमदमलबुद्धिर्वेश्म जैनं स तस्मात्।। 105।।**

इस प्रकार मदनाहत, श्वेत सर्षप के समान देह वाला, नेत्रों से आँसू बहाता हुआ एवं ठुड्डी पर हाथ रखे हुए, स्वच्छ बुद्धिवाला वह बेचारा **भविष्यदत्त** किसी-किसी प्रकार चलकर ध्वजाओं से रहित अपने उस भवन से निकला और **जैनगृह (मन्दिर)** में प्रविष्ट हुआ।

595 तत्राऽसौ जिननाथ मृद्धृतजनं चन्द्रप्रभाश्रीधरम्,
सम्यकत्वादिगुणान्वितं त्रिजगतां पूज्यं प्रजाया हितम्।
भक्त्या नुत्तमलक्ष्मणस्तुतगुणं चित्ते त्रिधा संस्मरन्,
तस्थौ शोकसमुत्थतीव्रविरहत्यक्तो विशुद्धाशयः।। 106।।

चन्द्रप्रभा की श्री के धारक, सम्यक्त्वादि गुणों से युक्त, त्रिजगत्पुण्य, लोकोद्धारक, प्रजाजनों के लिए कल्याणकारी, सद्गुणी साहू **लक्ष्मण** (प्रस्तुत ग्रंथ के प्रेरक) के द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुत गुण वाले जिनेन्द्र प्रभु का, शोक से उत्पन्न विरहाग्नि की तीव्रता का त्यागकर, मन, वचन, काय से हृदय में उनके गुणों का स्मरण करता हुआ, विशुद्ध-हृदय वह भविष्यदत्त वहीं जिन-मन्दिर में बैठ गया।

....

इतिश्रीभविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर विरचिते साहूलक्ष्मण नागाङ्किते भविष्यदत्तशोक वर्णनं नाम पञ्चमो सर्गः।।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा निर्मित एवं साहूलक्ष्मणनाम से अङ्कित
श्री भविष्यदत्तचरित में भविष्यदत्त-शोकवर्णन करने वाला
यह पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

छठा सर्ग

596 ये मौनिनो मानमहीध्रवज्रा—
स्तपोदयासंयमशीलवन्तः
ते साधवः साधुजन प्रशस्याः,
पुनन्तु पुण्येरिह लक्ष्मणाख्यम्।। 1।।

जो मानरूपी पर्वतों के लिए वज्र के समान तथा तपस्या, दया, संयम और शीलवान् हैं और साधुजनों द्वारा प्रशंसित वे मौनी साधु परमेष्ठी अपने पुण्य-कार्यों के द्वारा श्रीमान् **लक्ष्मण** को पवित्र हृदय बनावें।

विरहिणी भविष्या० सोचती है

597 अथ सा चिन्तयामास तन्वी तरललोचना।
गलदश्रुर्भविष्यानुरूपा भर्तृर्वियोगतः।। 2।।

जल-पोतों के प्रस्थान कर देने के बाद वह तन्वी चञ्चलनेत्रा **भविष्यानुरूपा** पतिवियोग के कारण रोती हुई सोचने लगी—

598 पापिष्ठोऽयं दुराचारो वञ्चयित्वा पतिं मम।
आदाय मां विभूतिं च प्रस्थितः स्वपुरम्प्रति।। 3।।

—"अत्यन्त पापी एवं दुराचारी यह **बन्धुदत्त** मेरे पति-**भविष्यदत्त** को ठगकर, मुझे और मेरी सम्पत्ति को लेकर अपने नगर की ओर चल दिया है।"

599 एकाकी कानने नाथः संचरन् मद्वियोगतः।
दुःखितात्मा स्खलन्मार्गे शरण्यं कस्य यास्यति।। 4।।

—"मेरे स्वामी अकेले-अकेले ही जङ्गल में भटकते हुए एवं मेरे वियोग से दुःखी हृदय वे रास्ते में गिरते-पड़ते किसकी शरण में जाएँगे?"

600 गुणरत्नाम्बुधेस्तस्य मुग्धस्य भ्रमतो वने।
स्मरतो मन्मुखाम्भोजं न जाने किं भविष्यति?।। 5।।

—"गुण-समुद्र, भोले-भाले, जङ्गल में घूमते-भटकते हुए एवं मेरे मुखकमल का स्मरण करते हुए उनका, क्या होगा, मैं नहीं जानती।"

601 मन्ये तद्वदनं नूनं मद्वियोगहिमाहितम्।
मध्याह्न सूर्य तेजोभिः संकुचिष्यति पद्मवत्।। 6।।

—"मेरे वियोगरूपी हिम से उनका मुख अवश्य ही मध्याह्नकालिक सूर्य की तेज किरणों से प्रभावित कमल के समान संकुचित हो जाएगा।"

602 मदीय दुःखतोऽसह्य विरहाक्रान्तचेतसे।
तस्मै स्मर-समानाय कः प्रदास्यति धीरताम्।। 7।।

—"मेरे दुःख से असह्य विरहाक्रान्त हृदय वाले और कामदेव के समान उनको धैर्य कौन प्रदान करेगा?"

603 यथा स मद्वियोगेन वने तत्र मरिष्यति।
तथाऽहं तद्वियोगेन मरिष्याम्यत्र निश्चितम्।। 8।।

—"मेरे वियोग से जिस प्रकार वे उस वन में मरेंगे, मैं भी निश्चित रूप से उनके वियोग से यहाँ उसी तरह मर जाऊँगी।"

604 आसीत्पुरा मया काचिन्नूनं भर्तुर्वियोजिता।
तत्पापस्य फलञ्चैतत् समायातं ममाधुना।। 9।।

—"पूर्वजन्म में, मेरे द्वारा कोई नारी अवश्य ही पति से वियुक्त की गई होगी, इस समय उसी पाप का फल मुझे प्राप्त हुआ है।"

605 प्रतार्य प्राञ्जलात्मानं मत्पतिं सुकृतास्पदम्।
न जाने दुष्टशीलोऽयं दुर्गतिं कां समेष्यति।। 10।।

—"स्वच्छ हृदय एवं पुण्य-स्थान स्वरूप मेरे पति को ठगकर यह दुष्ट स्वभाववाला **बन्धुदत्त** पता नहीं किस दुर्गति को प्राप्त करेगा।"

606 मम भर्त्तुः खलश्चायं यन्नयाति क्षयं द्रुतम्।
तन्मन्ये निश्चितं पापशिलाभिः परिनिर्मितम्।। 11।।

—"मेरे पति के लिए खलनायक के समान यह बन्धुदत्त यदि शीघ्र ही विनष्ट नहीं होता, तो मैं समझती हूँ कि यह निश्चय ही पाप-पत्थरों से बनाया गया है।"

वह अपने को धिक्कारती है

607 अजानन्त्या मया तस्य वियोगं कुमनीषया।
स शय्यां नागमुद्रां तां प्राप्तुं स्वपतिरीरितः।। 12।।

—"दुर्बुद्धिमती मैंने भी अपने पति के वियोग के कारण को न समझा और उस **शय्या** और **नागमुद्रा** को लाने के लिए उन्हें (पति को) प्रेरित कर भेज दिया।"

608 चिन्तयित्वेति तन्वङ्ग्या तया संरुदितन्तथा।
बभूवुराकुलाः सर्वे पोतसंस्था यथाङ्गिनः।। 13।।

इस प्रकार सोचकर वह तन्वङ्गी इतनी अधिक रोने विलपने लगी कि पोत पर सवार सभी वणिक्पुत्र व्याकुल हो उठे।

609 एकाकिनीं परित्यज्य हा नाथ क्व गतोऽसि माम्।
प्रलपन्तीति सा चित्तं बिभेद वणिजां भृशम्।। 14।।

—"हा स्वामिन्! मुझे यहाँ अकेली छोड़कर आप कहाँ चले गए?" इस तरह प्रलाप करती हुई उसने उन सभी वणिक्पुत्रों के हृदयों को विदीर्ण कर दिया।

प्रलाप करती हुई वह अपने भाग्य को कोसती है

610 उरो जघान हस्ताभ्यां धुनोति स्म शिरो मुहुः।
श्वासं विमुच्च निःश्वस्य विधिनिन्दां चकार सा।। 15।।

उसने अपने दोनों हाथों से अपने वक्ष-स्थल पर प्रहार किया, बार-बार सिर को धुना, साँस लेना छोड़कर गहरी साँस ली एवं भाग्य-विधाता की निन्दा करने लगी।

611 न विवेद परं न स्वं न शुश्राव ददर्श नो।
न वस्त्रं गलितं दध्रे सा स्मरन्ती निजं पतिम्।। 16।।

अपने पति का स्मरण करती हुई वह पराए और अपनों को भी नहीं पहचान पाती थी। वह न तो सुनती थी और न देखती ही थी, यहाँ तक कि अपने खिसके वस्त्र को भी सम्हालने का उसे ज्ञान का रहा।

612 नेत्रोदबिन्दुसंसिक्तस्थूलोन्नतघनस्तना।
स्मरन्ती मानसे नाथगुणान् मूर्च्छां जगाम सा।। 17।।

नेत्रों के अश्रुबिन्दुओं से सिक्त विशालस्तनों वाली वह भविष्यानुरूपा मन में अपने स्वामी भविष्यदत्त के गुणों का स्मरण करती हुई मूर्च्छित हो गई।

613 क्षणमेकं भुविस्थित्वा विधृत्य मृतकाकृतिम्।
सम्प्राप्य वातपानीययोगं सा पुनरुत्थिता।। 18।।

मृतक की आकृति को धारण करके, एक क्षण तक वह पृथ्वी पर पड़ी रही और पवन एवं जल का संयोग पाकर फिर उठ बैठी।

614 ततो विमुच्य सर्वाणि भूषणानि विरागतः।
अमङ्गलभयाद् भर्त्तुर्वलयौ द्वौ तथा धृतो।। 19।।

फिर विरागता के कारण उसने अपने सभी आभूषणों को त्याग दिया किन्तु पति के अमङ्गल के भय से केवल दो वलयों को धारण किए रही।

615 यावन्न भर्तृसंयोगो निवृत्तिस्तावदस्तु मे।
सर्वभोगोपभोगानां प्रतिज्ञेति कृता तया।। 20।।

—"जब तक मुझे पति-संयोग नहीं होगा, तब तक सभी प्रकार के भोग-उपभोगों से मेरी निवृत्ति रहेगी," इस प्रकार उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की।

616 जीवन्त्या किं मया भर्तुर्वियोगेन गताशया।
दिनानि कतिचिल्लोके सम्प्रतीक्ष्ये तथाऽप्यहम्।। 21।।

पति वियोग से निराश रहकर मेरे जीने से क्या लाभ? तथापि इस संसार

में मैं कुछ दिनों तक अपने पति के आगमन की प्रतीक्षा और करूँगी।

617 **मां कथञ्चित् समायाति मत्पुण्यप्रेरितः पतिः।**
विलप्येव स्वचित्ते सा जोषमादाय संस्थिता।। 22।।

—"मेरे पुण्य-भाग्य से प्रेरित होकर जिस किसी प्रकार से मेरा पति शीघ्र ही यहाँ आ रहा है।" इस प्रकार अपने चित्त में विलाप करती हुई वह चुपचाप वहीं पड़ी रही।

बन्धुदत्त भविष्यानुरूपा के प्रति कामासक्त हो गया

618 **बन्धुदत्तोऽपि दुष्टात्मा निर्घृणो वृत्तवर्जितः।**
कुर्वन्मनोरथांश्चित्ते बहुधा सस्मरो ययौ।। 23।।

और इधर, दुष्टात्मा, निर्घृण्य एवं दुश्चरित्र वह **बन्धुदत्त** भी अपने हृदय में विविध प्रकार की मनोभिलाषाएँ पालता हुआ उस **भविष्यानुरूपा** के प्रति कामासक्त हो गया।

619 **ईहमानोऽपि तां धर्तुं सुन्दरीं निजपाणिना।**
न शशाक परं पापी वणिग्जनभयादसौ।। 24।।

वह पापी, उस सुन्दरी-भविष्यानुरूपा को अपने हाथों से पकड़ने की तीव्र इच्छा करता हुआ भी वणिग्जनों के भय से वैसा न कर सका।

कामान्ध बन्धुदत्त उसका स्पर्श करने का प्रयत्न करता है

620 **व्रीडां व्यक्त्वा स कामान्धस्तत्समीपं यथा-यथा।**
जगाम दुर्धरोद्दामकामाकुलितमानसः।। 25।।

दुर्दमनीय एवं प्रचण्ड काम-वासना से व्याकुल चित्त वह कामान्ध बन्धुदत्त लज्जा त्यागकर जैसे-जैसे उस नवयौवना भविष्यानुरूपा के समीप जाता था।

जलपोत समुद्र में धीरे-धीरे डूबने लगते हैं

621 तथा-तथा पयोराशेरधो जग्मुः समं जनैः।
पोत-संघाः स दुःशीलस्तथापि न निवर्त्तितः।। 26।।

वैसे ही वैसे वह पोत-समुदाय उसमें सवार सभी वणिक्पुत्रों के साथ धीरे-धीरे समुद्र के निचले भाग की ओर धँसने लगा, फिर भी वह बन्धुदत्त अपने दुःशील कर्म से निवृत्त नहीं हुआ।

622 तस्मिन्नवसरे वार्द्धौ बन्धुदत्तापराधतः।
मज्जतः पोतकान् दृष्ट्वा जग्मुराकुलतां नराः।। 27।।

उस कठिन समय में बन्धुदत्त के अपराध से जल-पोतों को समुद्र में डूबते हुए देखकर उसमें सवार सभी लोग व्याकुल हो उठे।

623 सर्वेषामप्यकाण्डेऽभून्मरणं दैवयोगतः।
हाहाकारं नराश्चक्रुरूर्ध्वीकृत भुजा इति।। 28।।

—"अब दुर्भाग्य से असमय में ही हम सभी का मरण हुआ।" इस प्रकार ऊपर की ओर अपनी-अपनी भुजाएँ उठाकर और हिला-हिलाकर सभी लोग हाहाकार करने लगे।

624 तत्क्षणादेव निर्भर्त्स्य विशिष्टैः पारदारिकः।
उत्सारितः करे धृत्वा हठात्तस्याः स पार्श्वतः।। 29।।

तत्क्षण ही कुछ विशिष्ट संवेदनशील लोगों ने उस पारदारिक बन्धुदत्त की निन्दा करते हुए हठपूर्वक उसका हाथ पकड़कर उसे उस भविष्यानुरूपा के बगल से उठाकर दूर हटा दिया।

भविष्यानुरूपा के शील का प्रभाव

625 ततः शिष्टैर्भविष्यानुरूपाख्या भणिता तकैः।
त्वन्नामोच्चारणात् पापं प्राणिनां सम्प्रणश्यति।। 30।।

और तभी उन संवेदनशील कुछ शिष्टलोगों ने उस भविष्यानुरूपा से (सस्नेह)

कहा — "तुम्हारे नाम के उच्चारण से ही प्राणियों के पाप नष्ट हो जाते हैं।"

भविष्यानुरूपा की प्रशंसा

626 क्रुधं मुक्त्वा क्षमां मातः कुरुष्व कुलभूषणे।
जीवितं नो निरातङ्के प्रयच्छ करुणाघरे।। 31।।

—"हे निरातङ्क, दयालु एवं वंशाभूषण माँ! क्रोध छोड़कर क्षमा करो एवं हमें जीवन प्रदान करो।"

627 यावत्प्रणम्य सर्वैस्तैः प्रश्रयेणोपशामिता।
भार्या भविष्यदत्तस्य चारित्रेण विभूषिता।। 32।।

चरित्रगुण से विभूषित भविष्यदत्त की पत्नी को उन सभी संवेदनशील शिष्टजनों ने विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके जब शान्त किया —

शील के प्रभाव से जल-पोत डूबने से बच गए

628 मज्जन्तः सागरे सारवस्तूत्करभृतां नराः।
तत्प्रभावात्ततः पोताः स्थिरत्वं समुपाययुः।। 33।।

— तभी समुद्र में डूबती हुई बहुमूल्य व्यापारिक वस्तुओं को ढोने वाले पोत-समूह एवं उसमें सवार सभी वणिक्पुत्र उस भविष्यानुरूपा के शील के प्रभाव से डूबने से बच गए।

629 तत्प्रत्ययं स्वयं दृष्ट्वा स्त्रियास्तस्याः विस्मयाः।
तद्रक्षणाय यत्नेन विशिष्टास्तस्थुरन्तरे।। 34।।

उस नारी (भविष्यानुरूपा) के शील के प्रभाव को देखकर आश्चर्यचकित सभी विशिष्टजन यत्नपूर्वक उसकी सुरक्षा के लिए जलपोत के भीतर ही रुक गए।

630 विशिष्टांस्तान्समालोक्य निविष्टानन्तरे मुहुः।
पश्यन्तं बन्धुदत्तञ्च सन्मुखं स्मरमर्दितम्।। 35।।

पुनः जल-पोत के मध्य-भाग में प्रविष्ट सभी विशिष्टजनों को एवं

कामपीड़ित बन्धुदत्त को सम्मुख देखकर

631 मूल पाण्डुलिपि में यह श्लोक (सं० 36) अनुपलब्ध है।

632 तस्य भावं परिज्ञाय विरुद्धं वणिजां पतेः।
सातङ्का कम्पमानासा चिन्तयामास सुन्दरी।। 37।।

उस वणिक्स्वामी (बन्धुदत्त) के अन्तर्भाव को अपने प्रतिकूल जानकर आतङ्क से काँपती हुई उस सुन्दरी (भविष्यानुरूपा) ने अपने मन में सोचा—

विरहाकुला वह प्राण-त्याग करने का विचार करती है

633 यः प्रेषितो मया तीरे समुद्रस्य पतिः प्रियः।
कुतस्तेन समं योगः ततो मुञ्चाम्यसूनहम्।। 38।।

—"जो मेरा प्रिय पति (भविष्यदत्त) समुद्र के तट पर मेरे द्वारा भेज दिया गया था, उससे अब कैसे भेंट होगी? अब उसकी सम्भावना नहीं। अतः अब मैं भी अपने प्राणों को त्यागती हूँ।"

उस विरहाकुला को स्वप्न में वनदेवी आश्वासन देती है

634 म्रियते नूनमत्रैषा परिज्ञायेति मानसे।
तस्याः स्वप्ने विभावर्य्यां वनदेव्या निवेदितम्।। 39।।

—"यहाँ, यह भविष्यानुरूपा अवश्य मर जाएगी।" ऐसा अपने मन में जानकर रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में वनदेवी ने उससे विनेदन किया—

635 मासमेकं प्रतीक्षस्व पुत्रि पद्मदलेक्षणे।
पतिरागत्य वेगेन सधनस्ते मिलिष्यति।। 40।।

—"हे कमलदलेक्षणे पुत्रि! तुम एक माह तक प्रतीक्षा करो। तुम्हारा पति धन के साथ तीव्रगति से आकर तुमसे अवश्य मिलेगा।"

636 शुभं स्वप्नान्तरं दृष्ट्वा गतनिद्रा स्वमानसे।
चिन्तयामास सा तन्वी भर्तुर्दर्शनलालसा।। 41।।

पति-दर्शन की लालसा वाली वह तन्वी भविष्यानुरूपा शुभ-स्वप्न को

देखकर जाग उठी और अपने मन में सोचने लगी —

637 यदि मासे गते भर्त्ता कथंचिन्नागमिष्यति।
तस्मिन्नेव दिने जाते मरिष्यामि तदा ध्रुवम्।। 42।।

— "एक माह बीतने पर यदि किसी कारण से मेरे पति नहीं आएँगे, तो उसी दिन मैं अवश्य मर जाऊँगी — "

638 यत्र प्रियतमः प्रीत्या समागत्य मिलिष्यति।
दीनां द्रक्ष्यति मां खिन्नां स मे धन्योऽस्तु वासरः।। 43।।

"जिस दिन मेरे पतिदेव आकर मुझसे प्रेमपूर्वक मिलेंगे एवं मुझ दीन-खिन्न को देखेंगे, वही सौभाग्यशाली दिन मेरे लिए धन्य होगा।"

639 कुर्व्वाणा गणनां तस्थौ दिनानां मलिनानना।
भार्या भविष्यदत्तस्य शीलाभरण भूषिता।। 44।।

शीलरूपी आभरण से विभूषित एवं म्लानमुख वाली भविष्यदत्त की वह पत्नी — भविष्यानुरूपा उसके आगमन के दिनों की बेसब्री से गणना करती रही।

शील-गुण की महिमा

640 विलोक्य वणिजां पुत्रास्तस्याः शीलमखण्डितम्।
वरनार्याः पदद्वन्द्वं नमन्ति स्म मुहुर्मुहुः।। 45।।

उस श्रेष्ठ नारी भविष्यानुरूपा के अखण्डित शील को देखकर सभी वणिक्पुत्र उसके चरणों में बार-बार प्रणाम करने लगे।

641 शीलेन नरनागेन्द्राः नरेन्द्राः देवमानवाः।
वशी भवन्ति सर्वेऽपि सर्वत्र भुवि सर्वदा।। 46।।

इस पृथ्वी-मण्डल पर निरन्तर ही सर्वत्र नरेन्द्र, नागेन्द्र, देवेन्द्र एवं मानव सभी शील-स्वभाव के वशीभूत हो जाते हैं।

642 **स्वर्गापवर्गसौख्यानि स्युः शीलेन तनुभृताम्।**
शीलतो न परं किञ्चित् प्राणिनां हितमुत्तमम्।। 47।।

शील-गुण के कारण ही प्राणियों को स्वर्ग एवं अपवर्ग (मोक्ष) के सुख प्राप्त होते हैं। प्राणियों (मनुष्यों) के लिए शीलगुण से भिन्न श्रेष्ठ हितकारी अन्य कुछ नहीं हैं।

643 **पतिव्रताभविष्यानुरूपाशीलबलात्तटम्।**
पोतकाः प्रापुरुतुङ्गाः क्रमेण लवणाम्बुधेः।। 48।।

पतिव्रता उस भविष्यानुरूपा के शील के प्रभाव से वणिक्पुत्रों के वे बड़े-बड़े जलयान धीरे-धीरे समुद्र के किनारे सुरक्षित आ पहुँचे।

समुद्र-तट आते ही सामान सहित सभी लोग जल-पोतों से उतर पड़े

644 **भाण्डमादाय निःशेषं पोतकेभ्यो वणिक्सुताः।**
द्रुतं तटमगुः सर्वे समुद्रस्य समुत्सुकाः।। 49।।

सभी वणिक्पुत्र जल-पोतों से सम्पूर्ण भाण्ड-सामग्रियों को लेकर उत्सुकतापूर्वक तेजी से समुद्री-तट पर आ गए।

645 **विलङ्घ्य नगर-ग्राम-पत्तनानि-वनानि च।**
कतिचिद्वासरैः प्रापु हस्तिनाख्यं पुरं वरम्।। 50।।

वे सभी वणिक्पुत्र नगरों, गाँवों, पत्तनों एवं वनों को लाँघकर कुछ ही दिनों में हस्तिनापुर नामक अपने श्रेष्ठ नगर में आ पहुँचे।

हस्तिनापुर पहुँचते ही नागरिकों ने स्वागत किया

646 **उदन्तं बन्धुदत्तस्य जनाद्विज्ञाय नागराः।**
समलङ्कृत्य भूषाभिस्तस्याभिमुखमाययुः।। 51।।

अग्रदूत द्वारा बन्धुदत्त आदि के आगमन का समाचार जानकर नगर के सभी लोग अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर स्वागत हेतु उसके सामने उपस्थित हो गए।

647 सोत्सवं विविशुः सर्वे स्वं स्वमोकस्तदङ्गिनः।
जनयन्तो मुदं चित्ते सिद्धयात्राप्रभावतः।। 52।।

सिद्ध (सफल) यात्रा के प्रभाव से सभी को प्रसन्नचित्त बनाने वाले उन बन्धुदत्त आदि वणिक्पुत्रों ने उत्सवपूर्वक अर्थात् नाचते-गाते हुए अपने-अपने भवनों में प्रवेश किया।

648 बान्धवा मोदमाजग्मुर्जगृहुः सज्जना गुणान्।
दुर्जनाः पुनरत्यन्तं बभूवुर्मलिनाननाः।। 53।।

उन सफल यात्रियों को देख-मिलकर उनके बान्धवजनों ने प्रसन्नता प्राप्त की। सज्जनों ने तो गुणों को ग्रहण किया। किन्तु, दर्जनजन अत्यन्त मलिन मुख हो गए।

माता कमलश्री पुत्र भविष्यदत्त का समाचार न पाकर दुखी हो गई

649 पृष्टा वार्ता स्वपुत्रस्य सर्वेऽपि कमलश्रिया।
न कोऽपि पुरतस्तस्या बभाषे भयतः स्फुटम्।। 54।।

कमलश्री ने उन सभी आगन्तुकों से अपने पुत्र **भविष्यदत्त** का समाचार पूछा, किन्तु दुष्टबुद्धि **बन्धुदत्त** के भय से उसके सामने किसी ने स्पष्ट कुछ भी नहीं कहा।

650 वार्त्तामलभमाना सा सुतस्यागत्य मन्दिरे।
वल्लीव छिन्नमूलाशु पपात पृथिवीतले।। 55।।

पुत्र का समाचार न पाकर वह माता **कमलश्री** अपने घर आई और कटी हुई लता के समान तुरन्त ही भूमि पर गिर पड़ी।

साध्वी सुव्रता आर्यिका की सान्त्वना

651 अत्रान्तरे समागत्य सा साध्व्या सुव्रताख्यया।
समुत्थाप्य करे धृत्वा प्रियवाक्यैः प्रबोधिता।। 56।।

इसी बीच में उन **साध्वी सुव्रता** ने उसके पास आकर हाथ पकड़कर

उसे उठाया एवं प्रिय वाक्यों से इस प्रकार समझाया

652 **नान्यथा भाषितं वाक्यं कदाचिदपि सन्मुनेः।**
मिलिष्यति सुतः पुत्रि! दशभिर्द्विगुणैः दिनैः।। 57।।

—"हे पुत्रि! सुनो, सन्मुनि द्वारा की गई भविष्यवाणी कभी भी अन्यथा नहीं होती। बीस दिनों के बाद तुम्हारा पुत्र **भविष्यदत्त** अवश्य ही आकर तुमसे मिलेगा।"

653 **इति ज्ञात्वा सुते मूढे किं वृथा परिरोदिषि।**
आर्यिका वाक्यतो मुक्ता कमलश्रीस्ततः शुचा।। 58।।

—"हे भोली-भाली पुत्रि! यह समझकर भी तुम व्यर्थ क्यों रोती हो?" **आर्यिका** के ढाढस भरे इस कथन से वह **कमलश्री** शोकमुक्त हो गई।

बन्धुदत्त कमलश्री को समाचार देता है

654 **तस्मिन्नवसरे तत्र बन्धुदत्तः समाययौ।**
धनेश्वरसुतापादौ प्रणम्य समुवाच सः।। 59।।

उसी समय **बन्धुदत्त** भी वहाँ आ पहुँचा और धनेश्वरपुत्री— कमलश्री के चरणों में प्रणाम कर वह उससे बोला

655 **नाहं त्वदीयपुत्रस्य मातः प्राणविनाशकः।**
यथाहमत्र तिष्ठामि स तथा तत्र तिष्ठति।। 60।।

—"हे माँ! मैं तुम्हारे पुत्र **भविष्यदत्त** को मारने वालों में से नहीं हूँ। जिस प्रकार मैं यहाँ हूँ, वह भी वहाँ विदेश में उसी प्रकार से रह रहा है।"

656 **असंख्यातं धनं प्राप्तं मयापि तत्प्रसादतः।**
कृतार्थतामगुः सर्वे वणिक्सुताः प्रियंवदाः।। 61।।

—"उस भविष्यदत्त की कृपा से मैंने भी असंख्य (अपरिमित) धन प्राप्त किया एवं सभी प्रियभाषी साथी वणिक्पुत्र भी उससे कृतार्थ हो गए।"

657 **समादाय धनं भूरि भूषणान्यंशुकानि च।**
कियद्भिर्वासरैः सोऽपि तवागत्य मिलिष्यति।। 62।।

"कुछ ही दिनों के बाद वह **भविष्यदत्त** भी पर्याप्त धन, आभूषण एवं वस्त्रादि लेकर तुमसे आकर मिलेगा।"

658 **इत्यलीकं यथावाक्यं मातुरग्रे निवेदितम्।**
कौटिल्याद्बन्धुदत्तेन पितुरग्रे तथैव च।। 63।।

बन्धुदत्त ने जिस प्रकार कुटिलतापूर्वक झूठे वचन माँ के सामने कहे, उसी प्रकार पिता के सामने भी कहे।

कपटी बन्धुदत्त अपने माता-पिता को गलत सूचनाएँ देता है

659 **ततस्तेन वरस्त्री सा विगताभरणा सती।**
प्रविश्य मन्दिरे स्वस्य पितुरग्रे प्रदर्शिता।। 64।।

इसके बाद उस **बन्धुदत्त** ने अलंकारविहीन, सती उस श्रेष्ठ स्त्री भविष्यानुरूपा को अपने घर में प्रवेश कराकर उसे पिता को दिखाया।

660 **भूषणैर्यद्यपि व्यक्ता तथापि स्वतनुश्रिया।**
सा गृहं द्योतयामास शंपेव गगनं त्विषा।। 65।।

यद्यपि वह **भविष्यानुरूपा** अलंकारों से रहित थी, फिर भी अपनी शरीरकान्ति से उसने उस घर को उसी प्रकार प्रकाशित कर दिया, जिस प्रकार कि बिजली अपनी प्रभा से आकाश को प्रकाशित कर देती है।

661 **एषा कुमारिका तात विशिष्टकुलसम्भवा।**
अस्याः पित्रा प्रदत्ता मे मां निरीक्ष्य मनोरमम्।। 66।।

"हे तात! यह विशिष्टवंशोत्पन्न कुमारी कन्या है। इसके पिता ने मुझे अत्यन्त सुन्दर देखकर इसे मुझे ही सौंप दिया।" और आगे कहा –

662 **विलङ्घ्य सागरं नीत्वा मन्दिरं त्वमिमां निजम्।**
कुरु पाणिग्रहं स्वस्य कुलाचारेण सोत्सवम्।। 67।।

– "तुम सागर लाँघकर इसे अपने घर ले जाओ और अपने कुलाचार के

अनुसार उत्सवपूर्वक उसके साथ अपना विवाह कर लो।"

663 इत्युदीर्य ततो मह्यं भूषणान्यम्बराणि च।
व्यतीर्णान्यप्रमाणानि खचितानि मणिव्रजैः।। 68।।

—"मुझे ऐसा कहकर उसके (भविष्यानुरूपा के) पिता ने मुझे मणियों से खचित असंख्य आभूषणों एवं वस्त्रों को प्रदान किया।"

664 तं निरीक्ष्य पिता नारीं दध्यौ विस्मितमानसः।
किमेषा खेचरी किं वा किन्नरी किं सुराङ्गना।। 69।।

उस कन्या भविष्यानुरूपा को देखकर विस्मित हृदय वाले (बन्धुदत्त के) पिता ने अपने मन में सोचा — "क्या यह कोई गन्धर्व-पुत्री है? या, किन्नरी? या कोई देवाङ्गना?"

665 स्त्रीरत्नमिदमानीतं कुतोऽनेन तनूभुवा।
मदीयेनेति संचिन्त्य स्वभार्यां निजगाद सः।। 70।।

—"मेरा यह पुत्र बन्धुदत्त इस स्त्रीरत्न को कहाँ से ले आया है?" यह सोचकर उसने अपनी द्वितीय पत्नी सुरूपा से कहा —

666 त्वदीय सूनुना कान्ते कुतश्चित्कान्तिसंयुता।
वरनारी समानीता स्वरूपजितखेचरी।। 71।।

—"हे कान्ते! तुम्हारा पुत्र बन्धुदत्त कहीं से, अपने रूप-सौन्दर्य से गन्धर्वनारी को भी जीतने वाली श्री शोभा से युक्त, श्रेष्ठ नारीरत्न को लाया है।"

667 धनं च गतसंख्यानं पश्य-पश्य तदुक्तितः।
तां निरीक्ष्य वधूं सापि जगौ पुत्रं सविस्मया।। 72।।

—"और भी देखो, उसका लाया हुआ अपरिमित धन भी देखो।" पति के द्वारा कहे जाने पर उसकी पत्नी (सुरूपा) भी उस वधू के सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो गई किन्तु उसी समय उसने अपने पुत्र से पूछा —

माता सुरूपा बन्धुदत्त से पूछती है

**668 कुवस्त्रा दुःखिता दीना दुर्मना मलिनानना।
कस्मादियं न वक्तीह नेक्षते कथयाङ्गज।। 73।।**

—"हे पुत्र! यह कुवस्त्रा (फटे-पुराने वस्त्र पहिने हुए) दुःखी, दीन, अन्यमनस्क, मलिनमुखी एवं दुःखी मन वाली कन्या न तो बोलती है और न किसी की ओर देखती ही है, ऐसा क्यों? इसका उत्तर दो।"

कपटी बन्धुदत्त उत्तर देता है

**669 मातुरुक्तिं समाकर्ण्य क्रूरात्मा कुटिलाशयः।
परसमाधनासक्तो बन्धुदत्तो जगौ ततः।। 74।।**

माता सुरूपा का प्रश्न सुनकर, क्रूरात्मा, कुटिल-हृदय एवं पराई स्त्री तथा धन में आसक्त उस बन्धुदत्त ने उत्तर में कहा —

**670 इयं भोगोपभोगानां न भुक्तिमविवाहिता।
विदधातीति संजल्प्यव्यलीकं पुरतः पितुः।। 75।।**

—"यह कन्या अविवाहित रहने के कारण भोगोपभोगों का भोग नहीं करती।" इस प्रकार पिता के सामने उस बन्धुदत्त ने मिथ्या भाषण किया।

पदाधिकारियों को रिश्वत देकर बन्धुदत्त उन्हें प्रसन्न कर लेता है

**671 ततः खलेन तेनाशु वितीर्य प्रचुरं धनम्।
नृपस्य मन्त्रिसामन्तप्रतीहारावशीकृताः।। 76।।**

इसके बाद उस दुष्ट ने (रिश्वत के रूप में —) प्रचुर धन वितरित कर राजा के मंत्री, सामन्त एवं प्रतीहारों को अपने वश में कर लिया।

**672 श्रेष्ठिनाऽथ स्वपुत्रस्य प्रमादेन स्वबन्धुना।
विवाहावसरं धृत्वा नृपस्य कथितं ततः।। 77।।**

तब सेठ (बन्धुदत्त के पिता) ने कपटी एवं अहंकारी अपने पुत्र बन्धुदत्त

के विवाह का समय निश्चित कर, राजा से निवेदन किया।

बन्धुदत्त और भविष्यानुरूपा के विवाह की तैयारियाँ

673 नृपादेशाज्जनाश्चक्रू रमणीयं पुरं श्रिया।
गृहे-गृहे जगुर्नार्यो मङ्गलानि स्मिताननाः।। 78।।

राजा का आदेश पाते ही लोगों ने नगर को सजाकर रमणीय बना दिया! घर-घर में प्रसन्नचित्त नारियाँ मङ्गल-गीत गाने लगीं।

674 समुद्धृता ध्वजव्रातास्तोरणानि गृहे-गृहे।
आपणस्य पुरस्यापि व्यधुः शोभांशुभां जनाः।। 79।।

घरों-घरों में ध्वजसमुदाय फहराए जाने लगे। प्रत्येक घर में माङ्गलिक तोरणों से द्वार सजाए जाने लगे तथा लोगों द्वारा नगर एवं बाजारों की मंगलकारी साज-सज्जा की जाने लगी।

675 सुस्वरा वन्दिनां वृन्दाः पेठुरुच्चैर्गृहे-गृहे।
मृदङ्गानेकसंख्यादिवाद्यानि च निदध्वनुः।। 80।।

सुन्दर मधुर-स्वर वाले वन्दि-वृन्द घरों-घरों में मङ्गल-पाठ करने लगे और मृदङ्ग आदि विविध वाद्य बजाए जाने लगे।

676 विवाहं बन्धुदत्तस्य निशम्य जनवक्त्रतः।
सुहृदः सज्जनाः सर्वे बभूवुः प्रमुदान्विताः।। 81।।

लोगों के मुख से बन्धुदत्त के विवाह का समाचार सुनकर सभी सज्जन मित्र हर्ष-विभोर हो उठे।

कमलश्री भविष्यदत्त का स्मरण करती है

677 स्मरन्ती देहजं दध्यौ कमलश्रीः स्वमानसे।
यदुक्तं मुनिनाथेन तद्दिनं ध्रुवमागतम्।। 82।।

और इधर, अपने पुत्र **भविष्यदत्त** का स्मरण करती हुई उस माता कमलश्री ने अपने मन में सोचा — "मुनिनाथ ने जो भविष्यवाणी की थी, वह

दिन अब आ ही गया है।"

678 जायते मुनिनाथस्य नावधिज्ञानमन्यथा।
विपुण्याहमतो योगः कथं स्यात्सहसूनुना।। 83।।

—"मुनिनाथ का अवधिज्ञान कभी भी अन्यथा नहीं होता। किन्तु, अपने उस पुत्र के साथ मुझ पुण्यहीना का संयोग होगा कैसे?"

यदि भविष्यदत्त नहीं आएगा तो मैं जलती अग्नि में प्रवेश करूँगी

679 कथञ्चिद्यदि मे पुत्रो नागमिष्यति दैवतः।
न जीवामि तदा नूनं ज्वलदग्नौ विशाम्यहम्।। 84।।

—"दैवयोग से यदि मेरा पुत्र किसी प्रकार नहीं आ पाएगा तो मैं जीवित नहीं रहूँगी। अवश्य ही मैं जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी।"

680 कमलश्रीर्यथाहानि प्रतिज्ञारूढमानसा।
नयति स्म भविष्यानुरूपाख्या सा तथैव च।। 85।।

अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ मन वाली वह **कमलश्री** जिस प्रकार अपने दिनों को व्यतीत कर रही थी. ठीक उसी प्रकार वह **भविष्यानुरूपा** भी अपने कठिन दिनों को बिता रही थी।

681 अथ द्वीपे प्रविस्तीर्णे मदनाख्ये मनोहरे।
तिलकाख्ये पुरे रम्ये रमणीयगृहान्विते।। 86।।

और इधर, विस्तृत एवं मनोहर **मदनद्वीप** के अन्तर्गत सुन्दर-सुन्दर भवनों वाले रमणीक **तिलकपुर** नामके नगर में—

मणिभद्र-यक्ष भविष्यदत्त की सहायता-हेतु आता है

682 मणिभद्राख्यया ख्यातः स्मृत्वादेशं शतक्रतोः।
ययौ भविष्यदत्तस्य समीपं धनदो द्रुतम्।। 87।।

—युग्मकम्

मणिभद्र नामका एक प्रसिद्ध यक्ष इन्द्र के आदेश का स्मरण कर शीघ्र

ही **भविष्यदत्त** के पास आया।

683 **तमपूर्वं समालोक्य तनूजः कमलश्रियः।**
जगाद विस्मयापन्नो दग्धाङ्गो विरहाग्निना।। 88।।

उस अपूर्व कोटि के यक्ष को सहसा ही आया हुआ देखकर विरहाग्नि से दग्ध कमलश्री के पुत्र उस भविष्यदत्त ने विस्मित होते हुए उससे पूछा —

684 **कस्त्वं कुतः समायातः किमर्थं कथयस्व मे।**
श्रुत्वा तद्वचनं यक्षः समुवाच विशुद्धधीः।। 89।।

— "तुम सर्वप्रथम मुझे यह बताओ कि तुम कौन हो, कहाँ से आए हो एवं यहाँ किसलिए आए हो?" स्वच्छमतिवाले उस यक्ष ने उसके प्रश्न के उत्तर में कहा —

मणिभद्र-यक्ष का परिचय

685 **अहं विद्याधरो वन्दे कृत्रिमाकृत्रिमान् जिनान्।**
गतः स्थितः सुवर्णाद्रौ वन्दितुं जिनपुङ्गवान्।। 90।।

मैं (मणिभद्रनामका एक) यक्ष-विद्याधर हूँ, और कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों के जिनेन्द्रों की वन्दना करता हूँ। जिनश्रेष्ठों की वन्दना करने के लिए मैं सुमेरुपर्वत पर रहता हूँ।

686 **इदानीं द्रष्टुमायातो भक्तया चन्द्रप्रभं जिनम्।**
अत्र तु त्वं मया दृष्टो निविष्टो जिनवेश्मनि।। 91।।

—"इस समय मैं चन्द्रप्रभ-जिनस्वामी के भक्तिपूर्वक दर्शन करने आया था तो मैंने देखा कि जिनमन्दिर में आकर तुम बैठे हो।"

687 **यत्किञ्चित् तु त्वया पृष्टं तदाशेषं मयाकथि।**
कस्त्वं कथं समायातो ममात्मानं निवेदय।। 92।।

—"हे बन्धु — जो कुछ तुमने पूछा है, वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया है। अब तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो और कहाँ से आए हो?"

688 **निशम्य तद्वचः कान्तावियोगाभिहताशयः।**
जगौ भविष्यदत्तोऽपि यत्पुरो वृत्तमात्मनः।। 93।।

उस यक्ष का प्रश्न सुनकर कान्तावियोग से पीड़ित हृदय वाले उस **भविष्यदत्त** ने भी उसे अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया।

भविष्यदत्त यक्ष को अपना परिचय देता है

689 **गृहं मुक्त्वा वणिज्यायै पोतमारुह्य सागरे।**
प्रस्थितः काञ्चनद्वीपे भ्रात्रा सह वणिक्सुतैः।। 94।।

— "मैं अपने (सौतेले) भाई एवं वणिक्पुत्रों के साथ घर छोड़कर, समुद्री जलयान पर चढ़कर (वैदेशिक) व्यापार के लिए **काञ्चन-द्वीप** की ओर चला था।"

690 **तेनाऽहं द्वेषतः व्यक्तः कानने व्रजताम्बुधौ।**
कमनीया मया कान्ता परिणीताऽत्र पुण्यतः।। 95।।

— "समुद्र पार करते समय मेरे भाई ने द्वेष के कारण मुझे बीच जंगल में अकेला ही छोड़ दिया। अपने पुण्य के प्रभाव से मैंने यहाँ एक सुन्दरी रमणी से विवाह किया है।"

691 **स भूयो व्याधुट्य भ्राता दुष्टशीलो विरुद्धधीः।**
अपहृत्य धनं भार्य्या मदीयं स्वपुरं ययौ।। 96।।

— "पुनः विदेश से लौटते समय मेरा दुष्टशील एवं विरुद्धमतिक मेरा वही भाई धन और मेरी पत्नी को धोखा देकर चुराकर अपने नगर को लौट गया है।"

692 **तस्या वियोगतो यन्न हृदयं शतधा व्रजेत्।**
मदीयं तदहं मन्ये नूनं लौहविनिर्मितम्।। 97।।

— "उस धन एवं पत्नी के वियोग से यदि मेरा हृदय फटकर सौ टुकड़ों में नहीं बिखरा, तो मैं मानता हूँ कि अवश्य ही मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है।"

693 बहुनाऽत्र किमुक्तेन मौनमेव वरं वरम्।
कथ्यते तत्पुरो दुःखं यो गृह्णाति दयापरः।। 98।।

—"और अधिक कहने से क्या लाभ? यहाँ अब चुप रहना ही अच्छा है। क्योंकि दुख तो उसके सामने कहना ही अच्छा होता है, जो दयालु उसे दूर कर दे।"

694 इतरस्य नरस्याग्रे कथ्यते यत्स्वचेष्टितम्।
स ददाति प्रहृष्टात्मा पटहं भुवने भृशम्।। 99।।

—"इससे भिन्न अर्थात् संवेदनहीन व्यक्ति के आगे यदि अपनी व्यथा-कथा को कहा जाए तो, वह तो प्रसन्न होकर संसार में उसका ढिंढोरा पीटने लगता है।"

भविष्यदत्त की व्यथा-कथा सुनकर यक्ष उसकी सहायता का वचन देता है

695 इत्युक्त्वा मौनमादाय स्थितो यावत्स शुद्धधीः।
निजगाद ततो यक्षो दयाधिष्ठितमानसः।। 100।।

यह कहकर शुद्धमतिवाला वह भविष्यदत्त जब चुप हो गया, तब उस दयालु यक्ष ने उससे कहा—

696 मा कुरुष्व सखे खेदं तनोः सन्तापकारणम्।
तावकीनं मनोदुःखं नाशयाम्यहमद्य वै।। 101।।

—"हे मित्र! अब तुम शरीर को पीड़ित करने वाली चिन्ता मत करो। तुम्हारे मनोदुःख को मैं निश्चित रूप से आज ही नष्ट कर देता हूँ।"

697 पितुर्मातुश्च संयोगं विदधामि त्वया सह।
क्षणादेवेति मत्वा त्वं विमुञ्चाकुलतां हृदः।। 102।।

—"क्षण-भर में ही मैं तुम्हारे पिता-माता के साथ तुम्हारा संयोग कराता हूँ। यह जानकर अब अपने हृदय से अपनी व्याकुलता को हटा दो।"

फिर भी वह निराश ही बना रहता है

698 आकर्ण्य तद्वचस्तस्य कमलश्रीसुतो जगौ।
को मां नयति दुःखार्त्तं विपुण्यं मातुरन्तिकम्।। 103।।

उस यक्ष के ढाढस-भरे वचनों को सुनकर कमलश्री-पुत्र भविष्यदत्त ने कहा — "दुःख से व्याकुल मुझ पापी को माँ के पास कौन ले जाएगा?"

699 यद्यपि स्यान्न योगो मे मात्रा सह तथाप्यहम्।
त्वया दयार्द्रचित्तेन प्रीणितो वचनामृतैः।। 104।।

— "भले ही मेरी माँ के साथ मेरा मिलन-संयोग न हो तथापि तुम जैसे दयालु के वचनामृतों से मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ।"

बार-बार समझाए जाने पर वह आश्वस्त होता है और सोचता है

700 त्वदीय वचसानेन मे समुच्छ्वसितं मनः।
शामितः सहसा कान्ता विरहाग्निः प्रदीपितः।। 105।।

— "तुम्हारे ढाढस-भरे वचनों से मेरा मन आश्वस्त हो गया है और कान्ताविरह की प्रज्ज्वलित अग्नि एकाएक शान्त हो गई है।"

701 उपकारं परं सन्तो जनानामिह कुर्वते।
सदा सर्वप्रकारेण कुमुदस्येन्दवो यथा।। 106।।

— "सचमुच ही इस संसार में सज्जन लोग सभी प्रकार से लोगों का वैसे ही अकारण उपकार करते हैं, जैसे कि चन्द्रमा कुमुदिनी का।"

702 अथवा गणगन्धर्वनिर्जरव्योमगामिनः।
यच्चिन्तयन्ति तत्सर्वं क्षणमात्रेण कुर्व्वते।। 107।।

— "और गणपति, गन्धर्व-गण, देवगण एवं आकाशगामी विद्याधरगण जो कुछ भी सोचते हैं वह सब वे क्षणमात्र में ही पूरा कर देते हैं।"

यक्ष उसे पुनः विश्वास दिलाता है

703 तदुक्तं वाक्यमाकर्ण्य कारुण्यकलिताशयः।
बभाषे माणिभद्राख्यः यक्षः कमलेक्षणः।। 108।।

शोकार्त उस **भविष्यदत्त** का कथन सुनकर दयालु हृदयवाले कमलनेत्र उस **माणिभद्र-यक्ष** ने अपने उत्तर में पुनः कहा —

704 किं वृथा भाषितैर्वाक्यैर्बहुभिः कर्णपेशलैः।
अद्य त्वदीयदुःखेभ्यो ददामि सलिलाञ्जलिम्।। 109।।

— "विविध प्रकार के कर्णकोमल-वाक्यों का कथन व्यर्थ है। हे बन्धु, मैं आज ही तुम्हारे दुःखों को जलाञ्जलि दे देता हूँ।"

705 इत्युदीर्य ततश्चक्रे तेन नानामणिव्रजैः।
विमानं विततज्योतिः प्रविध्वस्ततमश्चयम्।। 110।।

ऐसा कहकर उस मणिभद्र-यक्ष ने विभिन्न प्रकार की उज्ज्वल मणियों से एक ऐसा विमान बनाया, जिसके फैलते प्रकाश से सारा अन्धकार नष्ट हो गया।

समयानुसार भविष्यदत्त को विमान में बैठा दिया जाता है

706 कमलश्रीसुतं तत्र विनिवेश्य प्रयत्नतः।
विनम्र विस्फुरन्नागशय्यामुद्रासमन्वितम्।। 111।।

स्फुरायमान नागशय्या एवं नागमुद्रा के साथ कमलश्री के विनम्र पुत्र भविष्यदत्त को उस विमान पर प्रयत्नपूर्वक चढ़ाकर —

707 विधाय मोहनं तस्य कमलश्रीतनूभुवः।
यक्षेण मोहनी विद्या वशात्तत्प्रेरितं ततः।। 112।।

— उस यक्ष ने कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त को सम्मोहित कर **मोहिनी-विद्या** के प्रभाव से उस मणिमय विमान को संचालित कर दिया।

708 विलङ्घ्य गगनं वेगाद्विमानं स नदीपतिम्।
जगाम द्योतिताकाशं हस्तिनाख्यं पुरं त्विषा।। 113।।

आकाश-मार्ग से वेगपूर्वक समुद्र को लाँघता हुआ वह विमान उस **हस्तिनापुर नगर** में जा पहुँचा जो अपनी उज्ज्वलता से समस्त आकाश को प्रकाशित करता था।

यक्ष-विमान सुव्रता-आर्यिका के गृहाश्रम के प्रांगण में उतरता है

709 तद्विमानं विलोक्याशु दीप्यमानं नभोंगणे।
माता भविष्यदत्तस्य समूचे सुव्रतार्यया।। 114।।

आकाश में दैदीप्यमान उस विमान को आया हुआ देखकर सुव्रतार्या ने तत्काल ही भविष्यदत्त की माँ से कहा—

710 पश्य-पश्य सुते पुत्रस्त्वदीयोऽत्र समागतः।
यावत्तद्वाक्यमाकर्ण्य कमलश्रीः समुत्थिता।। 115।।

"हे पुत्रि! देखो, देखो, तुम्हारा पुत्र यहाँ पर आ गया है।" **सुव्रता-आर्या** के वचन को सुनकर जब तक वह कमलश्री खड़ी हुई ही थी कि—

711 तावद्गृहाङ्गणे मुक्त्वा विमानं विलसद्युतिम्।
जगाम निजधामाशु माणिभद्रो धनेश्वरः।। 116।।

तब तक वह **यक्ष-माणिभद्र** उसके (सुव्रता-आर्या के) घर (आश्रम) के आँगन में चमकते हुए उस विमान को छोड़कर शीघ्र ही अपने भवन की ओर प्रस्थान कर गया।

विमान को देखकर बेचारी कमलश्री डर जाती है

712 रत्नोत्करकरासारैः प्रज्वलन्तं सुरालयम्।
मन्दिरप्राङ्गणे वीक्ष्य कमलश्रीरगाद्भयम्।। 117।।

कमलश्री घर (आश्रम) के प्रांगण में मणि-रत्नों के प्रकाश से स्फुरायमान उस विमान को सहसा ही आया हुआ देखकर डर गई।

देव-विमान से उतरकर भविष्यदत्त
माता को प्रणाम करता है

713 विनिःसृत्य ततो देव-विमानाद् बिबुधोपमः।
मातुर्भविष्यदत्तोऽसौ प्रणनाम पदद्वयम्।। 118।।

देवोपम उस भविष्यदत्त ने उस देवविमान से निकलकर सर्वप्रथम अपनी माँ के चरण-कमलों में विनम्र प्रणाम किया।

चिरवियोगी पुत्र एवं माता का स्नेह-मिलन

714 तयाप्यालिङ्गितो दोर्भ्यां स्वपुत्रः प्रणतिं गतः।
विमुञ्चन्त्या भृशं स्तन्यं स्तनाभ्यां साश्रुचक्षुषा।। 119।।

अपने स्तनों से अविरल दुग्ध-प्रवाह करती हुई और नेत्रों को अश्रुपूर्ण करती हुई माँ कमलश्री ने भी प्रणामों को स्वीकार करते हुए अपने उस लाडले पुत्र को अपनी भुजाओं से आलिंगन में भर लिया।

माता की संरक्षिका सुव्रता-आर्या को भी
प्रणाम कर उसने अपनी माता को प्रबोधित किया

715 प्रणम्यार्यापदद्वन्द्वं सुतेन कमलश्रियः।
युक्तिमद्भिस्ततो वाक्यैर्निजमाता प्रबोधिता।। 120।।

पुनः कमलश्री-पुत्र उस भविष्यदत्त ने आर्या-सुव्रता के चरणद्वय को भी प्रणाम कर युक्तियुक्त वाक्यों से अपनी विरह-विदग्ध माँ को समझाया।

716 दध्रे तेन मनोज्ञानि रत्नानि निजमन्दिरे।
समं तेन विमानेन सूनुना कमलश्रियः।। 121।।

भविष्यदत्त ने उस देव-विमान के साथ-साथ उन मनोहर रत्नों को भी अपने भवन में सुरक्षित कर लिए।

717 वार्त्ता द्वादशवार्षिकी मतिमता तेन स्वमातुः पुरः,
स्वस्य श्रीजिननाथशासनविदाऽऽदिष्टा यथा निष्तुषा।
तस्याऽपि श्रुत लक्ष्मणाकृतिधरस्यानूककंजोष्णगोः,
पुण्यश्रीधरणोद्यतस्य पुरतो मात्रा तथा सूचिता।। 122।।

जिनेन्द्र-शासन के ज्ञाता उस बुद्धि-कुशल भविष्यदत्त ने पिछले बारह वर्षों में घटित अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं की चर्चा अपनी माता-कमलश्री के सम्मुख कर दी। श्रुत-शास्त्रों में वर्णित लक्षण अथवा लक्ष्मण की आकृति धारण करने वाले एवं अपने कुल-कमल के लिए तेजस्वी सूर्य के सदृश साहू लक्ष्मण (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक) तथा पुण्य-पुरुषार्थ से अर्जित लक्ष्मी के धारी महाकवि विबुध द्वारा लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार भविष्यदत्त की माता कमलश्री ने भी अपने पुत्र (भविष्यदत्त) के सम्मुख अपनी समस्त व्यथा-कथा कह सुनाई।

....

इति भविष्यदत्तचरिते विबुध-श्रीधरविरचिते साहूलक्ष्मण नामाङ्किते भविष्यदत्तागमनवर्णनो नाम—
षष्ठः सर्गः समाप्तः।

इस प्रकार बिबुधश्रीधर द्वारा विरचित—साहूलक्ष्मण के नाम से लिखित श्रीभविष्यदत्तचरित नामक महाकाव्य में भविष्यदत्त-गमन-वर्णन नामका यह छठा सर्ग समाप्त हुआ।

....

सातवाँ सर्ग

718 **यस्य स्ववंशामलपद्मकोश–**
प्रकाशनैकोष्णकरस्य नित्यम्।
गृह्णन्ति सन्तो निकरं गुणानां,
स नन्दताल्लक्ष्मण नामधेयः।। 1।।

अपने निर्दोष वंशरूपी श्वेतकमलकोश को विकसित करने के लिए सूर्य के समान तथा जिसके असंख्य गुण-समुदायों को सज्जन लोग निरन्तर धारण करते हैं, वे **लक्ष्मण** नामके प्रस्तुत ग्रन्थ के आश्रयदाता सदा सुखी रहें।

719 **अथान्य दिवसे माता श्रेष्ठिनो ज्येष्ठसूनुना।**
तानवं कुशलं पृष्ट्वा बन्धूनां सुहृदां सताम्।। 2।।

दूसरे दिन सेठ के ज्येष्ठ पुत्र **भविष्यदत्त** ने अपनी माता से बन्धुओं, मित्रों तथा सज्जनों की कुशल-क्षेम पूछकर—

भविष्यदत्त अपनी माँ से बन्धुदत्त का समाचार पूछता है

720 **भूयोऽपि तेन संप्रोक्ता माता कथय मे स्फुटम्।**
बन्धुदत्तः समायातो न वा कुटिल मानसः।। 3।।

—युग्मक

पुनः उसने अपनी माँ से पूछा—हे माँ मुझे स्पष्ट बताओ! कुटिलहृदय वाला वह **बन्धुदत्त** अभी यहाँ आया या नहीं? (युग्मक)

माता उसका समाचार देती है

721 **सुतवाक्यात्तयाऽवाचि बन्धुदत्तः समागतः।**
समुपार्ज्य स्वबाहुभ्यां धनं सह वरस्त्रिया।। 4।।

पुत्र के वचन सुनकर माँ ने कहा—"अपनी भुजाओं के द्वारा प्रभूत

धनार्जन तथा एक सुन्दर स्त्री को लेकर वह बन्धुदत्त यहाँ आ चुका है।

722 कुवस्त्रा मलिना मुक्तस्नानताम्बूललेपना।
दुर्मना मौनसंयुक्ता सा तिष्ठति गृहान्तरे।।5।।

"साथ में ले आई गई वह स्त्री मलिन-वस्त्र पहनी हुई, उदास, स्नान, ताम्बूल एवं विलेपन का त्याग कर, दुःखी तथा मौन साधकर निरन्तर दूसरे घर में ही बैठी रहती है।"

723 स निशम्य प्रियावार्त्तां दध्यौ मनसि धीरधीः।
नो मृता विरहाक्रान्ता सजीवाद्यापि वर्त्तते।।6।।

प्रिया का वृत्तान्त सुनकर उस धैर्यवान् भविष्यदत्त ने मन में विचार किया कि वह विरहिणी मरी नहीं है, अभी भी जीवित है।

724 यथा विवाहिता कान्ता हृता दुष्टेन बैरिणा।
तथा भविष्यदत्तेन मातुरग्रे निवेदितम्।। 7।।

जिस प्रकार से उस कान्ता (भविष्यानुरूपा) के साथ विवाह हुआ और दुष्ट बैरी बन्धुदत्त ने उसका अपहरण किया उसे भविष्यदत्त ने अपनी माँ को सब कुछ कह सुनाया।

भविष्यदत्त राजा से भेंट कर उसे अपनी व्यथा-कथा सुनाता है

725 रत्नपात्रं समादाय निवार्य निजमातरम्।
ययौ प्रच्छन्नरूपेण स द्वारं नृपवेश्मनः।। 8।।

अपनी माँ को बताए बिना ही एक रत्न-पात्र लेकर वह भविष्यदत्त गुप्त रूप से ही राजभवन के द्वार पर जा पहुँचा।

726 प्रतीहारोक्तितस्तेन ददृशे नरनायकः।
तं प्रणम्य पुरस्तस्य रत्नपात्रं निवेशितम्।। 9।।

द्वारपाल का आदेश पाते ही उस भविष्यदत्त ने राजा के दर्शन किए और उन्हें प्रणाम कर उनके सामने अपने उस रत्नपात्र को रख दिया।

727 प्रणमन्तं नरं वीक्ष्य नृपेण मुदमीयुषा।
तस्यासनं भ्रुवादिष्टं सोऽपि तस्मिन्न्यविक्ष्यत।। 10।।

प्रणाम करते हुए उस नवागन्तुक पुरुष को देखकर प्रसन्न चित्त राजा ने अपने नेत्रों से उसे योग्य आसन की ओर संकेत किया। वह भविष्यदत्त भी उस आसन पर जाकर बैठ गया।

राजा भविष्यदत्त से पूछता है

728 आदौ क्षेमादिकं पृष्ट्वा नरनाथो जगौ पुनः।
कुतः किमर्थमायातस्त्वं ममाग्रे निवेदय।। 11।।

सर्वप्रथम कुशल-समाचार पूछकर फिर राजा ने उससे पूछा — "तुम कहाँ से और किसलिए यहाँ आए हो? मुझे बताओ।"

भविष्यदत्त उत्तर देता है

729 नृपस्य वचनं श्रुत्वा बभाषे श्रेष्ठिनन्दनः।
ज्यायानेकाग्रभावेन श्रूयतां देव मद्वचः।। 12।।

राजा का प्रश्न सुनकर सेठ के ज्येष्ठ पुत्र (भविष्यदत्त) ने अपने उत्तर में कहा — "हे देव! एकाग्रचित्त होकर मेरा कथन सुनिए।"

730 अहं वणिक्सुतो गेहं विमुच्यात्र समागतः।
वणिज्यायै मयेदानीमनुरागादृतवमीक्षितः।। 13।।

"मैं वणिक्पुत्र घर छोड़कर व्यापार के लिए विदेश गया हुआ था और वहाँ से लौटकर अपने घर न जाकर सीधा यहाँ अपनी निष्कासित माँ के पास आ गया हूँ। इस समय प्रेमवश मैं आपके दर्शन हेतु यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।

भविष्यदत्त के प्रति राजा का स्नेह-प्रदर्शन

731 निशम्य तद्वचो राजा जगादारातिमर्दनः।
यत्त्वं प्रभाषसे भद्र तदेव विदधाम्यहम्।। 14।।

उसका कथन सुनकर शत्रु-संहारक उस राजा ने उससे कहा — "हे भद्र!

जैसा-जैसा तुम कहोगे, मैं वैसा-वैसा ही करूँगा।"

732 **त्वदर्थं यावदावासं कारयामि समुन्नतम्।**
तावत्त्वया मया सार्द्धं भोक्तव्यमिह नित्यशः।। 15।।

— "जब तक मैं तुम्हारे लिए यहाँ एक उत्तुंग आवासीय भवन बनवाता हूँ, तब तक तुम मेरे साथ यहीं पर निरन्तर सुख-भोग और भोजन करो।"

733 **निशम्य नृपतेर्वाक्यं श्रेष्ठिज्येष्ठाङ्गजो जगौ।**
आस्ते योग्यं ममस्थानं सुन्दरं विपुलं विभो।। 16।।

राजा का कथन सुनकर सेठ का वह ज्येष्ठ पुत्र (भविष्यदत्त) बोला — "हे विभो! मुझे रहने के लिए (पहले से ही) विशाल, सुन्दर एवं योग्य भवन बना हुआ है। अतः उसकी चिन्ता मत कीजिए।"

734 **पूर्व - पुण्य - वशाद्देव प्रसन्नश्चेत्प्रयच्छति।**
तदा द्वारं स्वसौधस्य सदा मुक्तं करोतु मे।। 17।।

—"मेरे पूर्वपुण्य के प्रभाव से यदि आप प्रसन्न हैं तो बस इतनी कृपा कीजिए कि मेरे लिए आपके प्रासाद का द्वार निरन्तर खुला रहे।"

735 **वैश्यवाक्यं समाकर्ण्य श्रुतिहृयादि सतां प्रियम्।**
प्रतीहारं समाहूय निजगाद नरेश्वरः।। 18।।

उस वैश्य-पुत्र भविष्यदत्त के कर्णसुखद एवं सज्जनप्रिय वचन सुनकर राजा ने अपने द्वारपाल को बुलाकर उसे आदेश दिया कि—

736 **अयं पुमान् दिवारात्रौ समेतु मम सन्निधिम्।**
न निषेधो विधातव्यस्त्वया वेत्रलताभृता।। 19।।

—"यह पुरुष (भविष्यदत्त) रात या दिन कभी भी किसी भी समय मेरे समीप आना चाहे तो आ जाए। बेंत्रदण्ड धारण करने वाले तुम लोग इसे कभी भी रोकना मत।"

737 इदमुक्त्वा नरेन्द्रेण तस्मै ताम्बूलमुत्तमम्।
प्रदत्तं सोऽपि तं नत्वा ययौ मातुर्निकेतनम्।। 20।।

यह कहकर राजा ने उस भविष्यदत्त को उत्तम ताम्बूल दिया। वह भविष्यदत्त भी राजा को प्रणाम कर मातृगृह चला गया।

738 भूयोऽप्यन्यदिने गत्वा दत्त्वाचोपायनं करे।
ज्येष्ठो धनपतेः पुत्रो नृपं नत्वा व्यजिज्ञपत्।। 21।।

दूसरे दिन उस भविष्यदत्त ने राजभवन में पुनः जाकर तथा राजा के हाथ में उपहार देकर और उसे प्रणाम कर कहा—

739 देवास्ते मम सम्बन्धः श्रेष्ठिनः सूनुना सह।
ददातु त्वत्पुरः प्रातः स च प्रत्युत्तरं मम।। 22।।

—"हे देव, सेठ के पुत्र **बन्धुदत्त** के साथ मेरे कलहकारी सम्बन्ध हैं। अतः मैं चाहता हूँ कि वह कल प्रातःकाल आपके सम्मुख उपस्थित होकर मेरे प्रश्नों का उत्तर दे।"

740 इत्युदीर्य स्वसम्बन्धं नृपस्याग्रे निजालयम्।
अगाद्भविष्यदत्तोऽसौ स्मरश्चित्ते स्वभामिनीम्।। 23।।

इस प्रकार बन्धुदत्त के साथ अपना कलहकारी सम्बन्ध राजा के सामने कहकर वह **भविष्यदत्त** हृदय में अपनी प्रिया **भविष्यानुरूपा** का स्मरण करता हुआ अपने घर को लौट आया।

राजा सेठ को बुलाकर पूछता है

741 संबोध्य श्रेष्ठिनं राज्ञा जगेऽन्यवणिजा सह।
सम्बन्धोऽस्ति पुराभूतः कश्चित्तव तनूभुवः।। 24।।

राजा ने तत्काल ही सेठ को बुलाकर उससे इस प्रकार पूछा— "किसी दूसरे वणिक्पुत्र के साथ तुम्हारे पुत्र का क्या कोई पुराना सम्बन्ध रहा है?"

742 प्रातरागत्य वेगेन सभामध्ये सतां पुरः।
प्रत्युत्तरं तनूजस्ते तस्य पुंसः प्रयच्छतु।। 25।।

—"तुम्हारा वह पुत्र प्रातःकाल ही यहाँ आकर राज्यसभा में सज्जनों के मध्य उस व्यक्ति के प्रश्नों का उत्तर प्रदान करे।"

विवश होकर सेठ राजा को वचन देता है

743 नरेन्द्रवचनं श्रुत्वा जगौ श्रेष्ठी सशङ्कितः।
प्रातरस्ति विवाहो मे गृहे देव तनूभुवः।। 26।।

राजा का वचन सुनकर सशंकित मन से वह सेठ बोला—"हे देव! कल प्रातःकाल ही मेरे घर में मेरे पुत्र का विवाह है।"

744 द्वितीये दिवसेऽतीते तृतीये समुपागते।
प्रत्युत्तरं जनाध्यक्ष तस्य दास्यामि निश्चितम्।। 27।।

—"हे राजन्! दो दिन बीतने पर और तीसरे दिन के प्रारंभ होते ही लोगों के मध्य में उसके प्रत्युत्तर अवश्य ही प्रस्तुत करा दूँगा।"

745 भूयोऽपि भूभृताऽभाणि श्रेष्ठी श्रेष्ठजनावृतः।
नैतन्मन्यामहे वाक्यं त्वदीयं वयमप्रियम्।। 28।।

फिर भी उस राजा ने श्रेष्ठजनों से घिरे हुए उस सेठ से कहा—"हम तुम्हारे इस अप्रिय वाक्य (कथन) को नहीं मानेंगे।"

746 नृपाकूतं परिज्ञाय श्रेष्ठिना मतिशालिना।
अभ्युपेतुं तदेवाशु यदेवोक्तं महीभृता।। 29।।

बुद्धिमान सेठ ने राजा के मन के भाव को समझकर तुरन्त वही स्वीकार कर लिया, जैसा कि राजा ने कहा और—

भयातुर सेठ अपने पुत्र बन्धुदत्त से पूछता है

747 गृहे गत्वा जगौ श्रेष्ठी बन्धुदत्तं भयातुरः।
सत्यं ब्रूहि वचः पुत्र ममाग्रे गुणिनां प्रिय।। 30।।

भय से व्याकुल उस सेठ ने घर जाकर अपने पुत्र बन्धुदत्त से कहा—"हे

गुणियों के प्रिय पुत्र! मेरे सम्मुख तुम सच-सच बोलना"—

748 आस्ते कश्चित् समायातो विवादी नगरान्तरे।
भूपालस्तस्य सापेक्षो विपक्षोऽभून्ममोपरि।। 31।।

—"कोई विवादी कलहकारी पुरुष नगर आ गया है। राजा उसके अनुकूल तथा मेरे प्रतिकूल हो गया है।"

749 कोऽपराधस्त्वयाकारि महांस्तस्य विवादिनः।
न जाने किं हृतं द्रव्यं किं कलत्रं मनोरमम्।। 32।।

—"मैं नहीं जानता कि तुमने उस विवादी कलहकारी पुरुष का कौन-सा महान् अपराध किया है? क्या तुमने उसके धन को तथा उसकी सुन्दरी स्त्री का अपहरण किया है?"

750 यद्यागो दुःसहं किञ्चित्त्वयाऽकारि प्रमादतः।
तदाधुनैव मे ब्रूहि तस्यापायं करोम्यहम्।। 33।।

—"यदि भूल से तुमने उसका कोई असह्य दुःसह अपराध-कर्म किया है, तो इसी समय मुझसे कह दो, जिससे कि मैं उससे बचने का उपाय कर दूँ।"

कुटिल-चित्त बन्धुदत्त उत्तर देता है

751 जनेतुर्जल्पितं श्रुत्वा विहस्य कुटिलाशयः।
बन्धुदत्तो जगौ तात न किं त्वं वेत्सि मन्मनः।। 34।।

पिता का कथन सुनकर कुटिलहृदय वह बन्धुदत्त हँसकर बोला—"हे पितः! क्या आप मेरे हृदय को नहीं जानते?"

752 वाताधिकः पुमान् कश्चित् किमत्र समुपागतः।
कलङ्कं निष्कलङ्कस्य ददाति कथमन्यथा।। 35।।

—"क्या यहाँ कोई वात-व्याधि से पीड़ित पुरुष आ गया है? नहीं तो वह मुझ जैसे निष्कलंक को कलंकित कैसे करता?"

753 ज्ञातम्मया मनोमध्ये तात दुष्टो मदान्ध-धीः।
अमुना कर्मणा नूनं समूढो मर्तुमिच्छति।। 36।।

—"हे तात! अपने मन में मैं ठीक से समझ रहा हूँ। मदान्धबुद्धिवाला वह दुष्ट एवं मूर्ख व्यक्ति अवश्य ही अपने इस कार्य के द्वारा मरना चाहता है।"

754 नरेन्द्रस्य सभामध्ये तावदेव स भाषते।
गर्जन्न यावदारक्तलोचनं मां निरीक्षते।। 37।।

—"राजा की सभा में वह तभी तक गरजता हुआ बोल रहा है, जब तक कि वह लाल-लाल आँखों वाले मुझको नहीं देख लेता।"

755 मामके विषये तात भयं किमपि मा कुरु।
मदीय वचनात्तिष्ठ निर्भयं त्वं निजालये।। 38।।

—"हे तात! मेरे विषय में आप कुछ भी भय न करें। आप मेरे कहने से निर्भय होकर घर पर ही ठहरें। किसी भी विषम परिस्थिति से मैं स्वयं निपट लूँगा।"

सुरूपा साध्वी-कमलश्री को अपने घर निमन्त्रित करती है

756 तनूजवाक्यतो यावद् धीर-धीर भवत्पिता।
तावदाकारिता साध्वी कमलश्रीः सुरूपया।। 39।।

पुत्र बन्धुदत्त के आश्वासन-भरे कथन से धैर्यविहीन पिता जब सधैर्य हुआ, तभी बन्धुदत्त की माता-सुरूपा ने साध्वी **कमलश्री** (भविष्यदत्त की माता) को बुलवाया।

बन्धुदत्त की वैवाहिक तैयारी प्रारम्भ

757 तया जगे सुतः स्वस्य यां नारीं परिणेष्यति।
बन्धुदत्तो दिनं तस्या अद्य तैलाधिरोपणम्।। 40।।

कमलश्री ने अपने पुत्र (भविष्यदत्त) से कहा—"बन्धुदत्त जिस नारी से विवाह कर रहा है, आज उसका तैलाधिरोहण-संस्कार है।"

कमलश्री किंकर्तव्यविमूढ हो जाती है

758 तदर्थं बन्धुदत्तस्य मात्राऽहं परिशब्दिता।
किं व्रजामि न वा पुत्र न जाने किं करोम्यहम्।। 41।।

—"उसी संस्कार में भाग लेने के लिए **बन्धुदत्त** की माँ ने मुझे बुलाया है। हे पुत्र! क्या वहाँ जाऊँ या नहीं, या क्या करूँ, मुझे समझ में नहीं आ रहा।"

भविष्यदत्त उसे जाने की प्रेरणा देता है

759 तद्वृत्तान्तं परिज्ञाय निःशेषं निजचेतसा।
ऊचे भविष्यदत्तेन स्वयं माता प्रियंवदा।। 42।।

अपने मन में बन्धुदत्त के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर उस भविष्यदत्त ने अपनी मधुरभाषिणी माँ से स्वयं कहा—

760 याहि मातः प्रसूनानि तत्प्रियाण्यंशुकानि च।
आदाय भूषणं नागमुद्राख्यमिदमुत्तमम्।। 43।।

—"हे माँ! उस वधु के लिए पुष्प, उसके प्रिय वस्त्र, आभूषण, नाग-शय्या एवं यह उत्तम **नाग-मुद्रा (बखौरा)** लेकर उसके यहाँ अवश्य जाओ।"

761 अवश्यमेव सा साध्वी मद्वियोगनिपीडिता।
तर्पनीया त्वया मातः मत्कान्ता प्रिययागिरा।। 44।।

—"हे माँ! तुम अपनी मधुर-वाणी से, मेरे वियोग से पीड़िता साध्वी, उस मेरी कान्ता को अवश्य ही ढाढस बँधाना।"

कमलश्री बन्धुदत्त के यहाँ जाती है

762 साप्यात्मानमलङ्कृत्य निर्गता सुतवाक्यतः।
अपूर्वरूपसम्पत्ति संयुता श्रीरिवापरा।। 45।।

पुत्र भविष्यदत्त की सलाह मानकर वह कमलश्री भी स्वयं को आभूषणों से अलंकृत कर अपूर्व रूप सम्पत्ति से युक्त होकर इस प्रकार निकली मानों

दूसरी लक्ष्मी ही निकल पड़ी हो।

धनपति सेठ कमलश्री को देखकर सोचता है

763 विशन्ती श्रेष्ठिना गेहे दूरादेव निरीक्षिता।
चिन्तितं च किमायाता गौरीयमथवा रतिः।। 46।।

वह **कमलश्री** जब **बन्धुदत्त** के घर में प्रवेश करती है, तब सेठ उसे दूर से ही देखकर विस्मित होकर सोचने लगता है कि — "यह पार्वती है अथवा रतिदेवी?"

764 वितर्कं कुर्वतानेन विज्ञाता मनसा स्वयम्।
कमलश्रीरियं नूनं नान्यानन्दप्रदायिनी।। 47।।

अपने मन में तर्क-वितर्क करता हुआ वह धनपति सेठ स्वयं समझ गया कि अवश्य ही यह कमलश्री ही है। मुझे इतनी आनन्दप्रदायिनी यह अन्य नहीं हो सकती।

765 तद्रूपासक्तचित्तोऽसौ श्रेष्ठी धनपतिः शरैः।
विद्ध-स्मरेण पत्रं वा चकम्पे पवनाहतम्।। 48।।

उस कमलश्री के रूप-सौन्दर्य से आसक्त-चित्त वह धनपति सेठ काम-वाणों से बिद्ध होकर पवनाहत पत्ते के समान काँपने लगा।

766 दध्यौ स विस्मयापन्नः कामाकुलितमानसः।
किमस्यास्तनुजो द्वीपाद् भूत्या सह समागतः।। 49।।

— विस्मित एवं काम से व्याकुल चित्त उस **धनपति** सेठ ने मन में सोचा कि — "क्या इसका पुत्र **भविष्यदत्त** द्वीप से विभूतियों के साथ वापस लौट आया है?"

767 अन्यथा कथमत्यन्तं बभूवैषा सरागिणी।
अपूर्वाभरणाधारा सुरूपा नयनप्रिया।। 50।।

—"नहीं तो यह अपूर्व-आभरणों से सजी-धजी, सुन्दरी, नेत्रों को प्रिय

लगने वाली एवं अत्यन्त राग-युक्त कैसे होती?"

768 यद्यपि प्रियपुत्रम्यां वर्जितेयं ममप्रिया।
तथापि रूपसम्पत्तया रतिं जयति भूतले।। 51।।

—"यद्यपि यह मेरी प्रिया कमलश्री अभी तक मुझ जैसे पति और पुत्र भविष्यदत्त से बिछुड़ी हुई ही है, फिर भी, अपनी रूप-सम्पत्ति से यह इस जगत् में रति को भी जीत रही है।"

769 बहून्यहानि संत्यक्ता मयेयं गुणधारिणी।
स्थिता मातृगृहे धन्या पतिपुत्र वियोजिता।। 52।।

—"बहुत दिनों से यह गुणधारिणी मेरे द्वारा त्यक्त है। पति और पुत्र से वियुक्त रहकर अपने नैहर में माता के साथ रहती हुई यह सचमुच ही धन्य है।"

770 ययुदूर्वादशवर्षाणि पूर्वकर्मप्रभावतः।
अस्या इष्टवियोगार्त्तपीडितायाः कथञ्चन्।। 53।।

—"पूर्व-जन्म के कर्मों के प्रभाव के कारण इष्टवियोग से दुःखी इस **कमलश्री** के जिस किसी प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।"

771 निमित्तेन बिना साध्वी मया दुष्टात्मना सती।
निःसारिता गृहात्तन्वी करे धृत्वा हठादियम्।। 54।।

—"मुझ दुष्टात्मा के द्वारा बिना किसी कारण के ही यह सती साध्वी, तन्वी बरबस हाथ पकड़कर घर से निकाल दी गई थी।"

धनपति सेठ पश्चात्ताप करता है

772 अस्या दोषप्रहीणायाः सुशीलायाः स्वपाणिना।
इदानीं स्नेहभावेन सन्मानं विदधाम्यहम्।। 55।।

—"इस समय मैं इस शीलवती एवं निर्दोषा का स्नेहसिक्त-भाव से स्वयं अपने हाथों द्वारा स्वागत-सम्मान करूँगा।"

कमलश्री एवं नवागत-वधु का स्नेह-मिलन

773 एवं चिन्तयतस्तस्य श्रेष्ठिनो मनसा मुहुः।
कमलश्रीपदद्वन्द्वं सुतपत्न्या नतं ततः।। 56।।

वह धनपति सेठ जब कमलश्री के विषय में बारम्बार विचार कर रहा था, तभी उस (सेठ) की **पुत्रवधु (भविष्यानुरूपा)** ने अपनी सास **कमलश्री** के चरण-कमलों में प्रणाम किया।

दोनों का वार्तालाप

774 अदत्ताशीस्तया तस्यै पुत्रपत्न्यै प्रमोदतः।
पृष्टा वार्त्ता भविष्यानुरूपया स्वपतेस्ततः।। 57।।

उस सासू माता कमलश्री ने प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया। फिर भविष्यानुरूपा ने भी उससे अपने पति भविष्यदत्त की कुशल-क्षेम पूछी और पूछा –

775 किमागतो मदीयं न पतिरत्र त्वदङ्गजः।
श्वश्र्वाऽप्युक्तं समायातः कुशलेन पतिस्तव।। 58।।

–"माँ, क्या अभी आपके पुत्र और मेरे पतिदेव (भविष्यदत्त) नहीं आए हैं? सासू माँ ने भी कहा –तुम्हारे पतिदेव कुशलतापूर्वक विदेश से लौट आए हैं।"

सासू-माँ का आश्वासन

776 दिनमेकं प्रतीक्ष्यस्व स्थिरीकृत्य निजं मनः।
त्वदीयमीहितं सर्वं शुभं सम्पत्स्यते स्फुटम्।। 59।।

सासू माँ ने उसे उत्तर में पुनः कहा –"हे बेटी, अपने मन को स्थिर कर एक दिन की और प्रतीक्षा करो। तुम्हारा सभी अभीष्ट शुभ स्फुट (स्पष्ट) हो जाएगा।"

777 **इत्युदीर्य स्वहस्तेन नागमुद्रार्पिता तया।**
प्रसूनैः सह तोषेण वधूहस्तेऽम्बुजप्रभे।। 60।।

ऐसा कहकर सासू माँ कमलश्री ने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से अपनी कमलनयनी वधू के हाथों में फूलों के साथ-साथ **नागमुद्रा** को समर्पित किया।

778 **आपृच्छ्य सा ययौ यावत् कमलश्रीःस्वमन्दिरे।**
तावदन्योन्यमालोक्य जजल्पुः सस्मयं जनाः।। 61।।

जब धनपति सेठ के यहाँ सभी जनों से मिल-पूछकर वह कमलश्री अपने आवास पर लौट गई, तभी एक-दूसरे को देखकर लोगों ने विस्मित होते हुए परस्पर में कहा —

779 **अस्या दर्शनमात्रेण दुःखक्षीणापि वेगतः।**
ययौ विकासतामेषा पद्मिनीव सरोवरे।। 62।।

—"यह नवागत वधू भविष्यानुरूपा दुःख से खिन्न होकर भी उस कमलश्री के दर्शन-मात्र से ही तालाब में खिले कमल की तरह प्रफुल्लित हो गई।"

भविष्यदत्त राजा से पुनः भेंट करता है

780 **अत्रान्तरे प्रियावार्त्तामाकर्ण्य जननीमुखात्।**
दृष्टो भविष्यदत्तेन नृपोऽन्यदिवसे पुनः।। 63।।

इसके बाद अपनी माँ के मुख से प्रिया **भविष्यानुरूपा** का समाचार सुनकर उस **भविष्यदत्त** ने दूसरे दिन पुनः राजा का दर्शन किया।

781 **यावद्भविष्यदत्तोऽसौ नृपादेशाद् वरासने।**
निविष्टस्तावदाहूतः श्रेष्ठी नृपतिकिंकरैः।। 64।।

वह भविष्यदत्त राजा की आज्ञा से जब श्रेष्ठ आसन पर बैठ ही रहा था कि तभी राजा के सेवकों ने उस **धनपति सेठ** को राजसभा में तत्काल उपस्थित होने का आदेश भिजवाया —

782 पुत्रमादाय वेगेन समागच्छ नृपालये।
देहि प्रत्युत्तरं तस्य विपक्षस्य नृपस्य च।। 65।।

—"अपने पुत्र बन्धुदत्त को लेकर तेजी से राजभवन आओ और उस विपक्षी वणिक्पुत्र एवं राजा को प्रत्युत्तर दो।"

पिता-पुत्र वार्तालाप

783 तन्निशम्य वचस्तस्य श्रेष्ठिनाऽवाचि देहजः।
गर्व्वं त्यक्त्वा ममाद्यापि ब्रूहि पुत्र स्वचेष्टितम्।। 66।।

राजा के आदेश को सुनकर उस सेठ धनपति ने अपने पुत्र बन्धुदत्त से कहा —"हे पुत्र! आज भी तुम अपना अहंकार छोड़कर मुझे अपनी सच्ची-सच्ची करतूतें बता दो।"

784 भयभीतं जनेतारं वदन्तं वीक्ष्य दुष्टधीः।
बन्धुदत्तो जगौ तात श्रूयतां बहुनात्र किम्।। 67।।

भयभीत होकर बोलते हुए पिता को देखकर कुत्सितबुद्धिवाला बन्धुदत्त बोला —"हे पिता! सुनिए। अधिक क्या (कहूँ) यहाँ अधिक बोलने से कोई लाभ नहीं।"

785 स्वप्नेऽपि कुत्सितं कर्म्म जातुचिन्न करोम्यहम्।
सुहृद्बन्धुसतां निन्द्यं प्रत्यक्षेण तु का कथा।। 68।।

—"मैं कभी स्वप्न में भी मित्र, बन्धु एवं सज्जनों द्वारा निन्दनीय कुत्सित-कर्म नहीं करता। फिर प्रत्यक्ष रूप में करने का तो प्रश्न ही कहाँ?"

786 अथवात्र किमुक्तेन तत्रैव नृपतेः पुरः।
निर्दूर्धाटयामि तं नूनं वादिनं तव पश्यतः।। 69।।

—"अथवा, यहाँ घर में कहने से क्या लाभ? वहीं राजा के सामने, आपको देखते-देखते अवश्य ही मैं उस प्रतिवादी को चलकर फटकारता हूँ।"

धनपति सेठ बन्धुदत्त के साथ राज्यसभा में पहुँचता है

787 भयमुक्तं सुतं दृष्ट्वा श्रेष्ठी तुष्टमना ययौ।
समं स्वकीय पुत्रेण सज्जनैश्च नृपालये।। 70।।

पुत्र बन्धुदत्त को भयमुक्त देखकर प्रसन्नचित्त सेठ धनपति अपने पुत्र (बन्धुदत्त) एवं अन्य सज्जनों के साथ राजभवन में पहुँचा।

788 निरीक्ष्य तत्र राजानं हरिविष्टरसंस्थितम्।
प्रणम्य ससुतः श्रेष्ठी निविष्टो यावदासने।। 71।।

वहाँ राजसिंहासन पर बैठे हुए राजा को देखकर उस सेठ ने अपने पुत्र के साथ उसे प्रणाम कर जब वे दोनों राजा द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठे—

बन्धुदत्त गरजता है

789 तावन्निःशङ्कतामेत्य सुरूपातनुजो जगौ।
गर्जन् गज इवात्यन्तमदृष्टहरिणाधिपः।। 72।।

तभी सुरूपापुत्र (बन्धुदत्त) निःशङ्क होकर, सिंह (भविष्यदत्त) को न देखते हुए हाथी की तरह गरजता हुआ बोला—

790 यः कश्चिदस्ति दुष्टात्मा प्रतिवादी विरुद्धधीः।
स वदत्वत्र निर्लज्जो मायात्मा सदसि प्रभो।। 73।।

—"हे राजन्! इस राज-सभा में जो कोई दुष्टात्मा, प्रतिकूल-बुद्धि, निर्लज्ज एवं प्रतिवादी है, वह मायावी मुझसे प्रश्न करे, मैं उसका उत्तर दूँगा—"

791 अलीकवचनैर्येन नरनाथः प्रतारितः।
अद्य प्रत्युत्तरं तस्य दत्त्वा निर्द्धाटयामि तम्।। 74।।

—"जिसने असत्य बातें कहकर राजा को भ्रमित किया है, आज मैं उसका प्रत्युत्तर देकर उसे अभी फटकारता हूँ।"

किन्तु भविष्यदत्त को देखते ही वह भयाकुल हो उठता है

792 **तस्य दुष्टस्य वाक्यानि श्रुत्वा कोपात् समुत्थितः।**
द्रुतं भविष्यदत्तोऽपि मृगाधीश इवोद्धतः।। 75।।

उस दुष्ट (बन्धुदत्त) का प्रलाप सुनकर क्रोध से तमतमाता हुआ वह भविष्यदत्त भी उद्धत सिंह की तरह तुरन्त उसके सम्मुख खड़ा हो गया।

बन्धुदत्त बगलें झाँकने लगता है

793 **तं निरीक्ष्य भयग्रस्तो न शशाक प्रजल्पितुम्।**
पितृ पृष्टिं समासृत्य सन्तस्थौ पिशुनः खलः।। 76।।

सिंहवृत्ति वाले उस भविष्यदत्त का क्रोध देखकर वह कुटिल एवं दुष्ट बन्धुदत्त भयभीत होकर वहाँ कुछ भी न बोल सका और वह पिता के पीछे जाकर छिप गया।

794 **अत्रान्तरे नृपेणोक्तो बन्धुदत्तो बुधैरपि।**
देहि प्रत्युत्तरं किञ्चिद्विविच्य प्रतिवादिनः।। 77।।

इसी बीच राजा एवं वहाँ उपस्थित बुधजनों ने भी उस बन्धुदत्त से कहा — "कुछ सोच-समझकर इस प्रतिवादी के प्रश्न का उत्तर दो।"

795 **निशम्य नृपतेर्वाक्यं ददर्श सदिशः परम्।**
न तु तस्य-मुखाद्वाक्यं निर्जगाम कुवादिनः।। 78।।

राजा का आदेश सुनकर वह (बन्धुदत्त) दूसरी ओर झाँकने लगा। उस कुवादी के मुख से एक भी बोल न निकला।

796 **विचिन्त्य मनसा सर्वैरेष दुष्टोऽमुना जितः।**
ततो भविष्यदत्ताख्यो भणितो भयवर्जितः।। 79।।

"यह दुष्ट **बन्धुदत्त** इस **भविष्यदत्त** के द्वारा जीत लिया गया।" ऐसा सभी ने अपने-अपने मन में विचार कर निर्भीक उस भविष्यदत्त से कहा —

797 सत्यं सर्वमिदं भद्र यत्त्वयेह प्रजल्पितम्।
कथयस्व नृपस्याग्रे को दोषो विहितोऽमुना।। 80।।

—"हे भद्र भविष्यदत्त! तुमने यहाँ जो कुछ भी कहा है, वह सब सच है। अब तुम राजा के आगे भी कहो कि इस बन्धुदत्त ने कौन-कौन-से अपराध किए हैं?"

798 ततो भविष्यदत्तेन जगौ ये मयका समम्।
वणिज्यायै गता भृत्यास्तानत्राहूय पृच्छत्।। 81।।

तब भविष्यदत्त ने उनसे कहा—"जो सेवक—वणिक्पुत्र मेरे साथ व्यापार के लिए विदेश गए थे, उन्हें बुलाकर यदि उनसे पूछें, तो ही उत्तम रहेगा।"

वे वणिक्पुत्र बन्धुदत्त के अपराध-कर्म बतलाते हैं

799 तदुक्तितो नृपेणापि तानाहूय मृदूक्तिभिः।
पृष्टं प्रयत्नतस्तेऽपि वदन्ति स्म महीपतेः।। 82।।

भविष्यदत्त के कहने पर राजा ने भी उन सेवकों को बुलाकर उनसे यत्नपूर्वक मधुरवचनों द्वारा पूछा। उन सेवकों ने भी राजा के सम्मुख समस्त वृत्तान्त कह सुनाया कि—

800 यथा वनान्तरे मुक्तो वर्षैर्द्वादशभिर्यथा।
भूयो दृष्टोऽतिमुक्तागतले दुष्टेन मायिना।। 83।।

—"जिस प्रकार वह भविष्यदत्त बारह-वर्षों तक जङ्गल में छोड़ा गया एवं जिस प्रकार इस दुष्ट मायावी बन्धुदत्त ने उसे **अतिमुक्तक-वृक्ष** के नीचे देखा।"

801 यथा भविष्यदत्तेन खलः सन्मानितो यथा।
हृता भार्य्या धनेनामा निःशेषं कथितं तथा।। 84।।

—युग्मकम्

—"फिर जिस प्रकार भविष्यदत्त ने उस दुष्ट बन्धुदत्त को सम्मान दिया तथा जिस तरह उसने उसकी स्त्री एवं धन का अपहरण किया।" (दासों ने)

सब कुछ उन्हें सुना दिया।

उसे सुनकर घृणा से भरकर सभी ने अपने कान बंद कर लिए

802 निशम्य तद्वचः सर्वैः पौरलोकैः सभागतैः।
धुन्वद्भिः स्वशिरो बाढं पाणिभ्यां पिहितेश्रुती।। 85।।

उन सेवक—वणिक्पुत्रों की बातों को सुनकर सभा में आए हुए सभी नागरिकों ने अपने सिरों को धुनते हुए हाथों से दोनों कानों को बन्द कर लिया।

क्रोधित राजा उन्हें जान से मारना चाहता है

803 कोशादाकृष्य निस्त्रिंशमियेष क्रोधतो नृपः।
यावत्पित्रा समं हन्तुं बन्धुदत्तं कृतागसम्।। 86।।

बन्धुदत्त के अपराध-कर्मों से क्रोधित राजा ने म्यान से तलवार खींचकर पिता के साथ अपराधी बन्धुदत्त को जैसे ही मारना चाहा।

भविष्यदत्त राजा को रोक देता है

804 तावद्भविष्यदत्तेन नत्वा पादौ धृतो नृपः।
बन्धुदत्तः समं पित्रा बद्धो भूपालकिंकरैः।। 87।।

तभी भविष्यदत्त ने राजा के चरणों में प्रणाम कर उसको रोक लिया। राज-सेवकों के द्वारा पिता के साथ वह बन्धुदत्त भी बाँध लिया गया।

बन्धुदत्त के यहाँ से समस्त धन राजसभा में मँगवा लिया जाता है

805 कारागारे विनिक्षिप्य बन्धुदत्तं सबान्धवम्।
तद्गृहाद्द्रविणं सर्वं समानीतं नृपाज्ञया।। 88।।

राजा की आज्ञा से बान्धवों के साथ बन्धुदत्त को जेल में डालकर उसके घर से सम्पूर्ण धन को मँगवा लिया गया।

806 एकत्र सकलं द्रव्यं विधाय पृथिवीभुजा।
धनसंख्यां ततः पृष्टः श्रेष्ठिनो ज्येष्ठनन्दनः।। 89।।

सम्पूर्ण धन को एक जगह एकत्र कर राजा ने सेठ के ज्येष्ठपुत्र

भविष्यदत्त से धन की संख्या पूछी।

भविष्यदत्त अपने धन की संख्या बतला देता है

807 भूपाल संज्ञकस्याग्रे पृच्छतः पृथिवीपतेः।
संख्या भविष्यदत्तेन स्वधनस्य निवेदिता।। 90।।

राजा भूपाल द्वारा पूछे जाने पर भविष्यदत्त ने भी उसके सम्मुख अपने धन की संख्या निवेदित कर दी।

808 यादृशं वचनं प्रोक्तं कमलश्रीर्तनूर्भुवा।
बभूव तादृशं सन्तः प्रवदन्तीह नान्यथा।। 91।।

कमलश्री पुत्र—भविष्यदत्त ने जैसा धन की संख्या के विषय में कहा था वैसा ही हुआ क्योंकि इस संसार में सन्त लोग जैसा कहते हैं; वैसा ही होता है उसके प्रतिकूल कभी नहीं।

राजा उसकी सत्यवादिता से प्रसन्न होकर उसे सिंहासन पर बैठा देता है

809 विधानेनामुना सत्यं परिज्ञाय स्वमानसे।
नृपो भविष्यदत्तस्य कुलाकाशस्य शीतगोः।। 92।।

इस विधि से राजा ने अपने मन में अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा के समान उस भविष्यदत्त के कथन की सच्चाई जानकर—

810 कमलश्रीसुतं लात्वा तोषतो निजपाणिना।
स्वयं निवेशयामास केशरिव्यूढविष्टरे।। 93।।

—पूर्णतया सन्तुष्ट होकर उस राजा ने भविष्यदत्त को स्वयं अपने हाथों से उठाकर उसे सिंहासन पर बैठा दिया।

811 तं दृष्ट्वा सहितं नृपेण हरिणाधीशासने संस्थितम्,
चन्द्रं वोदयपर्वते द्युतियुतं जल्पन्ति सभ्याः जनाः।

पूर्वोपार्जितपुण्यवैभववशात् किं-किं त्रिलोकीतले,
रागद्वेषमदप्रमादरहितैर्नप्राणिभिर्लभ्यते ।। 94 ।।

उस राज्यसभा में उपस्थित सभी सम्यगण स्पष्ट कह रहे थे कि राजा के द्वारा सिंहासन पर संस्थापित यह भविष्यदत्त ऐसा सुन्दर लग रहा था, मानों उदयाचल पर द्युतिमन्त चन्द्रमा का ही उदय हो रहा हो। सच ही कहा गया है कि इस संसार में पूर्वार्जित पुण्य-वैभव के फलस्वरूप, राग-द्वेष, अहंकार एवं प्रमादविहीन व्यक्ति क्या-क्या वैभव प्राप्त नहीं कर लेते?

812 **वन्दन्ते ये जिनेन्द्रं विमलतरदयाः श्रीधरं शुद्धभावम्।**
देवेन्द्रैर्लक्ष्मणादि प्रवरनरवरैः संस्तुतं भूरिभक्त्या।
ते राज्यं प्राप्नुवन्ति प्रथितगुणगणापश्यतां देहभाजाम्।
सप्ताङ्गैर्भ्राजमानं जगति सुखकरं हन्त नाश्चर्यमेतत्।। 95 ।।

इन्द्रादिदेवों तथा **लक्ष्मण** (दूसरे अर्थ में प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक साहू लक्ष्मण) आदि नरश्रेष्ठों द्वारा भक्ति-भरित शुद्ध-भावनापूर्वक निरन्तर संस्तुत, विमलतर मोक्षरूपी श्री (लक्ष्मी) के धारी (दूसरे अर्थ में महाकवि **विबुध श्रीधर**) जिनेन्द्रदेव की वन्दना करते हैं, और मनोभिलषित फल प्राप्त कर लेते हैं, तब यदि गुणशील देहधारी (**भविष्यदत्त**) भी देखते-ही-देखते **सप्तांगों** से सुशोभित, सभी प्रजाजनों के लिए सुखकारी राज्य को प्राप्त कर लेता है, तो इसमें आश्चर्य करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

....

इतिश्रीभविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधरविरचिते
साहूलक्ष्मणनामाङ्किते भविष्यदत्तस्य राजसम्मान-लाभ—
वर्णनो नाम सप्तमः सर्गः।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित—साहू लक्ष्मण के नाम से अङ्कित भविष्यदत्तचरितमहाकाव्य में 'भविष्यदत्तराजसम्मानलाभ' वर्णन वाला सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

आठवाँ सर्ग

813 यः करोति जिननाथ - सपर्य्याम्,
भक्तिभावितमनाश्च मुनिभ्यः।
नित्यशो जगति यच्छति दानम्,
नन्दतादिति स लक्ष्मणनामा।। 1।।

जो भक्तिभावनापूर्वक जिननाथ की निरन्तर पूजा करते हैं और जो मुनिजनों के लिए निरन्तर दान देते रहते हैं ऐसे वे **लक्ष्मण** नाम के प्रसिद्ध आश्रयदाता इस संसार में सदा सुखी बने रहें।

अपराध-कर्मों के कारण बन्धुदत्त निन्दा का पात्र बन गया

814 अथ सर्वत्र राजानः सज्जनाः सुहृदो बुधाः।
अगृह्णन् दुर्यशः सर्वे बन्धुदत्तस्य दुर्दिर्धयः।। 2।।

इसके बाद राजा, सज्जन, मित्र, विद्वान् आदि सभी लोगों ने उसी दुर्बुद्धि बन्धुदत्त के अपयश का कथन कर सभी को उससे दूर रहने के लिए आग्रह किया।

बन्धुदत्त के अपराध-कर्म

815 वृत्तान्तममुमाकर्ण्य कौतुकाहितचेतसा।
अन्तःपुरेण विज्ञप्तः प्रणम्य पृथिवीपतिः।। 3।।

उस भविष्यानुरूपा के वृत्तान्त को सुनकर उत्सुकता से भरे हृदय वाले अन्तःपुर के सभी जनों ने राजा को प्रणाम कर उससे निवेदन किया—

816 स्त्रीरत्नं यदिहानीतं द्वीपतः श्रेष्ठिसूनुना।
तद्वयं दृष्टुमिच्छामो यद्यत्रैति त्वदाज्ञया।। 4।।

—हे राजन्, सेठ का पुत्र बन्धुदत्त **मदनद्वीप** से जो स्त्रीरत्न यहाँ लाया

है, आपकी आज्ञा से यदि वह यहाँ आए, तो उसे हम लोग देखना चाहते हैं।

भविष्यानुरूपा राजा के सम्मुख लाई जाती है

817 **नृपादेशादभविष्यानुरूपाख्या जनतावृत्ती।**
सती सद्यानमारुह्य प्रस्थिताऽग्रे महीभृतः।। 5।।

राजा की आज्ञा से वह **भविष्यानुरूपा** जनता से घिरे हुए एक सुन्दर यान पर बैठकर राजा के सम्मुख उपस्थित की गई।

उसके सौन्दर्य की प्रशंसा

818 **वीक्ष्य रूपश्रियं तस्या व्रजन्त्या नृपसद्मनि।**
गीर्वाणसदृशाः पौरा बभूवुः काष्ठदृष्टयः।। 6।।

राजभवन में जाती हुई उस भविष्यानुरूपा के रूप-सौन्दर्य को देखकर वहाँ के सभी नागरिकगण देवताओं के समान स्थिरनेत्र वाले हो गए।

819 **केचिन्नमन्ति शीर्षेण मन्यमानाः स्वमानसे।**
इयं देवी पुरस्यास्य प्रत्यक्षाजनि भक्तितः।। 7।।

"यह इस नगर की साक्षात् देवी है, जो हमारी भक्ति के कारण प्रकट हुई है।" अपने मन में ऐसा सोचते हुए कुछ लोग उसे सिर झुकाकर प्रणाम करने लगे।

भविष्य० भविष्या० का साक्षात्कार

820 **दर्शयित्वा नृपस्यान्तःपुरस्याग्रे ततो जनैः।**
नीता भविष्यदत्तस्य समीपं पश्यतां नृणाम्।। 8।।

सभ्यजनों ने राजा के अन्तःपुर की रानियों के आगे उस भविष्यानुरूपा को दिखाकर लोगों के देखते-ही-देखते उसे वे भविष्यदत्त के समीप ले आए।

821 **ताभ्यामन्योन्यमालोक्य स्नेहान्निःश्वसितं भृशम्।**
न पुनर्जल्पितं किञ्चित् सुहृत्सज्जनलज्जया।। 9।।

उन दोनों ने एक-दूसरे को देखकर स्नेह-प्रेम समन्वित सुख की गहरी

साँस ली, किन्तु मित्र एवं सज्जनों की लज्जा के कारण कोई कुछ बोला नहीं।

822 स्मृत्वा विरहदुःखानि पूरिते च तयोर्द्वयोः।
लोचने विकसत्पद्मदलाभे वाष्पबिन्दुभिः।। 10।।

विरह दुःखों का स्मरण कर उन दोनों के नेत्र, ओसकणों से खिलते कमलदल के समान आँसुओं से डबडबा गए।

823 धुन्वन्तो निजशीर्षाणि पश्यन्तश्च परस्परम्।
चन्द्रास्यां वीक्ष्य तां जग्मुर्मानवाः के न विस्मयम्।। 11।।

उस चन्द्रमुखी—भविष्यानुरूपा को देखकर, अपने सिरों को धुनते हुए एवं आपस में एक-दूसरे को देखते हुए ऐसे कौन से लोग होंगे जो विस्मित नहीं हुए होंगे।

भविष्या० के दिव्य-सौन्दर्य की प्रशंसा

824 सभ्या लोका वदन्ति स्म स्त्रीरत्नमिदमुत्तमम्।
क्व प्राप्तं श्रेष्ठिपुत्रेण जगतस्तिलकोपमम्।। 12।।

—"सभ्य लोग कह रहे थे कि सेठ पुत्र—भविष्यदत्त ने संसार के लिए तिलक के समान इस उत्तम स्त्रीरत्न को कहाँ से प्राप्त किया है?"

825 यैनैषा घटिता नारी देवीरूपातिशायिनी।
नैपुण्यं तस्य नान्यस्य वयं मन्यामहे स्फुटम्।। 13।।

देवी के अतिशय सौन्दर्य को भी मात कर देने वाली इस नारी (भविष्यानुरूपा) को जिसने बनाया है वह सचमुच में ही अतुलनीय है। उसके निर्माता की दक्षता को हम आदर प्रदान करते हैं।

826 केचिद्वदन्ति सम्भ्रान्ताः किमेषा देवकामिनी।
ईदृशं रूपमन्यस्याः स्त्रियाः स्यान्न मनोहरम्।। 14।।

कुछ सम्भ्रान्त लोग कह रहे थे कि "क्या यह किसी देव की देवी-कामिनी

है?" क्योंकि इस प्रकार का मनोहर रूप अन्य किसी दूसरी नारी का दिखाई नहीं देता।

भविष्यदत्त राजा को पिछले वृत्तान्त सुनाता है

827 भोजनानन्तरं दत्त्वा ताम्बूलं सहभूषणैः।
ततो भविष्यदत्ताख्यं पप्रच्छ पृथिवीपतिः।। 15।।

तभी भोजनानन्तर अलंकारों के साथ ताम्बूल से सम्मानित कर राजा ने उस भविष्यदत्त से पूछा –

828 कथमेतत्त्वया प्राप्तं स्त्रीरत्नं नयनप्रियम्।
ममाग्रे ब्रूहि निःशेषं यथावृत्तं तथा स्फुटम्।। 16।।

–"आँखों के लिए सुखकारक यह स्त्रीरत्न तुमने कैसे और कहाँ से प्राप्त किया? यह सब जैसे-जैसे हुआ, उस सकल वृत्तान्त मुझे सुनाओ।"

829 नरनाथमनो ज्ञात्वा सस्नेहं कमलश्रियः।
सूनुना वक्तुमारेभे स्वयं वृत्तान्तमात्मनः।। 17।।

राजा की मनोभिलाषा जानकर कमलश्री के पुत्र उस भविष्यदत्त ने भी सस्नेह अपने वृत्तान्त को कहना प्रारम्भ किया।

830 यथैकाकी वने मुक्तो दृष्टश्चन्द्रप्रभो यथा।
वर्णपङ्क्तिं यथा वीक्ष्य ययौ प्रियतमा गृहम्।। 18।।

–"जिस-जिस प्रकार मुझे जंगल में एकाकी छोड़ दिया गया, जिस प्रकार चन्द्रप्रभ भगवान के दर्शन हुए और जिस प्रकार मैंने अक्षरों की पंक्ति देखी और जिस प्रकार मैं प्रियतमा भविष्यानुरूपा के घर पहुँचा – "

831 यथा सुरेण तोषेणाकारि पाणिग्रहः स्त्रियः।
यथा सन्तापितो भ्रात्रा बन्धुदत्ते मायिना।। 19।।

–"तथा जिस प्रकार प्रसन्नचित्त उस यक्षदेव ने युवा-नारी के साथ मेरा विवाह कराया और जिस प्रकार मेरे मायावी भाई बन्धुदत्त ने मुझे

सन्तापित किया।"

832 समानीतो विमानेन यथा यक्षेण मन्दिरम्।
तथा तेन नरेन्द्रस्य समवादि विशेषतः।। 20।।
— *चतुष्कलम्*

— "तथा जिस प्रकार वही यक्षदेव स्वनिर्मित विमान के द्वारा मुझे घर ले आया, इस प्रकार मैंने (भविष्यदत्त ने) राजा को अपने साथ घटित सभी घटनाएँ सच-सच बतला दीं।" (चतुष्कलम्)

पूर्वार्जित पुण्य का प्रभाव

833 तद्वृत्तान्तं समाकर्ण्य चिन्तयामास भूपतिः।
क्वायं मुक्तोऽरिणा क्वायं प्राप्तः पुण्यप्रभावतः।। 21।।

शत्रु के जाल में फँसकर भी यह भविष्यदत्त अपने पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से कैसे सुरक्षित रहकर यहाँ आ गया है।

834 नेदृशोऽन्योऽस्ति गम्भीरो धीमान् धीरो महाबलः।
निजपुत्रीं सुमित्राख्यां तस्मादस्मै ददाम्यहम्।। 22।।

— इस भविष्यदत्त के समान गम्भीर, बुद्धिमान, धीर, वीर एवं बलवान् अन्य दूसरा दिखाई नहीं देता, अतः **सुमित्रा** नाम की अपनी राजकुमारी-पुत्री को क्यों न इसे प्रदान कर दूँ (अर्थात् विवाह दूँ)?

भविष्यदत्त के साथ राजा अपनी पुत्री के विवाह की तैयारी करता है

835 इति ध्यात्त्वा ततोऽवाचि भूभृता श्रेष्ठिनन्दनः।
कुरु स्त्रीद्वितयस्यास्य पश्यतो मे करग्रहम्।। 23।।

ऐसा विचार करने के बाद राजा ने उस सेठ-पुत्र भविष्यदत्त से कहा — "तुम मेरे सामने ही दूसरी पत्नी के रूप में मेरी इस पुत्री के साथ पाणिग्रहण करो।"

माता की प्रेरणाा से भविष्यदत्त सेठ धनपति एवं बन्धुदत्त को कारागार से मुक्त कराता है

836 **अभिधायेत्यसौ राजा चक्रे यावन्महोत्सवम्।**
विवाहस्य ततोऽभाणि स्वसुतः कमलश्रिया।। 24।।

इस तरह कहकर जब राजा ने उसके विवाह का महोत्सव किया, तब कमलश्री ने अपने पुत्र भविष्यदत्त से इस प्रकार कहा—

837 **संतिष्ठति सुतेनामा कारागारे जनेतरि।**
कुर्वतस्ते ग्रहं पाणेः किं सुखं कथयाङ्गज।। 25।।

—"हे पुत्र भविष्यदत्त, पुत्र बन्धुदत्त के साथ पिता के कारागार में बन्द रहते हुए, इस विवाह को करते हुए क्या तुम्हें सुख मिलेगा? तुम्हीं बताओ।"

838 **यदि मोक्षं पितुः स्वस्य कारापयसि भूपतिम्।**
प्रणम्याद्य तदा पुत्र त्वं सुपुत्रोऽसि नान्यथा।। 26।।

—"हे पुत्र भविष्यदत्त! यदि आज राजा को प्रणाम कर तुम अपने पिता को कारागार से मुक्त कराते हो, तभी तुम सच्चे सुपुत्र कहलाओगे अन्यथा नहीं।"

839 **निशम्य तद्वचो मातुर्भद्रं मत्वा मनोन्तरे।**
नृपं भविष्यदत्ताख्यो जगादापयशोभिया।। 27।।

माँ के वचन सुनकर तथा मन में कल्याणकारक मानकर भविष्यदत्त ने अपयश के भय से राजा से इस प्रकार प्रार्थना की—

840 **देव कृत्वा प्रसादम्मे सपुत्रं पितरं त्यज।**
तत्श्रुत्वा तं प्रशस्य सौ मोचयामासतं नृपः।। 28।।

—"हे देव! मुझ पर कृपा कीजिए और पुत्र बन्धुदत्त सहित पिता को कारागार से मुक्त कर दीजिए। यह सुनकर उस प्रशंसनीय राजा ने भविष्यदत्त की प्रशंसा करते हुए उन पिता-पुत्र को कारागार से मुक्त कर दिया।"

841 श्रेष्ठी धनपतिस्तत्र पुत्रयुक्तः समाययौ।
मलिनास्यो विषण्णात्मा यत्र तस्थौ स भूपतिः।। 29।।

वह धनपति सेठ पुत्र बन्धुदत्त के साथ कारागार से मुक्त हो गया। मलिनमुख एवं दुःखी हृदय वे राजा के सामने उपस्थित किए गए।

842 विलोक्य श्रेष्ठिनं राजा निजगाद दयापरः।
पूर्वात्तकर्मणः कोऽपि न शशाक पलायितुम्।। 30।।

धनपति सेठ को सम्मुख देखकर दयालु राजा ने कहा—"पूर्वजन्म से प्राप्त कर्मफल से निश्चय ही कोई भी भाग नहीं सकता।"

843 पुत्रसंसर्गदोषेण त्वया प्राप्ता बिडम्बना।
न तु निःकारणं हन्त! मयका त्वं कदर्थितः।। 31।।

—"हे सेठ, अपने पुत्र बन्धुदत्त के संसर्गदोष के कारण ही तुमने यह विपत्ति पाई है, इसका मुझे खेद है। किन्तु मैंने अकारण ही तुम्हें यह कष्ट नहीं दिया है।"

सेठ धनपति से राजा क्षमायाचना करता है

844 त्यक्त्वाऽधुना क्रुधं त्रेधा ममोपरि कुरु क्षमाम्।
कारयित्वा क्षमां श्रेष्ठी भूभृता विधृतः करे।। 32।।

—"फ़िर भी इस समय मन, वचन एवं काय से अपने क्रोध को छोड़कर तुम मुझे क्षमा करो।" इस प्रकार राजा ने सेठ से क्षमायाचना कर उसके हाथों को अपने हाथों में भर लिया।

845 बन्धुदत्तोऽपि दुष्टात्मा ततः कारापितो नतिम्।
हठाद्भविष्यदत्तस्य पदयोः शुद्धचेतसः।। 33।।

तभी दुष्टात्मा बन्धुदत्त के द्वारा भी शुद्ध हृदय वाले उस भविष्यदत्त के दोनों चरणों में जबरदस्ती प्रणाम करवाया गया।

राजा बन्धुदत्त को निर्वासित कर देता है

846 दत्वा ग्रामद्वयं सार्द्धं मात्रा बन्धुजनैरपि।
अन्ध्रदेशे खलः क्षिप्तो विधायादृष्टसेवकः।। 34।।

उस दुष्ट **बन्धुदत्त** को ढाई गाँव प्रदान कर उसे **सुरूपा** माँ एवं बन्धुजनों के साथ दैवाधीन बनाकर अर्थात् उसी के भाग्य के सहारे उसे **आन्ध्रदेश** में भेज दिया गया।

माता-पिता-पुत्र का स्नेह-मिलन और घर के लिए प्रस्थान

847 अथानीय जनं प्रेष्य धीमन्तं कमलश्रियम्।
तत्पाणिधारणं राज्ञा श्रेष्ठी कारापितस्ततः।। 35।।

तत्पश्चात् विश्वस्त कुशल व्यक्ति को भेजकर राजा ने कमलश्री को बुलवाकर उसका सेठ धनपति के साथ पुनः पाणिग्रहण (सौहार्दपूर्ण सम्मिलन) करा दिया।

848 लात्वा धनपतिः प्रीत्या सपुत्रां कमलश्रियम्।
नत्वा नृपं समं लोकैर्जगाम निजमन्दिरम्।। 36।।

वह सेठ धनपति भी प्रेमपूर्वक अपने पुत्र भविष्यदत्त के साथ पत्नी कमलश्री को पाकर स्वजनों के साथ राजा को प्रणाम कर अपने भवन को लौट गया।

शुभ-मुहूर्त में महोत्सवपूर्वक राजकुमारी सुमित्रा के साथ भविष्यदत्त का पाणिग्रहण

849 अथोत्तमदिने जाते जिनेन्द्रपदपद्मयोः।
विधाय स्नपनं पूजां प्रसूनैर्विविधैर्नवैः।। 37।।

तत्पश्चात् शुभ दिवस के उपस्थित होने पर जिनेन्द्र के पादपंद्मों का अभिषेक करके एवं विविध प्रकार के नवविकसित पुष्पों से पूजा करके —

850 नरेन्द्रमन्दिरे चक्रे मण्डपो नृपकिङ्करैः।
ताराभिभूषितः कार्त्तस्वरस्तम्भसमुद्धृतः।। 38।।

— राजसेवकों ने राजभवन में ताराओं से अभिभूषित एवं स्वर्ण-खम्भों पर स्थित एक विशाल-मण्डप का निर्माण किया —

851 तथा च वेदिकारत्नरश्मिप्रद्योतिताम्बरा।
चतुःकोणस्थ सद्दीप्तहेमकुम्भसमन्विता।। 39।।

— और रत्नों के प्रकाश से आकाश को प्रकाशित करने वाली तथा चारों कोणों पर स्थित चमचमाते हुए स्वर्ण-कलशों से युक्त एक वेदिका बनाई।

852 कमलश्रीसुतः स्त्रीभिः स्नापितः पृथुलोदरैः।
कानकैः कलशैः कम्रभूषणैश्च विभूषितः।। 40।।

— उपस्थित महिलाओं ने कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त को बड़े-बड़े स्वर्णकलशों से स्नान कराया फिर बहुमूल्य स्वर्णाभूषणों तथा उत्तम वस्त्र पहनाकर उसे सुसज्जित किया।

853 हरंश्चेतांसि स स्त्रीणां पुंसां विद्याभृतामपि।
सविग्रहः सभामध्ये मनोभूरिव दिद्युते।। 41।।

वह भविष्यदत्त स्त्रियों के एवं विद्याविभूषित पुरुषों के भी मन को हरण करता हुआ सभा के मध्य में शरीरधारी कामदेव के समान सुशोभित हो रहा था।

854 वाद्यमानैश्चतुर्भेदैस्तूर्यैर्गम्भीरनादिभिः।
कारापितः स तन्वङ्ग्या वेधसा करपीडनम्।। 42।।

— बजते हुए गम्भीर ध्वनि वाले एवं चार प्रकार के नगाड़ों के साथ ही विधाता ने उस तन्वङ्गी **राजकुमारी सुमित्रा** के साथ उस **भविष्यदत्त** का पाणिग्रहण-संस्कार करा दिया।

855 ऊद्ध्वींकृतकराः पेठुर्बन्दिनो मधुरस्वराः।
मङ्गलानि जगुर्नार्यो घनस्तनभरानताः।। 43।।

चारण-वन्दियों ने अपने हाथों को ऊपर उठा-उठाकर तथा घनस्तनों से विनम्र नारियों ने मधुरस्वर लहरी से मंगल-गान किये।

856 जामातरं निवेश्याशु वेदिकायां ततो मुदा।
स्वयं भृङ्गारमादाय निजगाद नरेश्वरः।। 44।।

उसी समय प्रफुल्लित मन से राजा ने तुरन्त ही उस दामाद भविष्यदत्त को वेदिका पर बैठाकर और स्वयं स्वर्णकलश लेकर कहा—

857 मम राज्यादिवस्तूनामदूर्धस्य त्वमिह प्रभुः।
इत्युक्तवा तत्कराक्षिप्तो नृपेण सलिलाञ्जलिः।। 45।।

—"अब आज इसी समय से तुम मेरी राज्यादिवस्तुओं के आधे भाग के स्वामी हो।" ऐसा कहकर उस राजा ने सलिलाञ्जलि अर्थात् जलधारा उसके हाथों पर छोड़ी।

858 तस्मिन्नवसरे सर्वजनानां सुहृदां सताम्।
प्रमदोऽभून्मनोमध्ये पश्यतां निभृतात्मनाम्।। 46।।

उस महोत्सव को देखते हुए सभी मित्रों, सज्जनों, महिलाओं एवं विनीत चेताओं के मन में अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

विवाहोपरान्त वह राजा (ससुर) भविष्यदत्त (जामाता) को आधा राज्य प्रदान कर देता है

859 विवाहानन्तरं राज्ञा गजाश्वरथपत्तयः।
नगरीपत्तनग्रामराष्ट्रदुर्गपुराकराः।। 47।।

विवाह के बाद उस राजा ने अपने हाथी, घोड़े, रथ एवं पदाति सैनिकों को तथा नगरी-पत्तन-ग्राम-राष्ट्र, दुर्ग, पुर, खान (खनिज)—

860 चामराणि सितच्छत्रं शिविका भूषणाम्बरे।
विलासिनी मही कोशनन्दिनी महिषी मया।। 48।।

— चामर, श्वेतच्छत्र, पालकी, आभूषण, वस्त्र, विलासिनी-रमणियाँ (नृत्यगान करने वाली) एवं कोष, गायों, भैंसों से भरी हुई पृथिवी —

861 सामन्तमण्डलाधीश सन्धिविग्रहिकादयः।
विभज्य विधिना दत्ता श्रेष्ठिनो ज्येष्ठसूनवे।। 49।।

— त्रिकलम्

— सामन्त, मण्डलाधीश, सान्धिविग्रहिक (दूत) आदि को विधिवत् अर्धमात्रा में विभाजित कर सेठ के ज्येष्ठ पुत्र (भविष्यदत्त) को उनका स्वामी घोषित कर दिया। (त्रिकलम्)

नवोदित राजा भविष्यदत्त के ठाट-बाट

862 यथाकालं लसत्सौधे तया सहसुमित्रया।
कालं भविष्यदत्ताख्यो लीलया नयतिस्म सः।। 50।।

और इधर, वह **भविष्यदत्त** भी उस नवपरिणीता पत्नी — **सुमित्रा** के साथ शोभायमान उस राज-प्रासाद में लीलापूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहा था।

863 राज्ञो भविष्यदत्तस्य तस्य पादद्वयं नृपाः।
भीतिभावितचेतस्काः समाजग्मुर्निषेवितुम्।। 51।।

उन नव-घोषित राजा भविष्यदत्त के चरणयुगल की सेवा करने के लिए भयाक्रान्त हृदय वाले राजा लोग भी वहाँ आ पहुँचे।

864 केचिन्नराः प्रतीहारपाणिवेत्रलताहताः।
अतिष्ठन्नुन्मुखा द्वारे तद्दर्शनसमुत्सुकाः।। 52।।

उस राजा भविष्यदत्त के दर्शनों के लिए समुत्सुक कुछ लोग द्वारपाल के बेंत की छड़ी से आहत होकर द्वार पर ही निराश मुख हुए रुककर उसके दर्शनों से वञ्चित रह गए।

865 दिनेदिने चिरोपात्तपुण्यतस्तस्य भूपतेः।
असिध्यन्त पुरग्रामद्रोणवाहनकादयः।। 53।।

पूर्वार्जित पुण्य को प्रभाव से दिनों-दिन उस राजा भविष्यदत्त के नगर, ग्राम, द्रोण, वाहन आदि की वृद्धि होती गई।

866 समवादिसृतिद्वारं यथाज्ञाने जिनेशिनः।
क्षुभ्यति स्म महीनाथ विद्याधरसुरासुरैः।। 54।।

जिस प्रकार समवशरण में विराजमान जिनेश्वर के ज्ञान में राजाओं, विद्याधरों, सुरों एवं असुरों के कार्य झलकते रहते हैं। ठीक उसी प्रकार उस नवोदित राजा भविष्यदत्त के ज्ञान में भी अपना राजद्वार (सज्जनों-दुर्जनों के आगमन सम्बन्धी जानकारी देने वाले प्रहरियों द्वारा सुरक्षित) तथा राजाओं विद्वानों तथा सुरासुरों का प्रभाव झलकता रहता था।

867 तथा तस्य नरेन्द्रस्य समुपेतैर्नरेश्वरैः।
सामन्तमण्डलेशैश्च सोपायनवचोहरैः।। 55।।

उस राजा भविष्यदत्त की सेवा में पहुँचे हुए राजाओं, सामन्तों, मण्डलाधीशों तथा उपहार लेकर आने वाले दूतों, सन्देशवाहकों से उसकी राज्यसभा भरी रहती थी।

868 पुरतस्तस्य भूपस्य जगुः केचन सुस्वराः।
गीतानि प्राणिनां कर्णरन्ध्रसौख्य प्रदानि च।। 56।।

वहाँ उपस्थित मधुर स्वर वाले कुछ लोगों ने उस राजा के सम्मुख जीवों के कर्णकुहर को सुख देने वाले मधुर गीत गाए।

869 ननृतुः काश्चनात्यन्तं दर्शयन्त्यो निरन्तरम्।
हावभाव विलासादिविभ्रमान्नयनप्रियान्।। 57।।

कुछ युवतियों ने नेत्रों को सुख देने वाले हाव-भाव विलासादि विभ्रमों को लगातार दिखाते हुए लम्बे समय तक नृत्य किए।

भविष्यदत्त की राज्य-शक्ति

870 शक्तित्रयवतस्तस्य नृपस्य वरवाहिनी।
माद्यद्दन्तिरथानाञ्च न संख्यानमभूत्तदा।। 58।।

उत्साह, मन्त्र एवं प्रभुत्व शक्ति रूप तीन प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न उस राजा भविष्यदत्त के पास ऐसी श्रेष्ठ सेना थी, जिसमें मतवाले हाथी और रथों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि उसे गिनना भी सम्भव न था।

871 चामराणि विलासिन्यः पातयन्त्युभयोर्दिशोः।
जयदेवादिवाक्यानि जजल्पुः पुरतो जनाः।। 59।।

उस राजा भविष्यदत्त के दोनों ओर विलासिनियाँ, चँवर डुलातीं रहती थीं तथा उसके सामने लोग 'जय देव', 'जय देव' आदि का नारा घोषित करते रहते थे।

भविष्यदत्त की तेजस्विता

872 न शशाक तदाद्रष्टुं मण्डलं कोऽपि तिग्मगोः।
सेवां कर्त्तुं समायातं तद्वक्त्रं राजकं तथा।। 60।।

सेवा करने के लिए आया हुआ राजाओं का समुदाय उस राजा भविष्यदत्त के तेजस्वी मुख को उसी प्रकार देखने में सक्षम न हो सका जिस प्रकार दोपहर के सूर्य-मण्डल को कोई देखने में समर्थ नहीं होता।

राजनीति-कुशल राजा भविष्यदत्त

873 पञ्चाङ्गं सुन्दरं मन्त्रं प्रकुर्वाणो रजाज सः।
बृहस्पतिरिवानेकमन्त्रिभिः परिवारितः।। 61।।

बृहस्पति के समान अनेक चतुर एवं दूरदृष्टि सम्पन्न मन्त्रियों से घिरा हुआ वह राजा भविष्यदत्त सुन्दर **पञ्चाङ्गमन्त्रणा** करता हुआ सुशोभित होता था।

पराक्रमी राजा भविष्यदत्त

874 यस्यासंख्यचतुर्भेदबलपादहता मही।
चचाल ससुरावासा समहीध्रा ससागरा।। 62।।

जिसकी चतुर्विध असंख्य सेना के बल से आहत होकर यह पृथ्वी, समस्त देवलोक, पर्वतों एवं सागरों के साथ ही काँप उठी थी।

875 यस्य संग्रामगम्भीरतूर्यनादैरणाङ्गणे।
नाश्रूयत भटैः शत्रोर्दुर्वचांसि मदोत्कटैः।। 63।।

रणक्षेत्र में जिसके सामरिक नगाड़ों के गम्भीर-नाद के कारण शत्रुओं के मतवाले वीरों के दुर्वचन सुनाई नहीं पड़ते थे।

876 सिंहासननिविष्टोऽसौ रराज सहितो नृपैः।
सुराधीश इवायातैः सेवायां सुमनोगणैः।। 64।।

सेवा में पधारे हुए राजाओं के साथ सिंहासन पर बैठा हुआ वह राजा भविष्यदत्त देवों के साथ आए हुए इन्द्र के समान सुशोभित होता था।

877 स जहाराविनम्राणां नृपाणां कोपमागतः।
कोशदेशपुरग्रामनगराणि नरेश्वरः।। 65।।

अत्याचारी एवं उद्धत राजाओं पर क्रोधित होकर उस राजा भविष्यदत्त ने उनके कोश, देश, पुर, ग्राम एवं नगरों को छीन लिया था।

878 यस्य तुष्टो बभूवायं तं चकार नरं क्षणात्।
कृतार्थं न्यक्कृतारातिमत्तमातङ्ग संहतिः।। 66।।

शत्रुरूपी मदोन्मत्त गजराजों का संहारक वह राजा भविष्यदत्त जिस पर प्रसन्न हो जाता था उसे देखते-ही-देखते कृतार्थ भी कर देता था।

भक्त राजा भविष्यदत्त

879 स भक्तया कारयामास मन्दिराणि जिनेशिनाम्।
मनोहराणि रिक्थानि प्रदत्त्वा भूरि शिल्पिनाम्।। 67।।

उस राजा भविष्यदत्त ने विविध शिल्पियों को आकर्षक पर्याप्त मात्रा में

धन देकर भक्तिपूर्वक अनेक कलापूर्ण जैन-मन्दिर बनवाए।

880 **स पूजां विदधे नित्यं जिनेन्द्रपदपद्मयोः।**
स्तुतिं च वस्तुसद्वृत्तजयमालादिभिस्त्रिधा।। 68।।

वह नित्यप्रति जिनेन्द्रचरणकमलों की पूजा-अर्चना एवं सुन्दर छन्दों वाली जयमालाओं के द्वारा मन, वचन एवं काय की शुद्धिपूर्वक संगीतात्मक स्तुति करता था।

881 **अहिंसा लक्षणं धर्म्मं स शुश्राव जिनालये।**
एकाग्रमानसो नित्यं मुनीन्द्रमुखनिर्गतम्।। 69।।

वह राजा भविष्यदत्त निरन्तर ही एकाग्रचित्त होकर जिनमन्दिर में एक तपस्वी मुनीन्द्र के मुख से निर्गत **"अहिंसा ही धर्म का लक्षण है"** का उपदेश सुनता रहता था।

882 **मध्याह्न - समये साधुजनेभ्यो दानमुत्तमम्।**
चतुर्विधं ददातिस्म श्रेयसे स स्वयं मुदा।। 70।।

वह राजा स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक दोपहर के समय तपस्वी मुनिजनों के लिए चारों प्रकार के उत्तम दान स्व-पर कल्याणार्थ दिया करता था।

883 **रतीशो वा रतिप्रीतियुक्तः कान्ताद्वयान्वितः।**
नृपो भविष्यदत्ताख्यो दिनानि नयतिस्म सः।। 71।।

रति एवं प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति के समान अपनी **भविष्यानुरूपा** एवं **सुमित्रा** नामकी उन दोनों कान्ताओं के साथ वह राजा भविष्यदत्त कामदेव के समान अपना समय व्यतीत करता था।

वात्सल्यमयी माता का उपदेश

884 **एकस्मिन्वासरे माता जगाद निजदेहजम्।**
सावधानं मनः कृत्वा श्रूयतां पुत्र वच्मि ते।। 72।।

अन्य किसी एक दिन उसकी माता ने अपने पुत्र भविष्यदत्त से कहा — "हे

पुत्र! मैं जो कह रही हूँ, उसे सावधानचित्त होकर सुनो।

885 **अभूद् यदत्र राज्यश्री तनूजागमनादि मे।**
अस्मिन्नेव भवे सर्वजनानां पश्यतामलम्।। 73।।

—"समस्त सज्जनों के देखते-ही-देखते इसी जन्म में जो राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति एवं खोए हुए पुत्र का गृहागमन आदि मेरे जो शुभ कार्य सम्पन्न हुए हैं" —

श्रुतपंचमी-व्रत-माहात्म्य

886 **तत्सर्वं श्रुतपञ्चम्या उपवाससमुद्भवम्।**
फलं पुत्र विजानीहि सुराणामपि दुर्ल्लभम्।। 74।।

—"हे पुत्र, इन सभी अप्रत्याशित उपलब्धियों को श्रुतपञ्चमी-व्रत के उपवास से उत्पन्न सुफल जानो, जो देवों के लिए भी दुर्ल्लभ है।"

887 **विधिरेष प्रयत्नेन ममाग्रे जिनमन्दिरे।**
सदा परोपकारिण्या कथितः सुव्रतार्यया।। 75।।

—"निरन्तर परोपकार करने वाली सुव्रता नामकी आर्यिका ने इस उपवास-विधि को जिन-मन्दिर में मुझसे सावधानचित्त पूर्वक करते रहने को कहा था।"

888 **इमां भक्तिं विधायाशु गृहाण विधिमुत्तमम्।**
यदीच्छसि भवाम्भोधेः पारं गन्तुं सुत द्रुतम्।। 76।।

—"हे पुत्र! यदि तुम संसार-सागर से पार उतरना चाहते हो, तो भक्तिपूर्वक इस उत्तम श्रुतपञ्चमी-उपवास-विधि को तत्काल ही स्वीकार करो।"

889 **कुमतिर्यो न गृह्णाति विधिमेनं प्रमादतः।**
दुर्ल्लभं नरजन्म स्याद् विफलं तस्य देहिनः।। 77।।

"और हे पुत्र, जो भी मूर्ख व्यक्ति प्रमाद के कारण इस कल्याणकारी विधि को ग्रहण नहीं करता, उस शरीरधारी का यह दुर्लभ-मनुष्य-जन्म

विफल हो जाता है।"

भविष्यदत्त सपत्नीक श्रुतपंचमी-व्रत को स्वीकार करता है

890 **मातृवाक्यं हितं मत्वा कृत्वा स्नानं जिनेशिनाम्।**
सपर्यां च श्रुतज्ञाने प्रसूनैर्गन्धशालिभिः।। 78।।

माँ के उपदेश को हितकारी मानकर उस राजा भविष्यदत्त ने स्वयं स्नान किया और फिर गन्धयुक्त फूलों से, जिनेन्द्र देव का अभिषेक कर शास्त्रोक्त सुगन्धित पुष्पों से उनकी पूजा की।

891 **प्रणम्य मुनिनाथानां पदपद्मद्वयं ततः।**
कमलश्रीसुतो भक्त्या जग्राह श्रुतपंचमीम्।। 79।।

इसके बाद मुनिनाथों के युगल चरणकमलों में प्रणाम करके भविष्यदत्त ने भक्तिपूर्वक श्रुतपञ्चमी व्रत स्वीकार किया।

892 **यथा तथा च तद्भार्ये तं विधिं विधिपूर्वकम्।**
मुदा जगृहतुर्भीमभवदुःखोपशान्तये।। 80।।

अपने पति भविष्यदत्त के समान ही भयंकर सांसारिक-दुःखों की शान्ति के लिए उसकी दोनों पत्नियों ने भी उस विधि को विधिपूर्वक प्रसन्नचित्त होकर स्वीकार किया।

व्रत-विधि

893 **अन्यैरपि जनैस्तस्य भूपस्याभ्यर्णवर्त्तिभिः।**
अग्राहि स विधिस्त्रेधा भवभ्रमणभीरुभिः।। 81।।

उस राजा के निकटवर्ती अन्य लोगों ने भी जो कि भवभ्रमण से भयभीत थे, मन, वचन एवं काय से उस साधना-विधि को स्वीकार किया।

894 **मासे-मासे गते पक्षे वलक्षे पंचमी दिने।**
उपवासं नृपश्चक्रे सभार्यो विजितेन्द्रियः।। 82।।

प्रत्येक महीने के शुक्ल-पक्ष की पञ्चमी-तिथि को वह राजा भविष्यदत्त

अपनी पत्नियों के साथ इन्द्रियजयी रहकर व्रतविधिपूर्वक उस उपवास को करने लगा।

895 जिनस्नानं सपर्य्याञ्च मुनिदानं दिने-दिने।
स चकार प्रहृष्टात्मा दोषैः शङ्कादिभिर्बिना।। 83।।

प्रसन्नतापूर्वक शङ्कादि दोषों से रहित होकर वह भविष्यदत्त प्रतिदिन जिनाभिषेक तथा पूजा एवं मुनियों को चतुर्विध दान देता रहता था।

व्रत-पालन का फल

896 राज्यं भविष्यदत्तस्य निरीक्ष्यगतकण्टकम्।
समूचुर्मनुजाः सर्वे विनिन्द्यात्मानभंजसा।। 84।।

उस भविष्यदत्त के राज्य को निष्कण्टक देखकर सभी लोगों ने अपनी निन्दा करते हुए कहा—

897 प्रत्यक्षमिदमस्माभिः पुण्यस्य फलमीक्षितम्।
राज्ये धनपतेः पुत्रं पूर्वपुण्यादधिष्ठितम्।। 85।।

—"पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से धनपति सेठ का पुत्र भविष्यदत्त राज्य सिंहासन पर बैठ गया है, यह हम लोगों ने पुण्य का प्रत्यक्ष फल देख ही लिया है।"

898 तपश्चीर्णं पुरा तीव्रममुना निर्जितारिणा।
वितीर्णं मुनिनाथेम्यः प्रदानञ्च चतुर्विधम्।। 86।।

—"इस शत्रुजेता राजा भविष्यदत्त ने अपने पूर्वजन्म में कठोर तपश्चरण और मुनिनाथों को चतुर्विध-दान दिया था।"

899 भुङ्क्ते भूपगृहीताज्ञो भूपोऽयं सपरिग्रहम्।
आत्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं दुर्ल्लभमङ्गिनाम्।। 87।।

—"यह राजा भविष्यदत्त राजाज्ञा प्राप्त करके अपने पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से ही अपनी पत्नियों के साथ राज्य-भोग कर रहा है, जो अन्य

(भाग्यहीन —) पुरुषों के लिए दुर्लभ है।"

900 इदानीं पुनरश्रान्तं जिनेन्द्रं जगतां पतिम्।
पूजयत्येष दानञ्च मुनिम्यः सम्प्रयच्छति।। 88।।

—"फिर वह इस समय भी लगातार जगत् के स्वामी जिनेन्द्र की पूजा करता है और मुनियों को निरन्तर चतुर्विध दान देता रहता है।"

901 उपार्जयति शुद्धात्मा धर्ममेषनराधिपः।
भेदैर्बहुविधैर्जैनश्रुतसन्दोहभाषितम्।। 89।।

—"यह शुद्धात्मा राजा भविष्यदत्त जैनागमों के वर्णित विविध भेदों वाले धर्म का अर्जन-पालन कर रहा है।"

902 विधानमेष पुण्यस्य दुर्लभस्य महीपतिः।
यशसां धाम शौर्यस्य गृहं लक्ष्मीनिकेतनम्।। 90।।

—"यह राजा दुर्लभ-पुण्य का विधान (साक्षात् उदाहरण), यशोधाम, शूरवीरता का घर और लक्ष्मी का निकेतन है।"

903 उपवासं करोत्येष पञ्चमीदिवसे नृपः।
समुपार्ज्य महापुण्यं निर्ज्जरत्वं लभिष्यति।। 91।।

—"यह राजा पञ्चमी-तिथि को नियमितरूप से उपवास करता है। अतः महापुण्य का अर्जन करके वह देवत्व को प्राप्त करेगा।"

904 अस्माभिस्तु तपस्तीव्रं न चीर्णं पूर्वजन्मनि।
तेन जाता वयं नूनं भोगसौख्यविवर्जिताः।। 92।।

—"हम लोगों ने तो पूर्वजन्म में तीव्र तपश्चरण नहीं किया था, इसीलिए इस जन्म में भोग-सुख प्राप्त करने से वंचित रह गए।"

905 अस्माकं जन्मसद्धर्मभोगलक्ष्मीविवर्जितम्।
प्रयाति फलसंव्यक्तं तिरश्चामिव निश्चितम्।। 93।।

—"सद्धर्म, भोग एवं लक्ष्मी से हीन हमलोगों का यह जन्म निश्चय ही

पशु-पक्षियों की तरह निष्फल बीत रहा है।"

906 तैरात्मानं विनिन्द्येति तपस्तीव्रं समाश्रितम्।
नालस्यं कुर्वते धीराःश्रेयसे मतिशालिनः।। 94।।

इस प्रकार आत्म-चिन्तन करके उन लोगों ने आत्म-निन्दा की और कठिन तपस्या का आश्रय लिया। क्योंकि बुद्धिमान् एवं धीर लोग आत्मकल्याण के लिए आलस्य नहीं किया करते।

907 द्रुतमग्राहि कैश्चिच्च पञ्चमीविधिरुत्तमः।
दाता निर्वाणसौख्य सर्वदुःखविनाशनः।। 95।।

कुछ लोगों ने तुरन्त ही सर्व दुःखविनाशक तथा निर्वाणसुख को देने वाली उत्तम पञ्चमी-विधि को ग्रहण कर लिया।

908 इति मनसि निधाय श्रेयसि त्यक्तमान्द्याः।
भवमरणविभीताः शुद्धवंशप्रसूताः।
गृहपरिजनकान्तापुत्रमित्रादिलोकां–
स्तृणलवमिव मुक्त्वा किं प्रयत्नं न कुर्युः।। 96।।

इस प्रकार मन में निश्चय करके आत्म-कल्याणार्थ, मन्दता (प्रमाद) के दोष को त्यागने वाले, संसार के जन्ममरण से भयभीत एवं शुद्धवंशोत्पन्न लोग अपने घर, परिवार, पत्नी, पुत्र, मित्रादि लोगों को तृणखण्ड के समान त्याग कर सभी लोग आत्मकल्याणार्थ क्यों न प्रयत्न करें?

909 पूर्वोपार्जितपापकर्मपटल व्यावल्गनाभीरवः।
भव्या भद्रगुणानुबद्धमनसो मात्सर्यमुक्ताशयाः।
पादं श्रीधरलक्ष्मणसुकृतिभिर्भूपैः सुरैश्च स्तुतम्,
भक्त्या किन्न नमन्त्यहो कलिमलप्रक्षालनायार्हताम्।। 97।।

पूर्वोपार्जित पाप-कर्मों के दुखों से भयभीत, भद्रगुणों में अनुरक्त मन वाले, मात्सर्य, ईर्ष्या, विद्वेष-भावना से शून्य हृदय वाले भव्यजन, अपने कलिकाल के दोषों का प्रक्षालन करने के लिए, अनेक राजाओं, देवों तथा

श्रीधर (महाकवि) एवं साहू लक्ष्मण (ग्रन्थ-प्रेरक) द्वारा संस्तुत आराध्य (श्रीमोक्ष लक्ष्मी) के धारी श्री अरिहन्त-देव के चरण-कमलों में भक्तिपूर्वक क्यों न नमस्कार करें?

....

इति श्रीभविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर – विरचिते
साहूलक्ष्मणनामाङ्किते – भविष्यदत्तपुण्यातिशयवर्णनो
नाम – अष्टमो सर्गः

इस प्रकार विबुधश्रीधर विरचित तथा
साहूलक्ष्मणनाम से अङ्कित भविष्यदत्तचरित-महाकाव्य में भविष्यदत्त
पुण्यातिशय-वर्णन नामका यह आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

नौवाँ सर्ग

910 **जिनेशपादाम्बुजयुग्मषट्पदः।**
प्रियंवदः प्रीतिकरः प्रसन्नधीः।
श्रिया समालिङ्गितगाढविग्रहः,
स लक्ष्मणो नन्दतु पुत्र संयुतः।। 1।।

भ० जिनेन्द्र के चरणकमलद्वय के लिए भ्रमर के समान, मधुरभाषी, सभी से प्रेम-भाव रखने वाले, प्रसन्नबुद्धि एवं सौन्दर्य से समन्वित शरीर वाले श्रीमान् साहू-**लक्ष्मण** अपने पुत्र के साथ निरन्तर प्रसन्न-चित्त बने रहे।

911 **मनः समीहितान् भोगानभुञ्जानोऽथ निरन्तरम्।**
राजा भविष्यदत्तोऽसौ सुरनाथ इवाबभौ।। 2।।

मनोभिलसित सुख-भोगों को निरन्तर भोगते हुए वह राजा भविष्यदत्त इन्द्र के समान सुशोभित हुआ।

912 **स्मरं जिनागमं कुर्वन्त्रिकालं जिनवन्दनाम्।**
यथेच्छदानं मुनीन्द्रेभ्यस्त्रिवर्गं परिचिन्तयन्।। 3।।

वह राजा भविष्यदत्त त्रिकाल जिनेन्द्र-वन्दना करता हुआ जिनागमों का स्मरण करता था और धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग का चिन्तन करता हुआ मुनीन्द्रों को यथेच्छ दान देता रहता था।

913 **हरंश्चित्तानि लोकानां बिभ्रद्रत्नत्रयं हृदि।**
ब्रुवन् वाक्यं प्रियं कालं लीलया नयति स्म सः।। 4।।

लोगों के चित्त को आकर्षित करता हुआ हृदय में रत्नत्रय को धारण करता हुआ, प्रियं वाणी बोलता हुआ जब वह राजा भविष्यदत्त प्रमुदित मन

से अपना समय व्यतीत कर रहा था।

भविष्यानुरूपा गर्भ धारण करती है

914 यावत्तावद्धृतो गर्भः पुत्र्या भगवतस्तया।
सार्द्धं भविष्यदत्तेन प्रकामं रममाणया।। 5।।

तभी राज-पुत्री उस **भविष्यानुरूपा** ने राजा भविष्यदत्त के साथ रमण करते हुए गर्भ धारण किया।

915 तस्या दिनानुसारेण पद्माकर इवोदरम्।
ववृधे प्रहरच्चारुरोमराज्याबलित्रयम्।। 6।।

दिनोंदिन उसका उदर सुन्दर रोमराजि के साथ-साथ त्रिबलि को समाप्त करता हुआ पद्माकर (तालाब) के समान बढ़ने लगा।

916 अखिद्यतान्वहं तस्याः शरीरं हरिणीदृशः।
दुर्बलां तां निरीक्ष्याशु श्वश्रूः पप्रच्छ यत्नतः।। 7।।

उस हरिणाक्षी भविष्यानुरूपा का शरीर दिनों दिन पीताभ-क्षीण होने लगा, दुर्बल होती हुई उसे देखकर उसकी सास ने तत्काल ही यत्नपूर्वक धीरे-से उससे पूछा।

भविष्या० का दोहला-वर्णन

917 वर्त्तन्ते पुत्रि ते यानि दौहृदानि मनोन्तरे।
तानि मे कथय क्षिप्रं पूरयाम्यधुनैव ते।। 8।।

हे पुत्रि! तुम्हारे मन में जो भी दौहृद (गर्भकालिक इच्छाएँ) हों, उन्हें मुझसे तुरन्त कहो। मैं तुम्हारे लिए उन्हें इसी समय पूर्ण करूँगी।

918 न केनापि प्रकारेण सा बभाषे कृशोदरी।
दौहृदानि हि पृष्टाऽपि श्वश्र्वा सान्य जनेन च।। 9।।

सास एवं अन्य लोगों के द्वारा पूछे जाने पर भी उस लज्जालु-कृशोदरी ने किसी भी प्रकार से दौहृद-इच्छाएँ नहीं कहीं।

919 **चिन्तां हृदि प्रकुर्वाणा सान्यदाभाणि भूभृता।**
विधायाग्रहमत्यन्तं सुता भगवतः स्वयम्।। 10।।

—दूसरे दिन राजा भविष्यदत्त ने स्वयं ही मन में चिन्ता करती हुई उस भगवत्पुत्री गर्भिणी राजकुमारी भविष्यानुरूपा से अत्यन्त आग्रह करके कहा—

920 **यदस्ति दौहृदं किञ्चित् त्वदीये हृदये प्रिये।**
भाषसे यद्यदद्यैव तदहं पूरयामि ते।। 11।।

—"हे प्रिये! तुम्हारे हृदय में जो कुछ दौहृद (गर्भकालिक अभिलाषाएँ) हों और जो-जो तुम कहोगी, उन्हें आज ही मैं पूरा करूँगा।"

921 **जीवितेशवचः श्रुत्वा सा जगाद वराङ्गना।**
तदाननं सरोजाभं प्रपश्यन्ती प्रमोदतः।। 12।।

अपने प्राणनाथ (राजा भविष्यदत्त) का कथन सुनकर कमल के समान मुख वाले उसकी ओर देखती हुई प्रसन्नतापूर्वक उस सुन्दरी भविष्यनुरूपा ने कहा—

दोहला-पूर्ति जन्मभूमि तिलकपुर घूमकर ही सम्भव

922 **एवं जाने यदि स्वामिंस्तिलकाख्यपुरं त्वया।**
सुमित्रया च संयुक्ता पश्यामि निजचक्षुषा।। 13।।

—"हे स्वामिन्! यदि ऐसा ही है तो सुनिए, मैं आपके और **सुमित्रा** के साथ **तिलकपुर** को स्वयं अपनी आँखों से देखना चाहती हूँ।"

923 **ईदृशं दौहृदं कान्त ममास्ते हृदये सदा।**
अनया चिन्तया नक्तं दिवा प्राप्नोति नो सुखम्।। 14।।

—"हे कान्त! ऐसा ही दोहला मेरे हृदय में निरन्तर रहा है और इसी कारण मैं रात-दिन सुख प्राप्त नहीं कर पा रही हूँ।"

924 **तन्निशम्य महादुर्गं विचिन्त्य हृदि दौहृदम्।**
जगौ भविष्यदत्तोऽसौ प्रियाबोधनहेतवे।। 15।।

उस महादुर्गम स्वरूप कठिन दौहृद को हृदय में सोचकर उस भविष्यदत्त

ने अपनी प्रिया भविष्यानुरूपा को समझाने के लिए कहा—

925 **पूरयिष्यामि ते वाञ्छां प्रिये चित्तसमीहिताम्।**
मत्वेति तिष्ठ सौख्येन विमुच्य परिचिन्तनम्।। 16।।

—"हे प्रिये! तुम्हारी मनोभिलषित इच्छा को मैं अवश्य ही पूर्ण करूँगा। ऐसा समझकर तुम समस्त चिन्ताएँ छोड़कर सुखपूर्वक रहो।"

मनोवेग-विद्याधर का आगमन

926 **प्रबोध्य भामिनीं यावत्तच्चिन्तातुरमानसः।**
तस्थावसौ नृपस्तावत् कश्चिद्विद्याभृदाऽऽययौ।। 17।।

वह राजा भविष्यदत्त जब अपनी प्रिया को समझा-बुझाकर स्वयं चिन्ताकुल मन वाला हो रहा था कि तभी कोई **विद्याधर** उसके यहाँ आया।

विद्याधर का परिचय

927 **स प्रणम्य पुरः क्षिप्त्वा प्राभृतानि प्रभुं जगौ।**
भवन्तो गुरवोऽस्माकं ततस्तस्थौ वरासने।। 18।।

वह विद्याधर प्राभृतों (उपहारों) को भविष्यदत्त के सम्मुख रखकर और प्रणाम कर बोला— हे स्वामिन्, **'आप हमारे गुरु हैं'**, यह कहकर वह श्रेष्ठ आसन पर बैठ गया।

928 **विधाय विस्मयं चित्ते पप्रच्छ नृपतिः पुनः।**
कस्त्वं समागतः कस्माद्वयं ते गुरवः कथम्।। 19।।

तत्पश्चात् उस विस्मित राजा भविष्यदत्त ने उस गगनचारी से पूछा — "तुम कौन हो? कहाँ से आए हो और हम तुम्हारे गुरु किस प्रकार हुए?"

929 **नृपवाक्यं समाकर्ण्य निजगाद नभश्चरः।**
अहं विद्याधरो नाम्ना मनोवेगो मनोरथः।। 20।।

राजा का कथन सुनकर उस गगनचारी ने कहा — "मैं **मनोवेग** नामका मन की गति के समान गतिवाला **विद्याधर** हूँ।"

भविष्या० और विद्याधर का पूर्वजन्म का सम्बन्ध

930 नभस्तिलकतः स्थानात्समागतस्त्वदालये।
मम माता भवित्रीति ज्ञानिना मुनिनोदितम्।। 21।।

—"मैं **नभस्तिलक** नामक स्थान से आपके यहाँ आया हूँ। अपने दिव्य ज्ञान से जानकर ज्ञानी मुनिराज ने मुझसे कहा है कि—तुम्हारी गर्भवती प्रियतमा मेरी (पूर्वजन्म की) माता है।"

विद्याधर भविष्य० से आदेश माँगता है

931 अतोऽहमत्रसंप्राप्तः स्नेहतः क्रियते न किम्।
ममयोग्यस्त्वयादेशः सदा देयो दयावता।। 22।।

—"इसलिए मैं आपके यहाँ उपस्थित हो गया हूँ। स्नेह से क्या-क्या नहीं किया जा सकता? दया करके आप मेरे योग्य निरन्तर आदेश देते रहे।"

932 इत्युदीर्य पुरस्तस्य नरनाथस्य पृच्छतः।
स भूषाद्योतिताकाशो विररामनभश्चरः।। 23।।

राजा भविष्यदत्त के सम्मुख ऐसा कहकर तथा उससे पूछकर अपने अलङ्करणों से आकाश को स्फुरायमान करने वाला वह मनोवेग नामका विद्याधर वहीं रुक गया।

933 खचरस्य वचः श्रुत्वा बभाण पृथिवीपतिः।
श्रुयतां त्वत्पुरो हन्त ब्रवीमि स्वप्रयोजनम्।। 24।।

गगनधारी की बातें सुनकर राजा ने उससे कहा—"अहा, मैं अपना प्रयोजन तुम्हारे सम्मुख कहता हूँ, उसे सुनो।"

934 अकारी दौहृदं मात्रा त्वन्मातुर्ममकान्तया।
यादृशं तादृशं ब्रूमस्तवाग्रे शृगु सुन्दर।। 25।।

"हे सुन्दर! मेरी प्रिया और तेरी पूर्वजन्म की माँ ने अपने दौहृद की जैसी इच्छा व्यक्त की है, उसे मैं तुमसे कहता हूँ उसे सुनो।"

विशेष-विमान द्वारा तिलकपुर जाने की तैयारी

935 तिलकाख्यं पुरं द्रष्टुमिच्छतीयं स्वचक्षुषा।
निजजन्मभुवं भद्र तथा च सुखदायिनीम्।। 26।।

—"हे भद्र! यह स्वयं अपनी आँखों से **तिलकपुर** नामकी नगरी को, जो सुख देने वाली उसकी जन्मभूमि है। उसे देखना चाहती है।"

936 कथमेनां प्रियां तत्र नयामि नयनप्रियाम्।
अनया चिन्तया ग्रस्तस्तिष्ठाम्यहमनारतम्।। 27।।

—"मैं अपनी इस नयनप्रिय प्रिया को वहाँ कैसे ले जाऊँ? इसी चिन्ता में मैं निरन्तर डूबा रहता हूँ।"

937 इदमेवेह मे हन्त महदस्ति प्रयोजनम्।
इति ज्ञात्वा नयस्वास्मांस्तत्र वेगेन यत्नतः।। 28।।

—"हे विद्याधर, इस समय मेरा सबसे बड़ा प्रयोजन यही है। अतः इसे समझकर तुम हम लोगों को यत्नपूर्वक तेजी से वहाँ (तिलकपुर) ले चलो।"

938 भूपस्य वचनं श्रुत्वा प्रणम्य खचरो जगौ।
यद्भणन्ति भवन्तो मां तत्करोमि क्षणादहम्।। 29।।

राजा भविष्यदत्त का कथन सुनकर तथा उसे प्रणाम कर उस मनोवेग विद्याधर ने कहा—"आप मुझे जो आदेश दे रहे हैं, मैं उसे क्षण-भर में पूरा कर दे रहा हूँ।"

939 इत्युक्त्वा तेन तोषेण निजविद्याप्रभावतः।
अरचि प्रस्फुरद्रत्नैर्विमानं सुमनः प्रियम्।। 30।।

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त उस विद्याधर ने अपनी विद्या के प्रभाव से स्फुरायमान रत्नों के द्वारा देवों के लिए भी प्रिय लगने वाला एक विमान तैयार किया।

940 तन्निरीक्ष्य समाचक्षौ नृपः पश्य प्रिये-प्रिये।
विमानं सुन्दरं स्वर्गादिवायातं सुधाशिनाम्।। 31।।

उस विमान को देखकर राजा ने अपनी दोनों प्रियतमाओं से कहा — "हे प्रिये! देखो-देखो स्वर्ग से देवताओं का सुन्दर विमान ही मानों यहाँ आ गया है।"

941 तस्मिन्नवसरे नत्वा जिननाथं नरेश्वरः।
तत्र तस्थौ भविष्यानुरूपया मा सुमित्रया।। 32।।

उसी समय राजा भविष्यदत्त जिननाथ को प्रणाम कर अपनी दोनों प्रियतमाओं — भविष्यानुरूपा एवं सुमित्रा (मनोवेग विद्याधर की माँ) के साथ उस विमान में बैठ गया।

942 अथ भूपाज्ञया तेन मनोवेगखगामिना।
सोत्सवं प्रेरितं तस्मात्तद्विमानं नभोङ्गणे।। 33।।

तत्पश्चात् राजा भविष्यदत्त की आज्ञा के अनुसार मन की गति से चलने वाले उस मनोवेग नाम के विद्याधर ने उस विमान को आकाश में प्रमुदित चित्त होकर प्रेरित-संचालित किया।

विमान-यात्रा प्रारम्भ

943 उद्ग्रीवा नागरा व्योम विलोकन्ते स्म विस्मयात्।
बभाषिरे चिरोपात्त पुण्यस्यैतत्फलस्फुटम्।। 34।।

नागरिक जन आश्चर्यचकित होकर अपनी-अपनी ग्रीवाएँ ऊपर की ओर उठा-उठाकर आकाश की ओर देख रहे थे और कह रहे थे कि पूर्वजन्म में किए गए पुण्य-कर्मों का यह साक्षात् सुफल है, जो इन लोगों को मिला है।

944 तद्विमानं व्रजद्व्योम्नि विलङ्घ्य पयसांनिधिः।
नानातिर्यक्समाकीर्णं प्राप्य दुर्गं वनान्तरे।। 35।।

वह विमान आकाश में उड़ता हुआ, समुद्रों को लाँघकर विभिन्न प्रकार के वन्य पशु-पक्षियों से व्याप्त गहन दुर्गम-वन के मध्य में पहुँचा।

जन्मभूमि के परिचित स्थलों को देखकर भविष्या० प्रमुदित हो उठती है

945 **तत्रातिमुक्तकं वृक्षं विलोक्य पुरतो वने।**
जगौ भविष्यदत्ताख्यो निजभार्याद्वयं मुदा।। 36।।

उस दुर्गम-वन में सम्मुख आए **अतिमुक्तक** नामके वृक्ष को देखकर, प्रसन्नता से भरकर उस **भविष्यदत्त** ने अपनी दोनों भार्याओं से कहा—

946 **सोऽयं निरुद्धमार्तण्डो माधवीमण्डपः प्रिये।**
आवाभ्यां क्रीडितं यत्र दिनानि कतिचिद्भृशम्।। 37।।

हे प्रिये! सूर्यातप को रोककर शीतल सुखद छाया देने वाला यह वही **माधवीमण्डप** है, जहाँ हम दोनों ने कुछ दिनों तक लगातार विलास-क्रीड़ाएँ की थीं।

947 **पुनरग्रे तदाकाशे विलोक्य गगनस्पृशम्।**
प्राकारं भासुरं रत्नैः खगोऽवाचि महीभृता।। 38।।

पुनः आकाश-मार्ग में आगे चलकर स्फुरायमान रत्नों से प्रकाशित एक गगनचुम्बी प्राकार (कोट) को देखकर राजा भविष्यदत्त ने उस गगनचर विद्याधर से कहा—

948 **वयं संप्रस्थिता यत्र तदेतत्पुटभेदनम्।**
विमानं भो मनोवेग स्थापयस्व महीतले।। 39।।

—"हे विद्याधर मनोवेग, पहले जहाँ हम रहते थे, उसी निवास का यह द्वार आ गया है। अतः यहीं पृथिवीतल पर विमान को उतार दो।

विमान रोक दिया जाता है

949 **श्रुत्वा तद्वचनं तस्य महीपस्य खगामिना।**
विमानं विद्यया दध्रे प्राङ्गणे जिनवेश्मनः।। 40।।

उस राजा भविष्यदत्त का आदेश सुनकर गगनचर मनोवेग ने अपनी

सिद्ध-विद्या द्वारा विमान को जिनमन्दिर के प्राङ्गण में उतार दिया।

950 **समुत्तीर्य ततः कृत्वा भक्तितस्त्रिःप्रदक्षिणाः।**
चतुर्भिरपि शीर्षेण नतौ पादौ जिनेशिनः।। 41।।

उस विमान से उतरकर उन चारों ने भक्तिपूर्वक तीन परिक्रमाएँ करके शिर झुकाकर जिनस्वामी के चरणों में नमस्कार किया।

951 **चत्वारोऽपि ततो गत्वा स्नात्वा सरसि सुन्दरे।**
करे धृत्वा सरोजानि समायाता जिनालये।। 42।।

तत्पश्चात् उन चारों ने सुन्दर सरोवर में जाकर स्नान किया। फिर हाथों में कमल-पुष्पों को लेकर जिनालय में पहुँचे।

952 **अष्टाधिक सहस्रेण कलशानां सपायसाम्।**
विधाय मङ्गलाचारमभिषिक्तो जिनेश्वरः।। 43।।

एक हजार आठ दुग्ध से भरे कलशों द्वारा मङ्गलाचार पाठादि करके उन्होंने जिनेश्वर का अभिषेक किया।

953 **आत्मानं चक्रिरे पश्चात् पवित्रं गन्धवारिणा।**
चत्वारोऽपि सकर्पूरकुंकुमेन प्रमोदतः।। 44।।

इसके बाद उन चारों ने कर्पूर और कुंकुम मिश्रित सुगन्धित जल अर्थात् गन्धोदक लगाकर आमोदपूर्वक अपने को पवित्र किया।

954 **महाध्वजध्वजव्रातचन्द्रोदयवितानकैः।**
चञ्चत्ताराद्धताराभिश्चक्रे पूजा तकैस्ततः।। 45।।

तदनन्तर उन चारों ने महाध्वज एवं ध्वज-समूहों, श्वेतचन्द्रोदय वितानों से स्फुरित होते हुए तारा एवं अर्द्धताराओं से युक्त सामग्रियों द्वारा पूजा की।

अष्टद्रव्य-पूजा

955 **भर्मश्रृङ्गारमादाय भक्त्या ताभ्यां महीभृता।**
वितीर्णाः पयसां धारास्तिस्रः सर्वविदः पुरा।। 46।।

स्वर्णमयी झारी (भर्मभृंगार) लेकर राजा भविष्यदत्त ने अपनी दोनों

पत्नियों के साथ सर्वज्ञ-जिनेश्वर के सम्मुख जल की तीन धाराएँ छोड़ीं।

956 कर्पूरकुंकुमासारमिश्रितेन सुगन्धिना।
श्रीखण्डचन्दनेनाङ्घ्री लिप्तौ तेन जिनेशिनः।। 47।।

उस राजा ने कर्पूर एवं कुंकुमचूर्ण से मिश्रित सुगन्धित श्रीखण्डचन्दन से जिनस्वामी के दोनों चरणों में लेप किया।

957 शालीयैस्तण्डुलैर्दीर्घैरक्षताङ्गैः शशिप्रभैः।
चक्रे तेन जिनाधीशपादपद्मद्वयार्चनम्।। 48।।

निर्मल चाँदनी के सदृश शुभ, लम्बे-लम्बे और अखण्डित शालीय (साठी) धान्य के तण्डुलों से उस राजा ने जिनेन्द्रदेव के चरणकमलद्वय की पूजा की।

958 मन्दारैः कुमुदैः पद्मैर्गन्धाकृष्टमधुव्रतैः।
सौवर्णै राजतैः पुष्पैस्तेन पूजा कृतार्हतः।। 49।।

अपनी सुगन्ध से भ्रमर-समुदाय को आकृष्ट करने वाले मन्दार, कुमुद एवं कमल-पुष्पों तथा स्वर्ण एवं रजत-पुष्पों के द्वारा उस राजा ने अर्हत् भगवान् की पूजा की।

959 पक्वान्नैर्विविधाकारैः स्वर्णपात्राहितैः शुभैः।
जिनस्य पुरतस्तेन चरुभिर्विस्तृता बलिः।। 50।।

पवित्र, स्वर्णपात्रों में रखे गए विविध आकार-प्रकार के पक्वान्नों एवं चरु (नैवेद्य) के द्वारा उस राजा ने जिनस्वामी के सम्मुख पूजा की।

960 दीपानां निकरैर्दीपैः प्रदीपितदिगन्तरैः।
आरार्तिकं जिनेशस्य तेन चक्रे गतैनसः।। 51।।

दिग-दिगन्तों को प्रकाशित करने वाले दीप-समूहों के द्वारा उस राजा ने उन निर्दोष जिनेन्द्र देव की आरती उतारी।

961 धूपैस्तुरुष्ककर्पूरचन्दनागरुचूर्णजैः।
तेनाकारि जिनेन्द्रस्य धूपनं पदपद्मयोः।। 52।।

तगर (लोहबान) कर्पूर, चन्दन और अगरु के चूर्ण से बनी हुई धूप के

द्वारा राजा ने जिनेन्द्र के चरणकमलों को धूपित किया।

962 खर्जूरविल्वनारंगमोचाम्रबदरामलैः।
फलैस्तेन जिनेन्द्रस्य कृतार्चा पदकञ्जयोः।। 53।।

छुहारा, बेल, नारंगी, केला, आम और बेर आदि निर्मल फलों से उसने जिनस्वामी के चरण-कमलों की पूजा की।

963 आदाय चन्दनं नीरं साक्षतं कुसुमोत्करम्।
ततो भक्त्या जिनेन्द्रस्य मुक्तः पुष्पाञ्जलिः पुरः।। 54।।

इसके बाद चन्दन, जल, अक्षत, पुष्पादि पूर्णार्घ्य चढ़ाकर तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र के सामने पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

964 यथा महीभृता तेन पूजितो जिनपुङ्गवः।
तथा तस्येव भार्याभ्यां खेटेन च सुखैषिणा।। 55।।

जिस प्रकार उस राजा भविष्यदत्त ने जिननाथ की पूजा-अर्चा की, उसी प्रकार उसकी दोनों पत्नियों तथा सुखेच्छुक उस मनोवेग गगनचर ने भी जिननाथ की पूजा की।

965 चतुर्भिस्तैर्जिनेन्द्रस्य कृत्वार्चामतिभक्तितः।
आदौ जय-जयेत्युक्त्वा समारेभे ततः स्तुतिः।। 56।।

उन भविष्यदत्तादि चारों ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करके आरम्भ में जय-जय कहकर, फिर इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया।

स्तुति-गान और उसका फल

966 जय सर्वज्ञ तीर्थेश वीतरागजिनाधिप।
त्रिजगन्नाथ नागेन्द्र सुरेन्द्रनृपसंस्तुतः।। 57।।

—“हे सर्वज्ञदेव, आपकी जय हो, हे तीर्थेश, आपकी जय हो, हे वीतराग जिनेश्वर, आपकी जय हो, हे त्रिलोकीनाथ, आपकी जय हो, हे नागेन्द्र, नरेन्द्र एवं सुरेन्द्रों द्वारा संस्तुत देव, आपकी जय हो।”

967 **ये त्वदङ्घ्रियुगं नाथ पूजयन्ति त्रिधा गिरा।**
पूज्यन्ते ते सुरासारैरपि हारादिभूषणैः।। 58।।

—"हे नाथ! जो लोग आपके चरणयुगल की मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक पूजा-स्तुति करते हैं, वे हारादि आभूषणों से सुशोभित देवों के द्वारा पूजे जाते हैं।"

968 **त्वन्नामोच्चारणं देव कुर्वते ये मनस्विनः।**
गायन्ति किन्नरास्तेषां यशः सर्वत्र सस्वराः।। 59।।

—"हे देव! जो मनस्वी विवेकीजन आपके नाम का उच्चारणमात्र भी करते हैं, किन्नरगण सर्वत्र उनके यश का सस्वर गायन करते हैं।"

969 **ये त्वदाज्ञां जिनाधीशगृह्णन्ते नतमस्तकाः।**
नान्यथा क्रियते तेषां वचनं जातु जन्तुभिः।। 60।।

—"हे जिनाधीश! जो लोग आपकी आज्ञा को नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं, सभी जीव उनके वचन की कभी भी अवहेलना नहीं करते।"

970 **ये त्वदायातनान्युच्चैः कारयन्तीह भूतलेः।**
तेषां पुण्यफलासारगणना केन लम्यते?।। 61।।

—"हे देव, जो लोग इस भूतल पर आपके उत्तुंग एवं विशाल आयतनों (मन्दिर) के निर्माण करते हैं, उनके पुण्य-फलों की गणना भला किससे सम्भव है?"

971 **ये त्वदीयगुणान् वक्तुं समिच्छन्ति गिरा नराः।**
प्रगन्तुं ते समीहन्ते भुजाभ्यां पारमम्बुधेः।। 62।।

—"हे देव, जो लोग आपके गुणों को अपनी वाणी के द्वारा कहना चाहते हैं, वे मानों अपनी भुजाओं के बल से समुद्र पार जाना चाहते हैं।"

972 **ये तवाङ्घ्रिद्वयं देव स्मरन्ति मनसाऽनिशम्।**
न तान्व्यापादयन्त्युग्रा हरिव्याघ्रगजादयः।। 63।।

—"हे देव! जो लोग निरन्तर ही अपने मन से आपके चरणद्वय का

स्मरण करते रहते हैं, उन्हें सिंह, बाघ, हाथी आदि उग्र जीव भी नहीं मारते।"

973 ये त्वदग्रे नरा नित्यं नृत्यं गीतं च कुर्वते।
ते लभन्ते पदं नूनं सुनाशीरस्य दुर्ल्लभम्।। 64।।

—"और, हे देव, जो लोग भक्तिपूर्वक आपके सम्मुख निरन्तर ही नृत्य-गान आदि करते रहते हैं, वे निश्चय ही इन्द्र के दुर्लभ-पद को प्राप्त करते हैं।"

974 इति स्तुतिं विधायोच्चैः प्रणम्य शिरसा पुनः।
चत्वारोऽपि जनास्तस्माज्जग्मुरात्मनिकेतनम्।। 65।।

इस प्रकार उच्च स्वर से स्तुति करके, फिर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके वे चारों जन उस मन्दिर से निकलकर अपने घर को चल दिए।

प्रसन्नचित्त भविष्या० अपने स्थलों एवं वस्तुओं का परिचय देती है

975 मण्डन - क्रीडन - स्नानस्थानानि क्रमतः पुरः।
सुमित्राया भविष्यानुरूपा दर्शयति स्म सा।। 66।।

अपने घर (भवन) में पहुँचकर वह भविष्यानुरूपा सुमित्रा के लिए एक-एक करके अपने मण्डन, क्रीडन एवं स्नांन आदि के स्थानों को, दिखलाने लगी।

976 क्रीडास्थानानि सर्वाणि निरीक्ष्य निजवेश्मनः।
चत्वारोऽपि ततो जग्मुरुद्यानवनमुत्तमम्।। 67।।

अपने घर के सभी क्रीडास्थलों को देखकर वे चारों ही जब उत्तम उद्यान वन में पहुँचे —

977 ततोऽवाचि भविष्यानुरूपया जीवितेश्वरः।
नेत्रप्रान्तेन पश्यन्त्या निजपत्युर्मुखाम्बुजम्।। 68।।

— तभी अपने स्वामी के मुखकमल की ओर कटाक्षपूर्वक देखती हुई उस

भविष्यानुरूपा ने उनसे कहा—

978 अस्य चम्पकवृक्षस्य मूले प्रेमतया स्थितौ।
प्रसूनमयशय्यायां द्वावपि प्रमदान्वितौ।। 69।।

—"इसी **चम्पकवृक्ष** के नीचे हम दोनों ही पुष्प-शैया पर प्रेमपूर्वक लेटते थे।"

979 सोऽयं पिण्डीद्रुमो नाथ पुरा वै मत्पदाहतः।
विकासतां गतश्चित्रं प्रकुर्वंस्तवमानसे।। 70।।

—"हे नाथ! यह **अशोक-वृक्ष** (मदनवृक्ष) पहले मेरे चरणप्रहार से आहत होकर आपके मन में विचित्रता उत्पन्न करता हुआ विकसित हुआ था।"

980 सोऽयं चूततरुर्यस्य मञ्जरीषु षडंघ्रयः।
समाकृष्टा रजोगन्धैः संस्थिताः स्थिरविग्रहाः।। 71।।

—"यह वही **आम** का वृक्ष है, जिसकी मञ्जरियों पर उसकी रजोगन्ध से आकृष्ट भ्रमर-समूह स्थिर होकर बैठे रहते थे।"

981 अत्र नाथ शिखी केशकलापं मम सुन्दरम्।
वीक्ष्य ब्रीडां जगामाशु कुर्वन्नृत्यं यदृच्छया।। 72।।

—"हे स्वामिन्! यह वही **मयूर** है, जो यथेच्छ नृत्य करता हुआ मेरे केशपाश के सौन्दर्य को देखते ही तुरन्त लज्जित हो गया था।"

982 अत्र मां लीलया यान्तीं निरीक्ष्य तव सन्निधिम्।
राजहंसोऽनुलग्नो मे शिष्यो वा गतिहेतवे।। 73।।

—"यहाँ आपके साथ-साथ लीलापूर्वक मुझे चलते हुए देख-देखकर **राजहंस** पक्षी भी मेरी गति के ज्ञान के लिए शिष्य के समान ही मेरे पीछे-पीछे चलता था।"

983 अत्र न्यग्रोधशाखाग्रं यक्षाङ्गामोदवञ्चितः।
आवाभ्यां द्विरदो दृष्टः संस्पृशन् पाणिना मुहुः।। 74।।

—"यहाँ हम दोनों ने वह **हाथी** देखा था, जो **यक्षाङ्ग-कर्मद** की सुगन्ध

के सुख से वञ्चित होकर अपनी सूँड़ से **न्यग्रोधवृक्ष** की शाखा के अग्र भाग को बार-बार छू रहा था।

984 **अत्र रम्भागृहे द्वाभ्यामावाभ्यां रमितन्तथा।**
अगादवृद्धिं महास्नेहो नदीनाथस्तरां यथा।। 75।।

—"यहाँ इस **कदलीगृह** में हम दोनों ने इस प्रकार रमण किया था कि जिसके फलस्वरूप हम दोनों का प्रगाढ़ प्रेम उसी प्रकार बढ़ गया था, जिस प्रकार पूर्णमासी के दिन समुद्र-स्तर बढ़ जाता है।"

985 **जीवितेश द्रुमः सोऽयं देवदारुः समुन्नतः।**
यस्याधस्त्रुटितो हारो मदीयो मणिनिर्मितः।। 76।।

—"हे प्राणनाथ! यह वही **देवदारु** का विशाल वृक्ष है, जिसके नीचे मेरा मणिनिर्मित हार टूट गया था।"

986 **एषा सा नागवल्लीश यस्याः पर्णानि गृह्णती।**
अहमाकारिता रम्यं मन्दिरं गच्छता त्वया।। 77।।

—"हे स्वामिन्! यह वही **नागवल्ली** है, जिसके पत्तों को तोड़ती हुई मुझको रम्य भवन में जाते हुए आपने पुकारा था।"

987 **कोकिलानां स्वरं लोककर्णान्तरसुखप्रदम्।**
जीवितेश शृणूद्दामाभिमानपरिमर्दनम्।। 78।।

—"हे जीवितेश, यहाँ पर लोगों को कर्णान्तरसुख देने वाले तथा उनके उद्दामाभिमान को चूर्ण करने वाले **कोयलों** के मधुर-स्वरों को सुनिए।"

988 **प्रिय पश्य ततीर्हंस-सारसानां मनोहराः।**
वनस्पतिस्त्रियाहारयष्टीरिव समुज्ज्वलाः।। 79।।

—"हे प्रिय! **हंसों और सारसों** की इन मनोहर जोड़ियों को तो देखिए, जो वनस्पतिरूपी नायिका की समुज्ज्वल हारयष्टियों के समान सुशोभित हो रही हैं।"

989 सखि पश्य सुमित्रेऽत्र दृश्यते यद्यदुत्तमम्।
तत्तदङ्गं वनं चैतत् सिञ्चतीवामृताम्बुभिः।। 80।।

—"हे मेरी प्रिय सखि सुमित्रे! यहाँ जो उत्तम-उत्तम वस्तुएँ और यह वन दिखाई पड़ रहा है, उनसे मैं ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि मानों वे सब मेरे अङ्गों को अमृतजल से अभिषिक्त कर रहे हैं।"

990 इति भ्रान्त्वा वने दृष्टवा नानानोकहसंहतीः।
चत्वारोऽपि ततो जग्मुर्मन्दिरं मुदिताशयाः।। 81।।

इस प्रकार वन में घूमकर और विविध प्रकार के वृक्ष-समूहों को देखकर वे चारों ही प्रमुदित-मन से अपने घर जा पहुँचे।

991 तत्र तुष्ट्या भविष्यानुरूपा दर्शयति स्म सा।
नृप पुत्र्याः सुमित्रायाः कर्पूरस्य करंडकान्।। 82।।

वहाँ सन्तुष्ट मन वह भविष्यानुरूपा उस राजपुत्री सुमित्रा को कपूर के करण्डकों (डिब्बों) को दिखाने लगी।

992 चामराणि तथाच्छत्रं भृङ्गाराणि च दर्प्पणम्।
सुवर्णरौप्यमाणिक्य सद्वस्त्राभरणानि च।। 83।।

— साथ ही, चँवरों, छत्र, स्वर्णकलशों, दर्पण, सोना, चाँदी, माणिक्य, सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों को—

993 अन्यान्यपि मनोज्ञानि दिव्यशय्यासनानि च।
दर्शयामास सा साध्वी सुमित्रायाः पुरः स्वयम्।। 84।।

— *युग्मकम्*

— तथा अन्यान्य विशिष्ट मनोज्ञ दिव्य शैय्याओं एवं दिव्यासनों को भी उस साध्वी भविष्यानुरूपा ने स्वयं ही प्रत्यक्ष रूप में उस राजपुत्री सुमित्रा को दिखलाया। (युग्मक)

भविष्या० अपने भवन में जाकर
माता-पिता के चित्रों को प्रणाम करती है

994 चत्वारोऽपि गृहात्तस्मात् गतास्तत्र प्रसेदनः।
जननीजनकौ यत्र तिष्ठतो लेपनिर्मितौ।। 85।।

उस घर से निकलकर वे चारों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे जहाँ पर लेप निर्मित चित्र में माता-पिता प्रतिष्ठित थे।

995 मनोहरौ भविष्यानुरूपाया हरिणीदृशः।
प्रणतं तत्पदद्वन्द्वं तोषतस्तैरतन्द्रितैः।। 86।।

मृगनयनी उस भविष्यानुरूपा ने एवं सावधान-चित्त उन तीनों ने मनोहर उन माता-पिता के चरणों में प्रमुदित मन से प्रणाम किया।

दोहला पूर्ण करके भविष्या० जिन-मन्दिर पहुँचती है

996 तावालोक्य ततः सर्वे निर्गत्य तदगारतः।
सम्पूर्णदौर्हृदा जग्मुर्जिननाथ निकेतनम्।। 87।।

उन दोनों अर्थात् माता-पिता के दर्शन कर अपना दोहला पूर्ण करके वह भविष्यानुरूपा सभी के साथ उस भवन से निकली और जिनेन्द्र-मन्दिर में पहुँची।

वहाँ वह चारण-मुनियों का आशीर्वाद लेती है

997 अत्रान्तरे नागनरामरेन्द्रैः
खगेन्द्रवृन्दैरपि पूज्यपादौ।
तारापथात्तत्र गृहे जिनेन्द्रोः।
समीयतुश्चारणकौ मुनीन्द्रौ।। 88।।

इसी बीच नागेन्द्र, नरेन्द्र तथा अमरेन्द्रों द्वारा पूज्य तथा विद्याधरों द्वारा पूज्य-चरण दो चारण-ऋद्धिधारी मुनीन्द्र आकाश-मार्ग से उस जिनेन्द्र-मन्दिर में पधारे।

998 **कार्त्तस्वराम्भोरुहसन्निकासौ**
मलेन मुक्तौ सहसा चतुर्भिः।
भक्त्यान्वितैस्तैः शिरसा नतेन
प्रमोदयुक्तैः प्रणतौ तदङ्घ्री।। 89।।

स्वर्ण-कमल के सदृश और निर्मल शरीर वाले उन चारण-मुनीन्द्रों को प्रमुदित मन वाले उन चारों ने भक्तिभरित भाव से मस्तक झुकाकर उनके चरणों में नमस्कार किया।

999 **नागेन्द्रस्य नभश्चरस्य च सुराधीशस्य सौख्यं शुभम्,**
रामश्रीधर लक्ष्मणावनिभृतां लक्ष्मीं प्रदत्तेऽत्र यां।
सा दत्ताऽमलधर्मवृद्धिरशुभव्यापारभारोत्कर –
त्यक्ताभ्यां स्वकरं प्रसार्य सहसा ताभ्यां यतिभ्यां तदा।। 90।।

अशुभोपयोग-व्यापार तथा परिग्रह के भार-समूह से रहित, उन चारण-यतियों (मुनीन्द्रों) ने सहसा ही अपने हाथ ऊपर उठाकर, उन भविष्यदत्तादि के लिए, नागेन्द्रों, विद्याधरों तथा देवेन्द्रों के लिए भी शुभ-सुखकारी और श्रीधर (प्रस्तुत चरित काव्य के प्रणेता) राम तथा लक्ष्मण (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक) को भी यहाँ की लक्ष्मी प्रदान कराने वाला निर्मल धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद प्रदान किया।

....

इति श्रीभविष्यदत्त-चरिते विबुधश्रीधर विरचिते साधु
लक्ष्मणनामांकिते जिनवेश्मनि मुनिसमागमन
वर्णनं नाम नवमः सर्गः समाप्तः।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित एवं साहूलक्ष्मण के नाम से अङ्कित श्रीभविष्यदत्तचरितनामक महाकाव्य में 'जिनमन्दिर में मुनिसमागम वर्णन' नामका नौवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

दसवाँ सर्ग

1000 **यो बुद्धिविध्वस्तविपक्षपक्षः,**
शशाङ्कसंकाशयशोवलक्षः।
धर्मार्थकामप्रविचारदक्षः,
स लक्ष्मणो नन्दतु निर्जिताक्षः।। 1।।

जिसने अपनी कुशल-बुद्धि द्वारा विपक्ष अर्थात् एकान्तवादियों के पक्ष को विध्वस्त (पराजित) कर दिया है, जिसका यश पूर्णमासी के चन्द्रमा के सदृश निर्मल है, जो धर्म, अर्थ एवं काम-पुरुषार्थ के चिन्तन में चतुर है और जिसने इन्द्रिय-विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसा वह साहू लक्ष्मण (प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रेरक) निरन्तर स्वस्थ एवं प्रसन्न बना रहे।

1001 **अथोपविष्टमालोक्य मुनीन्द्रं जयनन्दनम्**
ज्येष्ठं ज्येष्ठशिलापृष्ठे वरिष्ठं साभिनन्दनम्।। 2।।

इसके बाद विशाल शिलापृष्ठ पर विराजमान ज्येष्ठ तथा बुद्धि से वरिष्ठ अभिनन्दन मुनिराज के साथ मुनीन्द्र जयनन्दन को देखकर—

चारण-मुनियों से भविष्यदत्त के प्रश्न :
कौन है यह मनोवेग-विद्याधर?

1002 **भक्त्या भविष्यदत्तस्तं पप्रच्छ नतमस्तकः।**
किमर्थं मामयं खेटो मनोवेगो निषेवते।। युग्मम्।। 3।।

—राजा भविष्यदत्त ने भक्तिपूर्वक नतमस्तक होकर उनसे पूछा—यह गगनचर विद्याधर मनोवेग मेरी सेवा क्यों कर रहा है? —*युग्मम्*

चारण-मुनीन्द्र का उत्तर

1003 श्रुत्वा तद्वचनं रम्यं बभाषे जयनन्दनः।
गम्भीरमधुरध्वानो भव्याम्भोजाभिनन्दनः।। 4।।

भविष्यदत्त के वचन सुनकर गम्भीर मधुर ध्वनि वाले तथा भव्य जनरूपी कमलों को विकसित करने वाले मुनीन्द्र **जयनन्दन** ने उत्तर में कहा—

1004 यदभीष्टं त्वया पृष्टं तदहं कथयामि ते।
एकाग्रं मानसं कृत्वा श्रूयतां पृथिवीपते।। 5।।

हे राजन्! जिस अभीष्ट प्रश्न को तुमने पूछा है, उसका उत्तर मैं देता हूँ। अपने मन को एकाग्र करके सुनो—

कम्पिलापुरी का राजा महानन्दन एवं मन्त्री विमलबुद्धि

1005 अत्रैव भरतक्षेत्रे विषये पल्लवाभिधे।
मनोज्ञमस्ति विस्तीर्णं काम्पिलाख्यं पुरं परम्।। 6।।

इसी **भरत-क्षेत्र** के **पल्लव** नामक देश में परम सुन्दर एवं विस्तृत **कम्पिला** नाम की नगरी है।

1006 पुरस्य तस्य दुर्गस्य श्रीनिवासस्य रक्षिता।
महानन्दनामाभून्नीतिमान्नरनायकः।। 7।।

महानन्दन नामका न्याय-नीतिपालक राजा, उस नगर के **श्रीनिवास** नामक **दुर्ग** का रक्षक हुआ।

1007 तस्य भूपस्य सञ्जातो मन्त्री मन्त्रविशारदः।
विमलोपपदो बुद्धिर्विशुद्धानूकसम्भवः।। 8।।

उस राजा महानन्दन का **विमलबुद्धि** नामक मन्त्री था, जो मन्त्रणा-कार्यों में निपुण एवं विशुद्धवंश में उत्पन्न हुआ था।

वासव ब्राह्मण के पुत्र-पुत्रियाँ

1008 तत्रैव नगरे जातो वासवाख्यो द्विजाग्रणीः।
अभूत् प्रियतमा तस्य सुकेशीति भुविश्रुता।। 9।।

उसी नगर में **वासव** नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए, जिनकी **सुकेशी** नामकी विश्वप्रसिद्ध प्रियतमा थी।

1009 तयोर्बभूवतुः पुत्रौ ख्यातिमन्तौ महीतले।
दुर्वागिति यथा ज्येष्ठः सुवागिति तथा परः।। 10।।

उन दोनों के पृथ्वी पर प्रसिद्धि-प्राप्त दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें से **दुर्वाक्** नामका बड़ा पुत्र तथा **सुवाक्** नामक छोटा पुत्र था। वे दोनों "यथा नाम तथा गुणः" के साक्षात् उदाहरण थे।

1010 त्रिवेदीति समाख्याता ततो जाता स्तनन्ध्या।
पीनोन्नतस्तनद्वन्द्वप्राग्भारा नतविग्रहा।। 11।।

इसके बाद उनकी **त्रिवेदी** नामकी एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो अपने पीन और उन्नत स्तनद्वय के भार से अल्पानतशरीरा दिखाई पड़ती थी।

अग्निमित्र पुरोहित का त्रिवेदी-कन्या के साथ विवाह—

1011 परिणीताऽग्निमित्रेण सा शशाङ्कसमानना।
पुरोहितेन विप्रेण त्रिवेदी मृगलोचना।। 12।।

वह चन्द्रमुखी मृगनयनी कन्या— **त्रिवेदी अग्नि-मित्र** नामक एक पुरोहित ब्राह्मण के साथ ब्याह दी गई।

राजा महानन्दन अग्निमित्र को दूसरे राजा के पास भेजता है

1012 प्रेषयामास तं राजा हितं मत्वा स्वमानसे।
समर्प्योपायनं नाना परचक्रे जनान्वितम्।। 13।।

उस राजा **महानन्दन** ने अपने मन में अपना हितकारी समझकर उस अग्निमित्र-पुरोहित को अनेक उपायन (उपहारों-भेंटों) सहित अनेक लोगों के

साथ **परचक्र** अर्थात् दूसरे राजा के पास भेजा।

सुवाक्-विप्र मन्त्री विमलबुद्धि को ज्योतिष-विद्या में पराजित कर देता है

1013 अथैकदा नृपस्याग्रे स मंत्री परिनिर्जितः।
ज्योतिश्शास्त्रविवादेन सुवाग्विप्रेण धीमता।। 14।।

और इधर, एक बार राजा महानन्दन के सामने ही उसका मन्त्री **विमलबुद्धि** ज्योतिषशास्त्र के वाद-विवाद में बुद्धिमान **सुवाग्** विप्र से पराजित हो गया।

मन्त्री प्रतिशोध की तैयारी करता है

1014 स विलक्षमना मन्त्री दध्यो हृदि दिवानिशम्।
सहमानो नितान्त्तं हि दुःसहामसुखसिकाम्।। 15।।

इस कारण अत्यन्त दुःसह-दुःख को सहता हुआ वह मन्त्री **विमलबुद्धि** रात-दिन उदास रहने लगा तथा उसने अपने मन में विचार किया, कि—

1015 भूपतेः पुरतस्तेन ब्राह्मणेन दुरात्मना।
ज्योतिष्शास्त्रावबोधेन ममनोऽभिखण्डितः।। 16।।

—"राजा **महानन्दन** के सामने ही उस दुष्ट ब्राह्मण-**सुवाक्** विप्र ने अपने ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान से मेरे मान को खण्डित कर मुझे अपमानित किया है"—

1016 यद्यहं दैवयोगेन प्राप्नोमि पटुतान्वितम्।
नैमित्तिकं नरं कञ्चित् सुवाङ्मानाभिमर्दनम्।। 17।।

—"अतः यदि मैं दैवयोग से उस **सुवाक्**-विप्र के मान को मर्दित करने वाले ज्योतिषशास्त्र में निपुण किसी नैमित्तिक ज्योतिषी (दैवज्ञ-व्यक्ति) को प्राप्त कर सकूँ।"—

1017 तदा पराभवो याति निर्गत्य हृदयान्मम।
यत्किञ्चिद् याचते मां स तत्तस्मै प्रददाम्यंहम्।। 18।।

—"तभी मेरे हृदय से पराभव का यह असह्य दुख निकलकर दूर हो

सकेगा। इसके बदले में वह मुझसे जो कुछ भी माँगेगा, मैं उसे वही दे दूँगा"।

1018 इति चिन्ताप्रपन्नेन भ्रमता तेन मन्त्रिणा।
नैमित्तिकागमज्ञाननदीनाथस्य पारगः।। 19।।

इस प्रकार चिन्ताग्रस्त उस मन्त्री **विमलबुद्धि** ने भ्रमण करते-करते नैमित्तिक आगम-शास्त्र-ज्ञान रूपी (ज्योतिषशास्त्र-ज्ञान-रूपी) समुद्र के पारगामी—

मन्त्री विमलबुद्धि की सुदर्शन-क्षुल्लक से भेंट

1019 मौनध्यानविशिष्टात्मा कुर्वन् यक्षस्य साधनम्।
सुदर्शनाभिधोऽदर्शि क्षुल्लको यक्षमन्दिरे।। 20।।

—युग्मकम्

—मौनपूर्वक ध्यान के अभ्यास से विशिष्ट आत्मा वाले एवं यक्ष की साधना करने वाले **सुदर्शन** नामके एक (दैवज्ञ-) **क्षुल्लक** को **यक्ष-मन्दिर** में देखा। — युग्मकम्

1020 तं निरीक्ष्य ययौ मन्त्री प्रमोदं सहसा तथा।
नभोऽङ्गणे पयोवाहं सूर्यतप्तो यथाशिखी।। 21।।

सहसा ही उस क्षुल्लक को देखकर वह मन्त्री **विमलबुद्धि** उसी तरह प्रसन्न हो उठा जिस प्रकार आकाश में मेघ को देखकर सूर्य के आतप से दुःखी मयूर प्रमुदित हो उठता है।

1021 तत्पद्द्वन्द्वमानम्य भक्तितः शिरसा ततः।
तस्थौ मन्त्री पुरस्तस्य क्षुल्लकस्य महात्मनः।। 22।।

भक्तिपूर्वक शिर झुकाकर उसके चरणों में प्रणाम करके वह चिन्ताग्रस्त मन्त्री उस महात्मा **क्षुल्लक** के सामने बैठ गया।

1022 योगावसानमासाद्य क्षुल्लकेनापि शर्मदम्।
दत्तमाशीर्वचस्तस्मै मन्त्रिणे मदनारिणा।। 23।।

योग-साधना की समाप्ति के बाद काम-विजेता उन **सुदर्शन** नाम के

क्षुल्लक ने भी उस मन्त्री को सुखदायक आशीर्वाद दिया।

मन्त्री अपनी व्यथा व्यक्त करता है

1023 ज्योतिश्शास्त्रविदं ज्ञात्वा क्षुल्लकं तं तदुक्तितः।
स नृपस्य पुरस्तेन मन्त्रिणा विनिवेदितः।। 24।।

उस मन्त्री ने क्षुल्लक के कथनानुसार ही उन्हें (क्षुल्लक को) ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता जान लिया और जाकर अपने राजा के सम्मुख इस प्रकार निवेदन किया —

1024 देव कश्चिद्वशी तीव्रतपोभूषणभूषितः।
आस्ते यक्षगृहे सर्वशास्त्रार्थप्रतिपादकः।। 25।।

—"हे देव! कोई जितेन्द्रिय, कठिन तपस्या रूपी भूषण से विभूषित, सभी शास्त्रों के अर्थ का प्रतिपादक विद्वान् यहाँ के **यक्ष-मन्दिर** में रहता है"।

1025 भक्तया नमन्ति ये पादौ व्रतिनस्तस्य मानवाः।
प्रयाति वृजिनं तेषां तमो वा तिमिरारितः।। 26।।

—"और हे देव, जो लोग भक्तिपूर्वक उस व्रती क्षुल्लक के चरणों में प्रणाम करते हैं, उनके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अन्धकार-समूह समाप्त हो जाता है।"

राजा महानन्दन जाकर क्षुल्लक के दर्शन करता है

1026 मन्त्रिवाक्यं समाकर्ण्य गत्वा तत्र नरेश्वरः।
ननाम क्षुल्लकस्यांघ्री शीर्षेण सपरिच्छदः।। 27।।

राजा **महानन्दन** ने अपने मन्त्री विमलबुद्धि का कथन सुनकर और सपरिवार यक्ष-मन्दिर में जाकर मस्तक झुकाकर क्षुल्लक के चरणों में प्रणाम निवेदित किया।

1027 **तेनाप्याशीनरिन्द्राय प्रदत्ता दुरितापहा।**
विधाय क्षुल्लकश्लाध्यं जगौ राजा नतस्ततः।। 28।।

उन क्षुल्लक ने भी राजा को जब पाप विनाशक आशीर्वाद दिया, तब राजा ने भी नतमस्तक होकर क्षुल्लक की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा –

1028 **भगवंस्त्वं त्रिकालज्ञः सर्ववस्तुविचारकः।**
अतो मम पुरो नाथ कथयस्व प्रसादतः।। 29।।

—"हे भगवान्! आप त्रिकालज्ञ एवं सभी वस्तुओं के विचारक विद्वान् हैं। अतः हे नाथ! कृपा करके मुझे यह बतावें कि"—

राजा का क्षुल्लक से प्रश्न

1029 **प्रहितो यो मया विप्रः परचक्रे नृपान्तिकम्।**
अग्निमित्रः स नाद्यापि समेति किन्नु कारणम्।। 30।।

—"मैंने अपने जिस **अग्निमित्र** नामके ब्राह्मण को **परचक्र** राजा के पास भेजा था वह आज तक भी नहीं लौटा है इसका क्या कारण है?"

1030 **शरीरस्य धनस्यापि कुशलं तस्य किं न वा।**
विधाय सर्वकार्याणि स कदात्रागमिष्यति।। 31।।

—"उस **अग्निमित्र ब्राह्मण** के शरीर और धन की कुशलता है, या नहीं? अपने सभी कार्यों को पूरा करके वह यहाँ कब तक लौट आएगा?"

क्षुल्लक का उत्तर

1031 **नरेन्द्रवचनं श्रुत्वा क्षुल्लको वचनं जगौ।**
स तत्र कुशलेनास्ति तद्वृत्तमधुना शृणु।। 32।।

राजा का जिज्ञासा भरा प्रश्न सुनकर उन **क्षुल्लक** महाराज ने अपने उत्तर में कहा – "आपका वह अग्निमित्र ब्राह्मण वहाँ कुशलपूर्वक है। अब आगे का उसका समाचार सुनिए"—

1032 प्राभृतानि समस्तानि वितीर्णानि महीभृते।
तेनाग्निमित्रविप्रेण तस्मै तत्र त्वदाज्ञया।। 33।।

—"हे राजन्, तुम्हारी आज्ञा के अनुसार उस **अग्निमित्र** विप्र ने वहाँ जाकर उस राजा को समस्त उपायन (उपहार) प्रदान कर दिए हैं" और—

1033 सोऽपि तस्मै द्विजेन्द्राय समदात्प्रीतियोगतः।
विचित्ररत्नसद्गन्धदिव्यवस्त्राश्वकुञ्जरान्।। 34।।

—"बदले में उस राजा ने भी प्रसन्नतापूर्वक उस ब्राह्मण-श्रेष्ठ अग्निमित्र को विचित्र रत्न, सुगन्धित दिव्यवस्त्र, घोड़े एवं हाथी भेंट-स्वरूप प्रदान किए हैं।"

1034 भूपति प्रहितो विप्रो यावदत्रैति हर्षतः।
अर्द्धमार्गे स दुष्टात्मा तावद्दुर्व्यसनैर्हृतः।। 35।।

—"किन्तु, जब वह ब्राह्मण उस राजा से विदा लेकर प्रमुदित चित्त होकर वापिस यहाँ लौट रहा था, तभी बीच रास्ते में वह दुष्टात्मा दुर्व्यसनों में फँस गया है।"

1035 द्यूतवेश्याप्रसक्तेन तेनाकुलितचेतसा।
नृपदत्तं समस्तं तं नीतं निधनतां धनम्।। 36।।

"जुआ एवं वेश्या का उसे व्यसन लग गया। उनसे आकुलित-चित्त होकर उस ब्राह्मण ने उस राजा के द्वारा प्रदत्त समस्त धन उसमें समाप्त कर दिया।"

1036 एष्यतीह गतैः पंचदशभिर्वासरैः स्फुटम्।
स दुष्टोऽनिष्टकृत् म्लानमुखो द्रव्यविवर्जितः।। 37।।

—"दुष्ट, अनिष्टकारी, धन से रहित एवं उदास मुख वाला वह अग्निमित्र पन्द्रह दिन व्यतीत होते ही यहाँ अवश्य आ जाएगा।"

1037 तद्वचः सुन्दरं श्रुत्वा प्राणिपत्य पदद्वयम्।
क्षुल्लकस्य नराधीशः समगान्निजमन्दिरम्।। 38।।

क्षुल्लक के उस सुन्दर कथन को सुनकर वह राजा उसके चरणों में प्रणाम कर अपने भवन को वापिस लौट आया।

राजा महानन्दन सुवाक्-विप्र से भी वही प्रश्न करता है

1038 सुवाग्विप्रो नरेन्द्रेण समानीय निजान्तिकम्।
वासवस्याङ्गजः पृष्टः कौतुकाद्व्यग्रचेतसा।। 39।।

चञ्चल मन होने के कारण उस राजा ने वासव-पुत्र **सुवाक्** ब्राह्मण को भी अपने समीप बुलाकर कौतूहलपूर्वक उससे पूछा—

1039 अग्निमित्राख्यया ख्यातो विप्रो मम पुरोहितः।
यो मया प्रेषितः कार्ये स कदैता निवेदय।। 40।।

—"**अग्निमित्र** ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध जो मेरे पुरोहित हैं, उन्हें मैंने कार्यवशात् बाहर भेजा है। वे कब तक लौटेंगे? आप बताइए।"

सुवाक्-विप्र का उत्तर

1040 नृपादेशात्ततोऽवाचि सुवाग्विप्रेण सप्तमे।
वासरे स समादाय प्रचुरं धनमेष्यति।। 41।।

राजा के आदेश से उस सुवाक् विप्र ने अपने उत्तर में कहा—"वह सातवें दिन प्रचुर मात्रा में धन लेकर लौट आएगा।"

1041 ययुर्दिनानि सप्तापि त्रयोदश-चतुर्दश।
अग्निमित्रः स भूदेवस्तथापि न समागतः।। 42।।

सात दिन बीत गए, यहाँ तक कि तेरह और चौदह दिन भी बीत गए, फिर भी, वह ब्राह्मण अग्निमित्र (भूदेव) लौटकर नहीं आ पाया।

1042 यद्दिनं क्षुल्लकेनोक्तं तस्मिन्नहनि निर्द्धनः।
समाययौ कुधीरग्निमित्रनामा पुरोहितः।। 43।।

क्षुल्लक ने जिस दिन उसके लौटने की भविष्यवाणी की थी, उसी दिन

निर्धन होकर कुबुद्धि वह **अग्निमित्र पुरोहित** लौटकर आ गया।

सुवाक् की भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हुई

1043 ज्ञात्वा तमागतं राज्ञा भणित्वा निजकिङ्किरान्।
सुवाग्नैमित्तिकस्याशु निजद्वारं निवारितम्।। 44।।

उस अग्निमित्र को आया हुआ जानकर राजा **महानन्दन** ने अपने सेवकों को आदेश देकर **सुवाग्** नामक नैमित्तिक (दैवज्ञ) के लिए अपना द्वार बन्द करा दिया।

1044 पुरोहितोऽग्निमित्राख्यो दुर्वचोभिस्तिरस्कृतः।
तयोर्द्वयोपरि क्रोधाद्वृत्तिः सर्वापहारिता।। 45।।

अग्निमित्र नामक उस राजपुरोहित को भी दुर्वचनों द्वारा अपमानित करके क्रोधित राजा ने उन दोनों (अर्थात् अग्निमित्र एवं सुवाक् विप्र) की वृत्ति (अर्थात् वेतन तथा आर्थिक सहायता आदि) भी छीन ली।

क्षुल्लक की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई
अतः उन्हें सम्मानित किया गया

1045 अथ ज्ञात्वा गुणं तस्य क्षुल्लकस्य गुणाम्बुधेः।
धृत्वा स्यन्दनहस्त्यश्वस्वर्णवस्त्राणि तत्पुरः।। 46।।

तत्पश्चात् गुणों के सागर उन क्षुल्लक महाराज के निमित्त-ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट गुण को जानकर उनके सामने रथ-हाथी-घोड़े, स्वर्ण-वस्त्रादि रखकर—

1046 ततोऽवाचि नरेन्द्रेण क्षुल्लकोऽखिलकार्यवित्।
द्रव्यपूजामिमां साधो गृहाण मम भक्तितः।। 47।।

—युग्मकम्

—राजा महानन्दन ने सम्पूर्ण कार्यों के ज्ञाता उन साधक क्षुल्लक से कहा—"हे साधो! भक्ति-भावना से प्रस्तुत की गई मेरी इस द्रव्य-पूजा को स्वीकार कीजिए।"

1047 **जीर्णतृणसमं दृष्ट्वा तद्धनं सकलं ततः।**
नरनाथप्रबोधाय क्षुल्लको जगदे वचः।। 48।।

तब उन क्षुल्लक ने राजा द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण धन को सूखी घास के समान देखकर उन्होंने उन्हें संबोधित करते हुए कहा—

1048 **परिग्रहस्य सर्वस्य निवृत्तिर्मयका कृता।**
इमां गृह्णाति यः पूजां तस्मै त्वं देहि भूपते।। 49।।

—"हे राजन्! मैंने सभी प्रकार के (दान) परिग्रह से निवृत्ति ले ली है। अतः जो व्यक्ति इस पूजा-परिग्रह को स्वीकार करे उसे तुम स्वयं अपने हाथों से दे दो।"

1049 **नाहं गृह्णामि राजेन्द्र परं शृणु ब्रवीमि ते।**
यदीच्छसि महत्पुण्यं तदा दत्त्वा स्वपाणिना।। 50।।

—"हे राजेन्द्र! मैं तो कोई भी परिग्रह ग्रहण नहीं करता, किन्तु मैं तुम्हें जो कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो! यदि तुम सचमुच ही बड़ा पुण्य अर्जन करना चाहते हो, तो स्वयं अपने हाथों से दान देकर"—

प्रमुदितचित्त राजा दानादि देकर अनेक जिनमन्दिर बनवाता है

1050 **आहाराभयशास्त्राणि सर्वज्ञायतनानि च।**
नन्दनानि मनोज्ञानि कारापय नरेश्वर।। 51।।

युग्मकम्

—"हे नरेश्वर! आहार-दान, अभय-दान एवं शास्त्र-दान देकर सुन्दर-सुन्दर चैत्य-वन-उद्यान एवं जिन-मन्दिरों का निर्माण कराओ।" —*युग्मक्*

1051 **सम्यक्त्वपूर्वं पंचाणुव्रतानि त्वं गृहाण भोः।**
लभसे येन सौख्यानि बहुभिः किं प्रभाषितैः।। 52।।

"हे राजन्! तुम सम्यक्त्वपूर्वक पञ्चाणुव्रत ग्रहण करो, जिससे सभी सुखों को प्राप्त करोगे। अधिक कहने से क्या लाभ"?

1052 यदेवाभिहितं तेन क्षुल्लकेन मनीषिणा।
तदेव सकलं राजा कारयामास तत्क्षणात्।। 53।।

उस मनीषी सुदर्शन क्षुल्लक ने जो-जो करने को कहा, वह-वह उस राजा ने सब कुछ तत्काल किया—कराया।

दुखी सुवाक्-विप्र क्षुल्लक के पास पहुँचता है

1053 विमनस्कमना विप्रः स सुवागू वासवाङ्गभूः।
ययौ सुदर्शनस्यान्तं सव्रीडो विगतप्रभः।। 54।।

और इधर, कान्तिविहीन उदास मन वाला, वह **वासवपुत्र**—सुवाक् विप्र अत्यन्त लज्जित होता हुआ उन सुदर्शन क्षुल्लक के समीप गया।

1054 तत्पदद्वन्द्वमानम्य जगाद स सुवागू वचः।
नेत्रोदबिन्दुधाराभिरभिषिक्तनिजाननः।। 55।।

नेत्रों की जलबिन्दु-धारा से अपने मुख को अभिषिक्त करते हुए उस विप्र सुवाक् ने उन क्षुल्लक के चरणों में प्रणाम कर कहा—

1055 आदावासं प्रशस्योऽहं नन्दनीयो महीभृता।
इदानीं पूर्वजन्मात्तगुरुकर्मविपाकतः।। 56।।

—"पहले मैं राजा महानन्दन के द्वारा प्रशंसित एवं अभिनन्दित था, किन्तु इस समय पूर्वजन्म में किए गए महान् पाप कर्मों के फल से"—

1056 निःसारितो नरेन्द्रेण क्रुधाऽहं निजवेश्मनः।
अपाकृता च वृत्तिर्मे महामानोऽभिमर्दितः।। 57।।

—युग्मकम्

—"क्रोधित हुए उसी राजा के द्वारा अपने घर से निकाल दिया गया हूँ और मरी वृत्ति (आर्थिक सहायता आदि) भी छीन ली गई तथा मेरी प्रतिष्ठा भी समाप्त कर दी गई है।"

1057 **जन्मान्तरेऽपि मा स्म भूत् कोऽपीह मनुजो विभो।**
मत्समानो महादुःखपीडितात्मा महीतले।। 58।।

—"हे सर्वज्ञ क्षुल्लक, इस पृथिवी-मण्डल पर अन्य कोई भी मनुष्य जन्म-जन्मान्तर में भी मेरे समान महादुःखी न होवे।"

1058 **मन्येऽहं मनसा नाथ किं प्रविश्य हुताशने।**
असून् मुञ्चामि किं हन्मि स्वदेहं निशितासिना।। 59।।

—"हे नाथ! मैं अपने मन में ऐसा सोचता हूँ कि प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश करके क्या अपने प्राणों को त्याग दूँ? अथवा क्या तेज तलवार से आत्महत्या कर लूँ?"

क्षुल्लक-सुदर्शन द्वारा हताश सुवाक्-विप्र के लिए उपदेश : अनुप्रेक्षा विचार

1059 **विप्रवाक्यं समाकर्ण्य निजगाद सुदर्शनः।**
मर्त्तव्यं न विधानेन प्राणत्यागं कुरु द्विज।। 60।।

उस विप्र सुवाक् का कथन सुनकर **सुदर्शन** क्षुल्लक ने कहा —"हे द्विज, इस प्रकार से प्राण-त्याग करने का विचार मत करो।"

1060 **आत्मघातेन ये मूढ़ा म्रियन्ते मतिवर्जिताः।**
ते व्रजन्ति मृताः सन्तस्तिरश्चां योनिमङ्गिनः।। 61।।

—"क्योंकि जो बुद्धिहीन मूर्ख लोग आत्मघात करके प्राण-त्याग करते हैं, वे लोग मरकर तिर्यञ्चों अर्थात् पशु-पक्षियों की योनि को ही प्राप्त करते हैं।"

1061 **भूतले सुखदुःखस्य न दाता कोऽपि देहिनाम्।**
यदेवात्तं पुराकर्म्म तदवश्यं प्रभुज्यते।। 62।।

—"इस पृथ्वी-मण्डल पर जीवों के लिए सुख-दुःख देने वाला कोई नहीं है, अपने पूर्वजन्म में जीव जैसे-जैसे कर्म करता है, उन्हीं का फल-भोग वह इस जन्म में अवश्य करता है।"

1062 धर्माद्भवन्ति सौख्यानि दुःखान्यशुभकर्मतः।
मत्त्वेति मानसे धीमान्विदधाति सदा वृषम्।। 63।।

—"धर्म से सुख तथा अशुभ-कर्म से दुःख उत्पन्न होते हैं। अपने मन में ऐसा विचार कर ज्ञानी-विवेकी पुरुष सदा धर्माचरण ही करता है।"

1063 धर्म्मं बिनाऽत्र सौख्यानि ये समिच्छन्ति दुर्द्धियः।
ते धान्यानि बिना बीजं समीहन्ते तनूभृतः।। 64।।

—"जो दुर्बुद्धि लोग धर्म के बिना इस पृथिवी पर सुख चाहते हैं, वे शरीरधारी बीज के बिना ही धान्योत्पत्ति की इच्छा करते हैं।"

1064 तस्माद्धर्म्मं कुरुष्व त्वं स्थिरीभूय सुखावहम्।
लभसे येन सौख्यानि चिन्तितानि भवे-भवे।। 65।।

—"इसीलिए अब हे विप्र, तुम स्थिर चित्त होकर सुखकारक धर्म करो। ऐसा करने से प्रत्येक जन्म में तुम इच्छित सुखों को प्राप्त करोगे।"

1065 अन्यदप्यग्रतस्नेहं किञ्चिद्वच्मि शृणु द्विज।
हिताय भव्यलोकानां यतते को न शुद्धधीः।। 66।।

—"हे द्विज, स्नेहपूर्वक मैं तुम्हारे लिए कुछ और भी कहता हूँ, क्योंकि ऐसा कोई शुद्ध-बुद्धि विवेकी-जन नहीं है, जो भव्यजनों के हित के लिए प्रयत्न न करे।"

1066 संसारोऽयमसारो हि सर्वदा सर्वदेहिनाम्।
सर्वविद्भिः परिज्ञातः कदलीगर्भवद् भृशम्।। 67।।

—"सभी शरीरधारियों के लिए यह संसार निरन्तर ही असार है। सर्वज्ञों ने इसे (संसार को) कदली-गर्भ के समान सारहीन माना है।"

1067 अर्थाः पादरजस्तुल्याः सन्ध्यारागोपमं सुखम्।
शारदाभ्रसमाकारं जीवितं जगदङ्गिनाम्।। 68।।

—"भौतिक सम्पदाएँ चरणरज के समान, भौतिक-सुख सायंकालिक

लालिमा के समान क्षणिक् एवं सांसारिक जीवों के जीवन शरत्कालिक मेघ के समान क्षणभंगुर हैं।"

1068 **पुत्रमित्रकलत्रादि संयोगाः सुखहेतवे।**
पवनप्रेरिताः शुष्कपर्ण पुञ्जा इवाङ्गिनः।। 69।।

—"इस संसार में मनुष्य के लिए पुत्र-मित्र-कलत्रादि का सुखद-संयोग भी पवन-प्रेरित उड़ते हुए सूखे पत्तों के समान क्षणिक् हैं।"

1069 **हस्त्यश्वरथपादातिकोशदेशादिकाः श्रियः।**
सर्वाः स्वप्नसमाकाराः क्षणदृष्टतिरोहिताः।। 70।।

—"हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल-सेना, कोश और राज्यादि लक्ष्मियाँ भी क्षण-भर में दिखाई पड़कर स्वप्न के समान ही नष्ट हो जाने वाली हैं, अर्थात् सभी अनित्य हैं।"

1070 **यथैकस्मिंस्तरौ स्थित्वा शकुन्ता दिवसात्यये।**
प्रातर्दश दिशो यान्ति कर्मोदयवशाद् ध्रुवम्।। 71।।

—"जिस प्रकार पक्षिगण एक ही वृक्ष पर सन्ध्याकाल में आकर रात्रि-विश्राम करके, प्रातःकाल होते ही अपने-अपने कार्यों के अनुसार चले जाते हैं।"

1071 **तथा पुत्रसुहृदबन्धुनप्तृभार्यासहोदराः।**
अवाप्योत्पत्तिमेकत्र यान्ति भूयः स्वकर्मतः।। 72।।

—"ठीक उसी प्रकार पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धव, नाती-पोते, पत्नी एवं सहोदर-भाई एक ही स्थान-परिवार में जन्म लेकर भी फिर अपने-अपने किए गए कर्मों के अनुसार जन्मान्तरों में उनके फल प्राप्त करते हैं।"

1072 **संसारमिति विज्ञाय तपस्तीव्रं चरन्ति ये।**
धन्यास्त एव लोकेऽत्र त एवं बुधशंसिताः।। 73।।

—"इस संसार को असार और अनित्य जानकर जो-जो विवेकशील

प्राणी उग्र तप करते हैं, वे ही इस लोक में धन्य हैं तथा वे ही सुधी जनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त करते हैं।"

1073 भुक्त्वा त्रिलोकनाथानां सुखानि क्रमतः पुनः।
त एव यान्ति निर्वाणं शाश्वतं परमं पदम्।। 74।।

—"वे ही धार्मिक त्रिलोकीनाथों के क्रम से सुखों को भोगकर, पुनः वे ही शाश्वत परम पद-मोक्ष को प्राप्त करते हैं।"

1074 सुदर्शनवचः श्रुत्वा चिन्तयामास भूसुरः।
सत्यं विनश्वरः सर्वो जगतो वस्तुविस्तरः।। 75।।

उन **सुदर्शन क्षुल्लक** का उपदेश सुनकर उस विप्र ने गम्भीर चिन्तन किया कि सचमुच ही "संसार का यह समस्त वस्तु-विस्तार विनश्वर है"—

सुवाक्-विप्र का हृदय-परिवर्तन : वह दीक्षा ले लेता है

1075 किमनेन प्रसादेन नृपस्य किं सुबन्धुभिः।
स्वार्थे कनिष्ठचेतोभिः किं धनेनापि नाशिना।। 76।।

—"अतः राजा के प्रसन्न होने या न होने से मेरा क्या प्रयोजन? स्वार्थ में हीन-चित्त वृत्ति वाले सुबन्धु-बान्धवों से मेरा क्या प्रयोजन? और नश्यमान धन-सम्पत्ति से भी मेरा क्या प्रयोजन?"

1076 विदधामि तपस्तीव्रं प्रणम्यैनं सुदर्शनम्।
निःसंगीभूय येनाशु प्राप्नोमि शिवमन्दिरम्।। 77।।

उस विप्र ने सुदर्शन क्षुल्लक को प्रणाम किया तथा विचार किया कि —"अब मैं समस्त परिग्रह का त्याग कर उग्र तपस्या करूँगा जिससे कि शीघ्र ही शिव-मन्दिर (मोक्ष) को प्राप्त कर सकूँ।"

1077 विचिन्त्यैतच्चिरं चित्ते प्रणिपत्य जिनाधिपम्।
केशापनयनं कृत्वा स दीक्षां क्षौल्लकीं श्रितः।। 78।।

दीर्घकाल तक अपने मन में चिन्तन कर जिनेन्द्र को प्रणाम कर, केशों

का लुञ्चन कर उसने क्षुल्लक-पद की दीक्षा ग्रहण कर ली।

1078 **तं निजं तनुजं वीक्ष्य तपोलक्ष्मीविभूषितम्।**
सुकेशी ब्राह्मणी नत्वा जिनं तद्व्रतमाश्रिता।। 79।।

तपोलक्ष्मी से विभूषित अपने पुत्र **सुवाक्** को देखकर उसकी माता **सुकेशी** ब्राह्मणी ने भी जिनस्वामी को नमस्कार कर **क्षुल्लिका-व्रत** धारण कर लिया।

उनके विविध जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन

1079 **कृत्वा घोरं तपस्तौ द्वौ कालेन बहुना ततः।**
जग्मतु प्रथमं स्वर्गं मुक्त्वा प्राणानुसमाधिना।। 80।।

उन दोनों ने ही दीर्घकाल तक घोर तपस्या की और समाधि के द्वारा प्राणों को त्यागकर उन्होंने प्रथम (सौधर्म) स्वर्ग प्राप्त किया।

1080 **सुकेशीति पुरा याऽसीत् सुरो जातो रविप्रभः।**
यः सुवागिति विख्यातः स बभूव शशिप्रभः।। 81।।

पूर्वजन्म में जो **सुकेशी** ब्राह्मणी थी, वही स्वर्ग में जाकर **रविप्रभ** नामका देव हुई और **सुवाक्** नाम से प्रसिद्ध जो विप्र था, वह स्वर्ग में जाकर **शशिप्रभ** देव हुआ।

1081 **द्वौ सप्तहस्तमात्रांगौ द्विसागरमितायुषौ।**
अणिमादिगुणोपेतावपेतौ सप्तधातुभिः।। 82।।

वे दोनों ही सप्तहस्त-प्रमाण-शरीर वाले दो सागर-प्रमाण आयु वाले अणिमा आदि आठ ऋद्धियों से समृद्ध तथा सप्तधातुओं से रहित शरीर वाले थे।

1082 **आयुः क्षयात्ततश्च्युत्वा सुरावासाद्रविप्रभः।**
वर्तते तव कान्तायाः गर्भे संक्रमितोऽधुना।। 83।।

—"वही **रविप्रभ-देव** अपनी देवायु पूर्णकर उस स्वर्ग से चयकर अभी तुम्हारी (भविष्यदत्त की) कान्ता (भविष्यानुरूपा) के गर्भ में आया है।"

1083 स भविष्यति ते पुत्रः पवित्रो धर्मकर्मणा।
वदान्यो नीतिमान् मान्यो मनोज्ञो मदमर्दनः।। 84।।

—"वह गर्भस्थ शिशु धर्म-कर्म से पवित्र आज्ञाकारी, उदार, नीतियुक्त, सम्माननीय, मनोज्ञ तथा शत्रुओं के अहंकार को नष्ट करने वाला होगा।"

1084 विजयार्द्धेऽथ शैलेऽस्ति नगरं नागरान्वितम्।
सर्वत्र विदितं नाम्ना नभस्तिलकमुत्तमम्।। 85।।

—"और, **विजयार्द्ध-पर्वत** पर नागरिकों से युक्त **नभस्तिलक** नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध एक उत्तम नगर है"।

1085 वायुवेगोऽभवत्तत्र खेटो विद्याभृतां पतिः।
विद्युद्वेगाख्यया ख्याता समभूत्तस्य भामिनी।। 86।।

—"उसी **नभस्तिलक** नगर में विद्याधरों का राजा **वायुवेग** नामक एक विद्याधर रहता था, जिसकी पत्नी **विद्युद्वेगा** नाम से प्रसिद्ध थी"—

1086 तयोरयं सुतो जातो मनोवेगसमाह्वयः।
यः सुवाक्चर इत्यासीद् देवः स्वर्गे शशिप्रभः।। 87।।

—"और सुवाक् नामका जो ब्राह्मण स्वर्ग में शशिप्रभ नामक देव हुआ था, वही उन दोनों (वायुवेग तथा विद्युद्वेगा) के **मनोवेग** नामके पुत्र के रूप में यहाँ उत्पन्न हुआ है"—

1087 अस्याग्रे मुनिनाऽभाषि विमलावधिचक्षुषा।
द्वीपेऽस्मिन् भरतक्षेत्रे हस्तिनाख्य पुरे वरे।। 88।।

इसी मनोवेग-विद्याधर के सम्मुख निर्मल (सम्यक्) अवधिज्ञानधारी मुनि ने कहा—"इसी **जम्बूद्वीप** के भरत-क्षेत्र में **हस्तिनापुर** नामका नगर है। वहीं पर"—

1088 भविष्यदत्तकान्ताया गर्भे पुण्यप्रभावतः।
हन्त! संक्रमितो जीवो जनन्यास्तव वर्त्तते।। 89।।

—"पूर्व जन्म के पुण्य के प्रभाव से **भविष्यदत्त** की कान्ता **भविष्यानुरूपा**

के गर्भ में तुम्हारी माँ का जीव उपस्थित हो गया है।"

1089 **अमुना मुनिवाक्येन मनोवेगेन धीमता।**
हस्तिनाख्यपुरं गत्वा दृष्टस्त्वं गृहिणीयुतः।। 90।।

—"उन मुनिराज की भविष्यवाणी के अनुसार ही बुद्धिकुशल वह विद्याधर मनोवेग **हस्तिनापुर** गया और अपनी पत्नी सहित आपके दर्शन किए"—

1090 **अद्यापि मानसे पूर्वजन्ममातृगुणान्वहन्।**
स्मरत्येष यतस्तस्मात् प्रश्रयं विद्धाति वः।। 91।।

—"आज भी यह पूर्वजन्म के मातृगुणों को धारण करता हुआ अपने मन में जिस कारण से स्मरण करता है उसी कारण से वह तुम लोगों की सेवा-विनय भी कर रहा है"—

1091 **दुर्वागविप्रो भवे भ्रान्त्वा नानायोनिषु कृच्छ्रतः।**
समीपे सुरशैलस्य समभूत् स शयुर्महान्।। 92।।

—"और **दुर्वाक्** नामक वह विप्र संसार में विभिन्न प्रकार की योनियों में दुख भोगता हुआ भ्रमण कर **सुमेरु-पर्वत** के समीप महान् **अजगर-सर्प** हो गया है"—

1092 **अग्निमित्रो द्विजो मृत्वा प्रविश्याग्नौ सभार्यकः।**
अभूच्छिखी त्रिवेदी च तद्भार्याऽभून्मयूरिका।। 93।।

—"और वह **अग्निमित्र** ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ अग्नि में प्रवेश कर जल मरा और मयूर-योनि में उत्पन्न हुआ। उसकी पत्नी **त्रिवेदी** भी मरकर मयूरी के रूप में उत्पन्न हुई"।

1093 **अथास्ति तापसः ख्यातो नाम्ना बहुजटः स्मृतः।**
सुमाला गेहिनी तस्य सस्नेहा प्रियवादिनी।। 94।।

—"तदनन्तर **बहुजट** नाम से प्रसिद्ध एक तापस था, जिसकी पत्नी का नाम था—**सुमाला,** जो बड़ी ही स्नेहवती एवं मधुरभाषिणी थी"—

1094 सोऽग्निमित्रचरः पुत्रस्तयोः प्रेमान्धचेतसोः।
अभूदेकजटो नाम्ना विनयेन विभूषितः।। 95।।

—"और वही, जो कि पहले **अग्निमित्र** था, उसका जीव इन दोनों बहुजट एवं सुमाला के प्रेमान्ध-हृदयों से **एकजटा** नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो विनयविभूषित था"—

1095 अपरोऽप्यस्ति सद्बुद्धिस्तापसो विधनाभिधः।
मनोहराभिधा कान्ता तस्य पीनोन्नतस्तना।। 96।।

—"**विधना** नाम का सद्बुद्धि वाला एक दूसरा भी तपस्वी हुआ। उसकी पीनोन्नत कुच वाली **मनोहरा** नामकी प्रिया थी"—

1096 सा त्रिवेदीचरा जाता तयोः पुत्री सुलोचना।
सुविनीतिरिति ख्याता सकलेन्दुसमानना।। 97।।

—"और जो पहले त्रिवेदी नामकी (अग्निमित्र की पत्नी) महिला थी, उसका जीव इन्हीं दोनों से उत्पन्न **सुविनीति** नाम से प्रसिद्ध पुत्री के रूप में हुई। वह (सुविनीति) सुन्दर नेत्रों वाली तथा पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली थी"—

1097 सा सुमालातनूजेन परिणीता कृशोदरी।
द्वावेव तौ तपः कृत्वा मृत्वा स्वायुः क्षये ततः।। 98।।

—"उसी कृशोदरी **सुविनीति** के साथ उस **सुमाला** के पुत्र **एकजटा** ने विवाह कर लिया। उसके बाद उन दोनों ने तप किया और आयु पूर्ण कर मृत्यु प्राप्त की"—

1098 स सुमालासुतो धीरः सुधीरेकजटाह्वयः।
माणिभद्राख्यया ख्यातो यक्षोऽभूत्कमलेक्षणः।। 99।।

—"सुमाला पुत्र वह एकजटा भी, जो कि धीर एवं बुद्धिमान् था, उसी का जीव **माणिभद्र** नाम से प्रसिद्ध कमल के सदृश नेत्र वाला **यक्ष** हुआ है"—

1099 सा त्रिवेदी मृगाङ्कस्य देवी जाता मनःप्रिया।
ततश्च्युत्वा त्वदावासे भविष्यति त्वदङ्गजा।। 100।।

—"उस त्रिवेदी का जीव **मृगाङ्क** (चन्द्रमा) की मनोनुकूला पत्नी के रूप में उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ से चयकर वह तुम्हारे घर में तुम्हारी पुत्री के रूप में उत्पन्न होगी"।

चारण-मुनियों द्वारा भव-भवान्तर सुनकर भविष्यदत्त अपने घर लौट आता है

1100 श्रुत्वा भविष्यपुत्रस्य दुहितुश्च भवान्तरम्।
प्रमदात्तमना भार्या द्वितयेन समन्वितः।। 101।।

इस प्रकार अपने होनहार पुत्र एवं पुत्रों के भवान्तरों को सुनकर अपनी पत्नी के साथ प्रमुदित-चित्त होकर—

1101 मुनिद्वयपदाम्भोजप्रणामार्जितसद्वृषः।
मनोवेगकृतोद्दामविमानोदरसंस्थितः।। 102।।

उन दोनों ऋद्धिधारी **चरण-मुनियों** के चरण-कमलों में प्रणाम करने के कारण उपार्जित धर्म वाला वह राजा **भविष्यदत्त मनोवेग-विद्याधर** द्वारा निर्मित मनोज्ञ विशाल **वायुयान** के मध्य बैठा हुआ—

1102 पश्यन् पदे-पदे कूपनदीवापीसरांसि च।
नृपो भविष्यदत्ताख्यो जगाम निजपत्तनम्।। 103।।

—*त्रिकलम्*

पद-पद पर कुओं, नदियों, वापिकाओं एवं सरोवरों को देखता हुआ वह राजा **भविष्यदत्त** अपने **पत्तन (नगर)** को लौट आया। —*त्रिकलम्*

1103 मनोवेगेन वेगेन तद्विमानं मनोरमम्।
प्रमोदात्प्रांगणे दध्रे नरनाथस्य वेश्मनः।। 104।।

प्रमुदित चित्त उस **मनोवेग-विद्याधर** ने अपने सुन्दर विमान को राजा **भविष्यदत्त** के भवन के प्राङ्गण में तीव्रगति के साथ उतार दिया।

नगर के नर-नारियों द्वारा भविष्यदत्त का स्वागत-सम्मान

1104 **तत्क्षणादेव सानन्दा बन्दिनः समुपाययुः।**
मुखरीकृतदिक्चक्राः पठन्तः कोमलस्वरैः।। 105।।

उसी समय **बन्दि-(चारण) गण** हर्षितचित्त होकर वहाँ आकर उपस्थित हो गए एवं मधुर स्वर-लहरी में विरुद गान कर उन्होंने सभी दिशाओं-विदिशाओं को गुञ्जित कर दिया।

1105 **मंगलानि वित्तीर्णानि सधवाभिः पुरन्ध्रिभिः।**
नतं नृपपदद्वन्द्वं शिरसा नागरैर्नरैः।। 106।।

पत्तन की सौभाग्यवती (सधवा) सन्नारियों ने माङ्गलिक द्रव्यों का वितरण किया और नागरिकों ने उस राजा **भविष्यदत्त** के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया।

1106 **देवविद्याधरैरेष सेव्यते यशसां निधिः।**
धन्योऽयमिति सर्वेऽपि जजल्पुः पौरमानवाः।। 107।।

सभी नागरिकों ने अपने विरुद-गान में घोषित किया — "**भविष्यदत्त** के रूप में यह यशोनिधि देवों एवं विद्याधरों द्वारा सेवित है। यह धन्य है।"

1107 **वार्द्धिमध्येऽस्ति योऽन्यस्य दुर्गो द्वीपो मनःप्रियः।**
सोऽस्य गृहाङ्गणप्रायो यातायातैः पुनः पुनः।। 108।।

—"और, समुद्र के बीचोंबीच स्थित जो **मनोज्ञ काञ्चन्-द्वीप** दूसरों के लिए अत्यन्त दुर्गम है, वही द्वीप इस राजा **भविष्यदत्त** के उसमें बारम्बार आने-जाने के कारण इसके लिए घर के आँगन के समान हो गया है।"

1108 **अथ प्रणम्य शीर्षेण संजल्प्य वचनं प्रियम्।**
नृपं भविष्यदत्ताख्यं मनोवेगो ययौ गृहम्।। 109।।

इसके बाद राजा भविष्यदत्त को सिर झुका करके प्रणाम किया एवं प्रिय वचनों द्वारा आभार व्यक्त कर वह मनोवेग-विद्याधर अपने घर लौट गया।

1109 **नभसा गच्छता तेनोपकण्ठे सुरभूभृतः।**
मनोवेगेन नागेन्द्रो जिनवाक्येन प्रबोधितः।। 110।।

आकाश-मार्ग से जाते हुए उस **मनोवेग-विद्याधर** ने सुमेरु-पर्वत की उपत्यका में उस नागेन्द्र (अजगर सर्प, जो कि पूर्वजन्म में दुर्वाक् विप्र था) को जिनेन्द्र-वचनों के माध्यम से सम्बोधित किया।

1110 **सोऽप्याशु लक्ष्मणयुतं स्मृतपूर्व दुःखः।**
सर्पः स्मरन् जिनपतिं मनसा विमुक्तः।
प्राणैरसंख्यदिवसेषु गतेषु सत्सु।
सच्छीधरप्रतिमकोमलदेहयष्टिः।। 111।।

अप्रतिम सुकोमल देहधारी वह नागेन्द्र (अजगर-सर्प) भी तत्काल ही अपने पूर्वजन्म के दुःखों का स्मरण करता हुआ पुनः दत्तचित्त होकर साधु **लक्ष्मण** (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक) के समान ही, **श्रीधर** (प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक महाकवि) अर्थात् श्री लक्ष्मी (=मोक्ष-लक्ष्मी) के धारी जिनेन्द्र के गुणों का स्मरण करता हुआ असंख्य दिवसों के बाद मरण को प्राप्त होगा।

....

इति श्रीभविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर विरचिते साहूलक्ष्मणनामाङ्किते—
भविष्यदत्तगृहसमागमन वर्णनं नाम दशमः सर्गः समाप्तः।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित साहूलक्ष्मण के नाम से लिखे गए
श्री भविष्यदत्तचरित में भविष्यदत्त गृहसमा गमनवर्णन नामक
दशवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

....

ग्यारहवाँ सर्ग

1111 यः श्रावकगुणासारसमालंकृतमानसः।
स कैर्न शस्यते सद्भिः लक्ष्मणः क्षितिमण्डले।। 1।।

जिसका मन श्रावक के गुण-समूहों से सुशोभित है, वह **साहू लक्ष्मण** इस पृथिवी-मण्डल पर किन-किन सज्जनों द्वारा प्रशंसित न होगा?

चिरकाल से बिछुड़े पुत्र को पाकर परिवार के लोग प्रमुदित हो उठते हैं

1112 अथ मातुः पितुश्चापि परिवारजनस्य च।
हर्षो भविष्यदत्तस्य भूपतेर्दर्शनादभूत्।। 2।।

राजा **भविष्यदत्त** के घर पहुँचते ही उसे देखकर उसके माता-पिता एवं समस्त परिवार को अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ।

महाजन लोग उपहार लेकर दर्शनार्थ उपस्थित होने लगे

1113 आदाय प्राभृतं रम्यं नानावस्तुविनिर्मितम्।
अगान्महाजनः सर्वः संदृष्टुं पृथिवीपतिम्।। 3।।

नगर के सभी महाजन विविध प्रकार की वस्तुओं से निर्मित सुन्दर-सुन्दर **उपहार** लेकर उस राजा भविष्यदत्त के दर्शनों के लिए आने लगे।

1114 प्रविष्य मन्दिरे राज्ञो मुदा सर्वो महाजनः।
दिव्यवस्त्रस्फुरद्भूषाभूषिताङ्गः स्मिताननः।। 4।।

वे सभी आगत महाजन दिव्यवस्त्रों एवं स्फुरायमान आभूषणों से अलंकृत थे। उन्होंने प्रसन्न-मुद्रा में राजभवन में प्रवेश करके—

1115 **प्राभृतं पुरतो धृत्वा नत्वा पृथिवीपतिं ततः।**
क्रमेण स्वस्वयोग्येषु स्थानेषु समुपाविशत्।। 5।।
— *युग्मं*

उपहारों को राजा के सम्मुख रख दिया। फिर उसे प्रणाम कर वे क्रमशः अपने-अपने योग्य स्थानों पर बैठ गए। — *युग्मं*

राजा भविष्यदत्त ने भी सभी का हार्दिक स्वागत किया

1116 **स ताम्बूलादिसन्मानं कारयामास भूपतिः।**
महाजनस्य सर्वस्य पश्यन्नास्यं मुदा मुहुः।। 6।।

उस **राजा भविष्यदत्त** ने भी आगत सभी महाजनों के मुख की ओर बारम्बार देखते हुए प्रमुदित मन से ताम्बूलादि देकर सभी का स्वागत-सम्मान किया।

1117 **मौलिविन्यस्तहस्ताग्रः समुवाच महाजनः।**
देव भद्रमभूत्सर्वं यद्भवन्तः समागताः।। 7।।

अपने-अपने सिरों पर हस्ताग्र रखे हुए (अर्थात् नमस्कार करते हुए) सभी महाजनों ने विनम्रतापूर्वक कहा — "हे देव, यह सभी जनों के लिए कल्याणकारी हुआ कि आप सपरिवार यहाँ आ गए हैं।"

1118 **यदीह कापि युष्माकं विदधाति पराभवम्।**
तदानीं मत्पुरो भद्र भाणनीयं यदृच्छया।। 8।।

यह सुनकर उस **राजा भविष्यदत्त** ने उन सभी भद्रजनों से कहा — "हे भद्रजनो, यदि इस नगर में कोई तुम लोगों का अपमान-तिरस्कार करता है, तो तत्काल ही अपनी इच्छा या सुविधापूर्वक आकर मुझे अवश्य बतलावें।"

1119 **इत्युदीर्य प्रसन्नात्मा वीक्ष्य सस्नेहयादृशा।**
स्वयं विसर्जयामास नरनाथो महाजनम्।। 9।।

ऐसा कहकर एवं स्नेहयुक्तदृष्टि से देखकर प्रसन्नात्मा उस राजा भविष्यदत्त ने स्वयं ही सभी महाजनों को विदा किया।

1120 **सानन्दमानसो नत्वा नृपं सर्वो महाजनः।**
गृह्णन् गुणांस्तनूजस्य श्रेष्ठिनोऽगान्निजालयम्।। 10।।

प्रमुदित मन वाले वे सभी महाजन-गण उस राजा भविष्यदत्त को प्रणाम कर एवं उसकी निरहंकारिता तथा विनम्रता आदि गुणों को ग्रहण करते हुए अपने-अपने घर गए।

विविध देशों के राजागण सेवा-हेतु उपस्थित हो गए

1121 **अत्रान्तरे नृपा नाना दिव्यप्राभृतपाणयः।**
सैन्धवाभीरसौराष्ट्रचेदिद्रविड़गूर्जराः।। 11।।

1122 **कलिङ्गकीरलंपाक बङ्गाङ्गखसमागधाः।**
भविष्यदत्तभूपस्य सेवां कर्त्तुं समाययुः।। 12।।

—युग्मकम्

इसी बीच **सैन्धव, आभीर, सौराष्ट्र, चेदि, द्रविड़** एवं **गुर्जर** देश के राजा तथा **कलिंग, कीर, लंपाक, बंग, अंग, खस,** एवं **मगध** के राजागण भी विविध प्रकार के दिव्य उपायनों (बहुमूल्य उपहारों) को स्वयं अपने-अपने हाथों में लेकर राजा **भविष्यदत्त** की सेवा में उपस्थित हो गए।

—युग्मकं : 11-12

1123 **यावत् श्रेष्ठिसुतोऽत्यन्तं भुंजानो नृपसंपदम्।**
कालं नयति सद्बन्धुनरेन्द्रनिकरान्वितः।। 13।।

जब वह श्रेष्ठिपुत्र राजा **भविष्यदत्त** अपने सद्बन्धुओं एवं राजपरिवार के साथ राज-सम्पदा का यथेच्छ भोग करते हुए अपना समय व्यतीत कर रहा था।

भविष्यानुरूपा ने सुप्रभ नामके पुत्र को जन्म दिया

1124 **तावत् शुभे दिने वारे नक्षत्रे करणेऽपि च।**
तनूजं सुषुवे पुण्यग्रहं भगवतः सुता।। 14।।

तभी शुभ-तिथि, शुभ-दिवस, शुभ-नक्षत्र एवं शुभ-करण रूप पुण्य

ग्रह-काल के उपस्थित होने पर भगवत्पुत्री भविष्यानुरूपा ने एक पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया।

1125 स सुप्रभ इति प्रोक्तो मिलित्वा सर्वबन्धुभिः।
अभून्मोदो नृपश्रेष्ठिकमलश्रीसुहृत्सताम्।। 15।।

सभी बन्धुओं के साथ विचार-विमर्श कर उस राजा ने उस पुत्र का नाम **'सुप्रभ'** रखा। राजा **भविष्यदत्त**, सेठ धनपति, माता **कमलश्री**, मित्रगण एवं सभी सज्जनों को इस कारण अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

1126 वाद्यमानेषु तूर्येषु बधिरत्वं दिशो ययुः।
कम्पमाप महीपृष्ठो नृत्यन्नारीपदाहतः।। 16।।

नगाड़ों के लगातार बजाए जाने के कारण सभी दिशाएँ बहरी हो गईं। (अर्थात् अन्य प्रकार की आवाज कहीं से नहीं सुनाई पड़ती थीं) नृत्य करती हुई नारियों के पदों से आहत होकर पृथिवीतल भी काँप उठा।

1127 ददता द्रविणं राज्ञा प्रीणिता बन्दिनां ततिः।
मेदिनीव पयोदेन मुञ्चता प्रचुरं पयः।। 17।।

उस राजा **भविष्यदत्त** ने पुत्र-जन्म पर हर्षोन्मत होकर इतना अधिक दान दिया कि याचक-गण उसी प्रकार प्रफुल्लित-तृप्त हो गए, जिस प्रकार कि प्रचुर-मात्रा में जल-वर्षा करने वाले मेघों से पृथिवी-माता तृप्त हो जाती है।

तत्पश्चात् कांचनप्रभ, सोमप्रभ एवं रविप्रभ नामके पुत्र तथा तारा नामकी पुत्री का जन्म

1128 कियद्भिर्वासरैरन्यो बभूव भुवने श्रुतः।
पुत्रः पवित्रिताशेषस्ववंश काञ्चनप्रभः।। 18।।

उसके कुछ दिनों के बाद ही राजा भविष्यदत्त का विश्वविख्यात अपने समस्त वंश को पवित्र करने वाला, स्वर्ण की कान्तिवाला **कांचनप्रभ** नामका द्वितीय-पुत्र उत्पन्न हुआ।

1129 ततः सोमप्रभो नाम पूर्णसोमप्रभान्वितः।
ततो रविप्रभः स्वस्यज्योतिर्जितरविप्रभः।। 19।।

तत्पश्चात् उस राजा भविष्यदत्त के पूर्णचन्द्र-प्रभा से युक्त **सोमप्रभ** तथा अपनी कान्ति से सूर्यकान्ति को भी पराजित करने वाला **रविप्रभ** नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए।

1130 तारेति दुहिता पश्चात् सुतारालङ्कृतेक्षणा।
समभूत् भूभृतां चेतोरत्नतोरणतस्करी।। 20।।

तत्पश्चात् भी उस राजा की **तारा** नाम की पुत्री हुई, जिसके नेत्र सुन्दर तारा (कनीनिका) से सुशोभित थे तथा जो अपने सौन्दर्य से राजाओं के हृदयरूपी रत्न को चुराने वाली थी।

दूसरी पत्नी सुमित्रा से धरणीधर पुत्र तथा राजसुता पुत्री का जन्म

1131 भूपालनृपतेः पुत्र्या तनूजो जनितस्तया।
तपनो वा दिशा प्राच्या धरणीधरसंज्ञकः।। 21।।

और उधर, भूपाल नामक राजा की पुत्री (सुमित्रा) अर्थात् भविष्यदत्त की द्वितीय पत्नी ने **धरणीधर** नाम के पुत्र को जन्म दिया। वह ऐसा प्रतीत होता था मानों पूर्व-दिशा में सूर्य का ही जन्म हुआ हो।

1132 सुता च सुन्दराकारा सुप्रसिद्धा सुधारिणी।
निजरूपश्रिया राजसुता नामाधिकारिणी।। 22।।

और फिर, सुन्दर रूप वाली और पृथ्वी पर सुप्रसिद्ध एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो अपनी रूप-सम्पदा के कारण पृथिवी मण्डल पर **'राजसुता'** इस नामकी अधिकारिणी हुई।

राजा भविष्यदत्त एवं राजा भूपाल की मैत्री घनिष्ठ हो गई

1133 तयोर्द्वयोरभूत्प्रीतिः परमानन्ददायिनी।
भविष्यदत्तभूपालभूपयोः पृथुचेतसोः।। 23।।

उदार हृदय वाले उन दोनों अर्थात् राजा **भविष्यदत्त** एवं राजा **भूपाल**

(दामाद एवं ससुर) में परमानन्द देने वाली गाढ़ी प्रीति हो गई।

दोनों ही राजा सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ एवं गुणज्ञ थे

1134 द्वावेव विदितौ लोके सत्यत्यागादिभिर्गुणैः।
बभूवतुर्विदां मान्यौ पुत्रपौत्रैरलङ्कृतौ।। 24।।

वे दोनों ही राजा अपने सत्य और त्यागादि गुणों के कारण संसार में प्रसिद्ध हो गए तथा विद्वानों के लिए आदरणीय वे दोनों अपने-अपने पुत्र और पौत्रों से सुशोभित हुए।

1135 द्वाभ्यां प्रद्योतिता पृथ्वी रविभ्यामिव तेजसा।
परासह्येन धून्वद्भ्यामनीतितिमिरोत्करम्।। 25।।

मध्याह्नकालीन सूर्य के समान असह्य तेज से शत्रु-राजाओं द्वारा किए गए अनीति रूपी अन्धकार-समूह को समाप्त करते हुए उन दोनों राजाओं के द्वारा पृथ्वी प्रकाशित हो गई अर्थात् राज्य निष्कंटक बना रहा।

1136 द्वावेव कुलतारेशौ द्वावेव क्षितिरक्षकौ।
द्वावेव प्रस्फुरत्कीर्त्तिश्चेतिताऽखिलभूतलौ।। 26।।

वे दोनों ही राजा अपने-अपने कुलों के लिए कुलचन्द्र थे, वे दोनों ही पृथिवी के सच्चे प्रतिपालक थे औंर दोनों ने ही सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी बढ़ती हुई कीर्ति से प्रकाशित किया।

1137 राज्यश्रियः सुखं नित्यं भुञ्जानौ त्रिदशाविव।
द्वावेव सह विद्वद्भिस्तुर्यवर्गं विवेचतुः।। 27।।

वे दोनों राजा देवेन्द्रों के समान राज्यलक्ष्मी का निरन्तर सुख-भोग करते हुए विद्वानों के साथ धर्म अर्थ आदि चारों पुरुषार्थों पर विवेचन करते रहते थे।

राजा भविष्यदत्त ने अहंकारी राजाओं को पराजित कर उन्हें अपना सेवक तथा करद बना लिया

1138 साधितः सिंहलो द्वीपो मदनाङ्कस्तथैव च।
पारसः पृथ्वीशेन कमलश्रीतनूभुवा।। 28।।

कमलश्री पुत्र उस राजा **भविष्यदत्त** ने **सिंहलद्वीप, मदनाङ्कद्वीप** और **पारस-देश** को अपने अधीनस्थ कर लिए।

1139 देशा अलक्षपर्यन्ता निःशेषाः करदीकृताः।
परचक्रनराधीशा नतिं नीताश्च विक्रमात्।। 29।।

अलक्ष पर्यन्त सभी देशों को अपना **करद** अर्थात् कर (Tax) देने वाला बना लिया, पराक्रम से और **शत्रु-चक्र** रूप जो उद्दण्ड सुसंगठित राजा लोग थे, उन्हें अपने पराक्रम से अपना विनम्र **सेवक** बना लिया।

विद्याधर-अशनिवेग तथा माणिभद्र का आगमन

1140 सेवयाऽशनिवेगाख्यं माणिभद्रधनाधिपम्।
आगच्छन्तं गृहे तस्य नृपस्योचुः पुराङ्गनाः।। 30।।

उस राजा भविष्यदत्त के भवन में सेवार्थ आते-जाते हुए **अशनिवेग** नामके विद्याधर देव को और **माणिभद्र** कुबेर को देखकर नगर की सन्नारियाँ कह रही थीं कि —

1141 धन्योऽयं श्रेष्ठिनः पुत्रः परमेको महीतले।
यः सेव्यते सदा देवैः पुरन्दर इति क्षितौ।। 31।।

—"यह श्रेष्ठि-पुत्र राजा **भविष्यदत्त** सचमुच ही परम धन्य है, जो इस पृथिवी पर देवों के द्वारा इन्द्र के समान सदा सेवित है।

भविष्यदत्त एवं भूपाल के पुत्रों में कृष्णार्जुन के समान मैत्री

1142 भूपालस्य तनूजोऽपि निजराजगणैर्वृतः।
गेहे भविष्यदत्तस्य सततं समुपाययौ।। 32।।

राजा भूपाल का पुत्र भी अपने राजकीय मित्रों के साथ-साथ भविष्यदत्त

के यहाँ निरन्तर आता-जाता रहता था।

1143 **बभूवाप्रतिमप्रीतिः प्रीणितप्राणिवर्गयोः।**
दुर्जयोर्वैरिवर्गस्य गोविन्दार्जुनयोर्यथाः।। 33।।

प्राणिवर्ग को प्रसन्न करने वाले एवं वैरिवर्ग के लिए दुर्जेय उन दोनों **राजकुमारों** की **कृष्णार्जुन** के समान ही अतुलनीय प्रीति थी।

1144 **पृथिवीं भविष्यदत्तस्य शासनैरनुशासतः।**
जगाम गोचरातीतः समयः समयो महान्।। 34।।

—युग्मकम्

अपने द्वारा अनुशासित शासन-प्रशासन द्वारा पृथिवी पर राज्य करते हुए राजा **भविष्यदत्त** का लम्बा समय बीत गया, फिर भी उसे इसका पता भी न चला। सचमुच ही समय की महिमा बड़ी विचित्र है। *—युग्मकम्*

1145 **अत्रान्तरे तरङ्गाश्च तरद्विषयनक्रके।**
सुखवारिनिधौ तस्य मज्जतः पृथिवीपतेः।। 35।।

इसी बीच, जिसकी तरंगों में विषय-वासना रूपी मगरमच्छ, घड़ियाल तैर रहे थे, उसी भौतिक सुख-समुद्र में जब वह राजा भविष्यदत्त डूब-उतरा रहा था तभी—

हस्तिनापुर के प्रमदवनोद्यान में दो चारण-मुनीन्द्रों का आगमन

1146 **उद्दामेन्द्रिय दुर्दन्तिवैरिदर्पप्रमर्दनौ।**
मन्मथद्विपसंपातपातानेकमृगाधिपौ।। 36।।

प्रचण्डेन्द्रियरूपी गज-शत्रु के गर्व का मर्दन करने वाले, कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथियों को परास्त करने के लिए सिंह के समान—

मुनीन्द्रों की साधना

1147 **क्रूरकर्मघनारोपपातिप्रबलमारुतौ।**
भव्याम्भोजकरस्फारविकासनदिवाकरौ।। 37।।

ज्ञानावरणादि **अष्टक्रूरकर्म** रूपी घन-घटा को नष्ट करने के लिए प्रबल

मारुत (झंझावात) के समान तथा कल्याण रूपी कमल-पंक्ति के विकास के लिए स्फुरायमान सूर्य-किरणों के समान—

1148 **द्वाविंशतिविधासह्यपरीषह-जयैषिणौ।**
महाव्रतमहाभारधुरोद्धरणतत्परौ।। 38।।

क्षुधा-पिपासा आदि बाईस प्रकार की असह्य **परीषहों** के जीतने के इच्छुक, अहिंसा आदि **पाँच महाव्रतों** के भार की धुरी को ढोने के लिए तत्पर—

1149 **सदा समितिविन्यस्तसंन्यस्तरसचेतसौ।**
मनोवाक्कायभेदेन गुप्तित्रितयसंयुतौ।। 39।।

ईर्या, भाषा आदि **पाँच समितियों** के प्रतिपालक, स्पर्शनादि **पाँच इन्द्रियों** के विषय-रस से विरक्त-चित्त तथा मन, वचन एवं काय रूप त्रि-गुप्तियों के पालन में तत्पर—

1150 **रौद्रार्त्तध्याननिर्मुक्तौ मुक्तिकान्ताहिताशयौ।**
स्फुटस्फटिकसंकाशधर्मशुक्लसमाहितौ।। 40।।

आर्त्त और **रौद्र-ध्यानों** से विनिर्मुक्त, मुक्ति रूपी कान्ता को हृदय में समाहित करने वाले तथा जो स्फटिक-मणि तुल्य निर्मल **धर्म-ध्यान** एवं **शुक्ल-ध्यान** से सम्पन्न थे।

1151 **अतितीव्रतपस्तेजस्तिरस्कृतजनै न सौ।**
मदाष्टकमहामोहमहीरुहदवानलौ।। 41।।

अपनी उग्र तपस्या के तेज से भव्यजनों के पापों को नष्ट कर देने वाले, ज्ञान, पूजा आदि **अष्ट प्रकार के मदों** (अहंकारों) तथा महामोह रूपी वृक्ष के लिए दावाग्नि के समान—

1152 **त्रिज्ञानप्रस्फुरन्नेत्रविलोकितजगत्त्रये।**
गम्भीरिमगुणोदाररत्नरत्नाकरोपमौ।। 42।।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं **अवधिज्ञान** रूपी स्फुरायमान नेत्रों द्वारा तीनों

लोकों (ऊर्ध्व, मध्य एवं पाताल) को देखने-जानने वाले तथा क्षमा आदि गम्भीर गुणरत्नों के लिए रत्नाकर के समान—

1153 **अतिस्थिरस्वभावेन निर्जितामरभूधरौ।**
पंचाचारविचारज्ञौ चञ्चच्चन्द्रयशोधरौ।। 43।।

अपने स्थिरचित्त, स्थितप्रज्ञ-स्वभाव के कारण सुमेरु-पर्वत की स्थिरता को भी पराजित कर देने वाले, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप एवं वीर्यरूप **पाँच प्रकार के आचारों** के विचारज्ञ तथा पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान धवल-यशस्वी—

1154 **क्षान्त्यादिदशधाधर्मप्रवर्द्धनकृतादरौ।**
मलावलिप्तबीभत्सविग्रहावपि सुन्दरौ।। 44।।

क्षान्ति (क्षमा) आदि **दस प्रकार के धर्मों** की अभिवृद्धि के प्रति आदर-भाव रखने वाले तथा अस्नान-परीषह-जयी होने के कारण मल से लिप्त बीभत्स-शरीरधारी होने पर भी सुन्दर दिखाई देने वाले—

1155 **षड्जीवकायकारुण्यरसामृतपयोधरौ।**
सुधियौ धीरताधारौ क्षमाजितवसुन्धरौ।। 45।।

छह प्रकार के जीवों के प्रति करुणारस रूपी अमृत की वर्षा के लिए मेघ के समान विवेकी-विद्वान, धैर्यगुण के लिए आधारभूत एवं अपने क्षमा-गुण से क्षमा (पृथिवी) को भी जीतने वाले—

उन चारण-मुनीन्द्रों के नाम-विमलबुद्धि एवं अमलबुद्धि

1156 **विमलामलबुद्ध्याख्यौ विख्यातौ वसुधातले।**
चारणश्रवणाधीशौ नरामरनमस्कृतौ।। 46।।

सम्पूर्ण पृथिवी-मण्डल पर विख्यात, **चारण-मुनियों** एवं श्रमणों में श्रेष्ठ, मनुष्यों एवं देवों द्वारा नमस्कृत तथा निर्दोष बुद्धिसम्पन्न, **विमलबुद्धि** तथा **अमलबुद्धि** नामके—

1157 आजग्मतुरनुत्सेकौ हस्तिनाख्यपुरे बहिः।
विस्तीर्णे प्रमदोद्याने मुनीन्द्रौ मुनिवन्दितौ।। 47।।

—*कुलकम्*

साधक मुनियों द्वारा बन्दित दो चारणमुनि **हस्तिनापुर** नगर के बाहर स्थित विशाल **प्रमदवन** नामके उद्यान में पधारे। —*कुलकम्*

प्रमदवनोद्यान-सौन्दर्य-वर्णन

1158 तद्वनं विटपैः रम्यं निर्गताभिनवाङ्कुरैः।
रोमाञ्चितमिव भ्रेजे तन्मुनिद्वयदर्शनात्।। 48।।

वह, **प्रमदवन,** जिसके वृक्षों में नव-नव अंकुर पल्लव निकल रहे थे, ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों उन चारण-मुनीन्द्रों के दर्शन कर रोमांचित हो रहा हो।

1159 इतस्ततश्चलद्वातप्रहतानेकशाखिभिः।
अतिप्रहर्षतो नृत्यदिव रेजे समन्ततः।। 49।।

वह **प्रमदवनोद्यान** प्रवहमान पवन के झकोरों द्वारा चलायमान वृक्षों की शाखा-प्रशाखाओं से ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उन मुनीन्द्रों के दर्शन कर वह प्रमुदित होकर नृत्योन्मत्त ही हो रहा हो।

1160 वलक्षप्रसवासारविराजितमहीरुहैः।
बभौ हसदिव प्राप्य को वा पूर्वं जहास नो।। 50।।

खिले हुए धवल-पुष्पों से सुशोभित वृक्षों द्वारा वह **प्रमदवनोद्यान** ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उन मुनीन्द्रों के दर्शन कर वह हँस-मुस्कुरा रहा हो। सचमुच ही अप्रत्याशित अपूर्व वस्तु को प्राप्त कर कौन नहीं हँसता?

1161 केकिनां भूरुहां मूले स्थितानां मुखरैः स्वरैः।
जयशब्दमिवातेनेत्तद्भक्तया मुनिनाथयोः।। 51।।

वृक्षों ने नीचे विराजित **मयूरों** के मधुर-स्वर मुखरित हो रहे थे। उनसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह **प्रमदवनोद्यान** उन मुनीन्द्रों के प्रति अपने

भक्ति-भाव का जयघोष ही कर रहा हो।

1162 **फलभारानतैर्वृक्षैर्ननाम वातिभक्तितः।**
क्रमाम्भोजयुगं भव्यनतं निर्ग्रन्थयोस्तयोः।। 52।।

उस **प्रमदवनोद्यान** के वृक्ष फलों के भार से अत्यन्त झुके हुए थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों उन मुनीन्द्रों के प्रति अपने भक्ति-भाव को प्रदर्शित करने हेतु उनके चरण-कमलों में वे झुक रहे हों।

1163 **कोकिलानां कुलं कृष्णं प्रगच्छत गगनाङ्गणे।**
तन्मुनीन्द्र तपोध्वस्तं पापपुञ्जमिवा बभौ।। 53।।

आकाश में उड़कर जाता हुआ **कोकिलाओं** (कोयलों) का काला-समूह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उन मुनीन्द्रों की घोर तपस्या से नष्ट हुआ पापों का समूह ही भागा जा रहा हो।

1164 **भ्रमरा मञ्जु गुञ्जन्तो भ्रमन्तः शाखिनामधः।**
तयोर्निर्ग्रन्थयोः कीर्त्तिं कीर्तयन्तइवाबभुः।। 54।।

उस **प्रमदवनोद्यान** में वृक्षों के नीचे मधुर-गुँजार करते हुए **भ्रमर-गण** इधर-उधर घूम रहे थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों उन **निर्ग्रन्थ-मुनियों** के धवल-यश का कीर्तिगान ही कर रहे हों।

1165 **विदिक्षु-दिक्षु धावन्तो नष्टावेगेन वानराः।**
कर्मारय इवाभान्ति तन्मुनीन्द्रतपोहताः।। 55।।

उस **प्रमदवनोद्यान** की दिशाओं एवं विदिशाओं में तीव्रगति से दौड़-दौड़कर **वानरगण** अदृश्य हो रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उन मुनीन्द्रों की कठोर तपस्या से आहत ज्ञानावरणादि दुष्ट अष्टकर्म समूह ही अदृश्य हो रहे हों।

1166 **परकार्यमिवातीव शीतलं कदलीवनम्।**
सेव्यमानं जगन्नाथं जनानां फलदायकम्।। 56।।

जिस प्रकार परोपकार शीतल अर्थात् सखदायक होता है, उसी प्रकार उस **प्रमदवनोद्यान** का **कदली-वन** भी शीतल-सुखदायक था और जो सभी

को सुखदायक फल देता था। सच ही कहा गया है, जो जगत के नाथ (या प्रभु या राजा) की सेवा करता है, उसे सुखद फल मिलता ही है।

दोनों मुनीन्द्र अशोक-वृक्ष के नीचे शिलातल पर विराजमान थे

1167 तत्राशोकतरोर्मूले प्रविस्तीर्णशिलातले।
उपविष्टौ मुनीन्द्रौ तौ तीव्रतेजोऽमिभूषितौ।। 57।।

उसी **प्रमदवनोद्यान** के **अशोकवृक्ष** के नीचे स्थित विशाल **शिलातल** पर तीव्र तपस्तेज से विभूषित वे दोनों मुनीन्द्र आकर विराजमान हो गए।

वनपाल ने राजा भविष्यदत्त को सूचना दी

1168 तावालोक्य स्वनेत्राभ्यां वनपालः प्रमोदतः।
तमुदन्तं नृपस्याशु कथयामास शुद्धधीः।। 58।।

उस **प्रमदवनोद्यान** के विवेकशील **वनपाल** ने अपने नेत्रों से स्वयं ही उन दोनों मुनीन्द्रों को वहाँ आया हुआ देखकर अत्यन्त प्रमुदित मन से तत्काल ही जाकर राजा **भविष्यदत्त** को इसकी सूचना दी और कहा—

1169 देवदेवमनोहारि नन्दने सुखनन्दने।
तावकीने महाराज वेष्टितानेकचन्दने।। 59।।

"—हे देव, हे महाराज, देवों के मन को भी हरण करने वाले, **महासर्पों** द्वारा वेष्टित विविध प्रकार **चन्दन-वृक्षों** से घिरे हुए तथा सभी के लिए सुखदायक आपके प्रमदवनोद्यान में—

1170 तेजः सोमप्रिया युक्तौ सूर्याचन्द्रमसाविव।
संसाराम्बुधि बोधिस्थौ स्थिरत्वजितभूभृतौ।। 60।।

तेजस्विता एवं सौम्यता से समन्वित सूर्य एवं चन्द्र के समान लोकप्रिय, संसाररूपी समुद्र से पार उतरने के लिए बोधि (रत्नत्रय) रूपी यान में स्थित और स्थिरता में पर्वतों को भी जीतने वाले—

1171 **अधुनैव प्रविध्वस्तमकरध्वजसायकौ।**
कृशाङ्गौ निष्टनिर्मुक्तौ मुनीन्द्रौ द्वौ समागतौ।। 61।।

कामदेव के वाणों को नष्ट करने वाले, कृश-काय, अनिष्टरहित, मौनी एवं ध्यानी दो मुनीन्द्र अभी-अभी अपने **प्रमदवनोद्यान** में पधारे हैं।

1172 **तन्निशम्य वचो राज्ञा मुक्त्वा सिंहासनं द्रुतम्।**
चक्रे तत्सन्मुखीभूय नतिस्तत्पादपद्मयोः।। 62।।

उस **वनपाल** के वचन सुनकर, वह राजा **भविष्यदत्त** तत्काल ही अपने राज्य-सिंहासन से उठा और उन मुनीन्द्रों के सम्मुख होकर उनके चरण-कमलों में (परोक्षरूप में ही) नमस्कार किया।

राजा भविष्यदत्त सदल-बल उनके
दर्शनार्थ प्रमदवनोद्यान में पहुँचता है

1173 **ततस्तस्मै स्वहस्तेन नृपेण मुदमीयुषा।**
स्वाङ्गाभरणमादाय प्रदत्तं पारितोषिकम्।। 63।।

तत्पश्चात् प्रमुदितचित्त उस राजा ने स्वयं अपने हाथों से अपने अंगों से बहुमूल्य आभूषण उतारकर शुभ सन्देशवाहक उस **वनपाल** को पारितोषिक रूप में प्रदान कर दिए।

1174 **अथ भूपाज्ञया भृत्यैर्यात्राभेरी समाहता।**
अतीवधीरगम्भीरनिनादसुखदायिनी।। 64।।

राजा **भविष्यदत्त** की आज्ञा प्राप्त करते ही उसके सेवकों ने अत्यन्त धीर, गम्भीर एवं सुखद **भेरी-निनाद** किया।

1175 **तस्याः शब्दं समाकर्ण्य समायाता नरेश्वराः।**
भविष्यदत्तभूपालमणिबद्धगृहाङ्गणे।। 65।।

उस भेरी-निनाद को सुनकर सभी नरेश्वर-गण (नागरिक-गण) उस राजा भविष्यदत्त के मणिनिर्मित प्रासाद के प्रांगण में एकत्रित होने लगे—

1176 **केचिदुत्तुङ्गमातङ्गं समारुह्य सभूषणाः ।**
केचित्तुरङ्गाश्चारुचित्तवृत्तिसमन्विताः ।। 66 ।।

बहुमूल्य आभूषणों से आलंकृत कुछ लोग उत्तुंग **मांतगों** (गजराजों) पर सवार होकर तथा सुन्दरचित्त वृत्ति वाले कुछ भव्यगण **अश्वारूढ़** होकर —

1177 **केचिद्रथांश्चलच्चक्रचूर्णितावनिमण्डलान् ।**
केचिज्जंपानमध्यस्थाः स्थिरभावजिताद्रयः ।। 67 ।।

— *त्रिकलम्*

कुछ राजागण तीव्रगति से घूमने वाले चक्रों (पहियों) से पृथिवी-मण्डल को चूर-चूर करते हुए **रथों** पर आरूढ़ होकर तथा अपने स्थिर-भावों से पर्वतों को भी जीतने वाले कुछ राजा-गण **जंपान** (विशेष पालकी) में बैठकर वहाँ आए। —*त्रिकलम्*

1178 **सर्वे सम्भूय राजानः प्रस्थितास्तद्वनम्प्रति ।**
भविष्यदत्तेन भूपेन द्विपस्थेन समं शुभम् ।। 68 ।।

— और, आए हुए सभी भद्र राजागण, गजारूढ़ उस राजा **भविष्यदत्त** के नेतृत्व में उस शुभकारक प्रमदवनोद्यान की ओर चल पड़े।

1179 **अनुक्रमेण सच्छत्रः सतुरङ्गः सवारणः ।**
सचामरः स राजेन्द्रः सरथः समहाभटः ।। 69 ।।

— अनुक्रम से (अर्थात् अनुशासनबद्ध होकर) चलते-चलते उत्तम छत्र, उत्तम अश्व, उत्तम गज, उत्तम रथ एवं विख्यात महाभट-समूह के साथ-साथ —

1180 **सहर्षः सध्वजासारः सपौरः समहाजनः ।**
सान्तःपुरः प्रसन्नात्मा कमलश्रीशरीरजः ।। 70 ।।

— प्रमुदित-चित्त, विशेष-विशेष ध्वज-समूह, पुरवासियों, महाजनों, अन्तःपुर की महारानियों के साथ-साथ प्रसन्नचित्त वह कमलश्रीपुत्र-राजा **भविष्यदत्त** —

1181 **वाद्यमानैर्महानादैस्तूर्यैर्नानाविधैर्नृपैः।**
अगादन्तं तयोः साध्वोस्तद्वने भक्तिभावितः।। 71।।

बजाए गए महास्वर वाले **तूर्य-वाद्यों** के भव्य वातावरण में, अनेक राजाओं के साथ, भक्ति-भावना से भरकर उस **प्रमदवनोद्यान** में उन दोनों मुनीन्द्रों के कुछ निकट पहुँचा।

1182 **दूरे विमुच्य मातङ्गास्तुरङ्गाश्च परिच्छदान्।**
वनान्तर्विविशुः सर्वे नृपेण सह तोषतः।। 72।।

फिर उन हाथी, घोड़े आदि समस्त परिग्रहों-आडम्बरों को दूर छोड़कर सभी राजाओं ने उस राजा **भविष्यदत्त** के बाद प्रसन्नचित्त होकर उस प्रमदवनोद्यान में प्रवेश किया।

1183 **ततो भविष्यदत्तेन पितृभ्यां सह भक्तितः।**
नतौ तौ मुनी मूर्द्धा विधाय त्रिःप्रदक्षिणाः।। 73।।

तत्पश्चात् राजा **भविष्यदत्त** ने अपने माता-पिता के साथ भक्तिपूर्वक तीन परिक्रमाएँ करके उन दोनों मुनीन्द्रों को सिर झकाकर नमस्कार किया।

1184 **अन्यैरपि नृपैर्लोकैर्भव्यभावाभिरञ्जितैः।**
निशान्त कामिनीभिश्च प्रणतौ संस्तुतौ ततः।। 74।।

उनके बाद उत्तम भद्र-भावनाओं से अभिरंजित अन्य राजाओं, नागरिकों तथा अन्तःपुर की महारानियों एवं अन्य कामिनियों ने उन दोनों मुनीन्द्रों को नमस्कार क़र उनकी स्तुति की।

1185 **तेभ्यस्ताभ्यां मुनीन्द्राभ्यां प्रदत्ताशीः सुखप्रदा।**
तथा च प्रीणिताः सर्वे मनोमध्ये नृपादयः।। 75।।

उन दोनों मुनीन्द्रों ने भी उन सभी उपस्थित भक्तजनों के लिए सुखप्रद आशीर्वाद दिया, जिससे राजादि सभी लोग अपने-अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए।

मुनीन्द्रों को नमस्कार कर सभी जन यथास्थान बैठ गये

1186 **उपविष्टा यथास्थानं सर्वेऽपि सह भूभुजा।**
ललाटे न्यस्तहस्ताग्राः वाचं यमसमन्विताः।। 76।।

उस राजा भविष्यदत्त के साथ उपस्थित सभी भक्त-जनों ने अपने ललाट पर दोनों हाथों को रखा तथा मौनपूर्वक यथास्थान बैठ गए।

1187 **नित्यं चोत्तमलक्ष्मणा परिवृतौ कान्तौ यथा रेजतुः।**
साधू बाहुबलिश्च सेनवृषभः पूर्वंस्तपः श्रीधरौ।।
धर्म्मारामविवर्द्धनैकभरतक्ष्मापालभाभावितौ।
तौ तावेव तथाथवा निजकरैः सूर्यौषधिस्वामिनौ।। 77।।

धर्म रूपी वाटिका की अभिवृद्धि में संलग्न रहने वाले राजा **भरत** जिस प्रकार अपनी तेजस्विता से सुशोभित थे, पूर्वकाल में उत्तम लक्षणों से युक्त भगवान **बाहुबलि** एवं आचार्य **वृषभसेन** जिस प्रकार मनोहर श्री तपोलक्ष्मी से सुशोभित थे, जिस प्रकार **सूर्य** एवं **चन्द्रमा** गुणकारी औषधि के समान अपनी किरणों को वितरित करते हुए सुशोभित रहते हैं, उसी प्रकार **साधु लक्ष्मण** (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक) तथा **श्रीधर** (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता महाकवि विवुध श्रीधर) को ग्रन्थ-लेखन के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाले वे दोनों चारण-मुनीन्द्र भी निरन्तर सुशोभित बने रहें।

....

इतिश्री भविष्यदत्तचरिते साहू लक्ष्मण नामाङ्किते
विबुधश्रीधर विरचिते चारणमुनिसमागमवर्णनं नाम एकादशः सर्गः।। 11।।

इस प्रकार बिबुधश्रीधर द्वारा विरचित तथा साहूलक्ष्मण के नाम से
अंकित भविष्यदत्त-चरित में चारण-मुनि समागम-वर्णन
नामका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

बारहवाँ सर्ग

1188 **यः सुहृत्सुजनवर्गवल्लभो,**
धर्मकर्म्मनिरताशयः सदा।
लम्बकुंचुक-कुल-क्रमान्वितो,
नन्दताज्जगति सोऽत्र लक्ष्मणः।। 1।।

जो अपने मित्रों एवं सज्जन-समुदाय का प्रिय है, जो निरन्तर धर्म-कर्म में व्यस्तचित्त है, जो **लम्बकञ्चुक**-वंशक्रम वाला है, ऐसा वह **लक्ष्मण साहू** इस पृथिवी पर सदा आनन्दित रहे।

1189 **यं प्रणम्य पप्रच्छ पृथ्वीशो विमलाभिधम्।**
यतिं भेदं चतुर्वर्गगतं गीर्वाणवन्दितम्।। 2।।

उस राजा ने देवों द्वारा वन्दित विमल-बुद्धि वाले उन यति **विमलबुद्धि** को प्रणाम कर धर्म-अर्थादि-चतुर्वर्ग का विश्लेषण पूछा—

राजा के प्रश्न के उत्तर में यति विमलबुद्धि द्वारा धर्म-अर्थादि चतुर्वर्ग का विश्लेषण

1190 **नृपवाक्यं समाकर्ण्य निजगाद यतीश्वरः।**
धर्मार्थकाममोक्षाणां शृणु भेदं महीपते।। 3।।

राजा का प्रश्न सुनकर यतीश्वर ने कहा—"हे राजन्! चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के भेद-विश्लेषण सुनो।"

1191 **नरामरनभोगानां सौख्यमेकं प्रकीर्तितम्।**
द्वितीयं मोक्षसौख्यञ्च तयोर्मोक्षं प्रशस्यते।। 4।।

पहला सुख मनुष्यों, देवों और गन्धर्वों का सांसारिक सुख-भोगों का

होता है तथा दूसरा मोक्ष-सौख्य होता है, किन्तु इन दोनों में से मोक्ष-सौख्य ही बढ़कर है।

सम्यक्त्व-विश्लेषण

1192 यत्राविनश्वरं सौख्यं परमानन्ददायकम्।
सम्यग्दृग्ज्ञानचारित्रप्रभवात्तदवाप्यते।। 5।।

क्योंकि उसमें (मोक्ष में) परमानन्ददायक एवं अविनश्वर-सुख होता है, और वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप **रत्नत्रय** के प्रभाव से प्राप्त किया जाता है।

1193 यथा नाभी रथाङ्गस्य सतां सारतरं मतम्।
तथा रत्नत्रयस्यापि ज्ञेयं सम्यक्त्वमङ्गिभिः।। 6।।

जिस प्रकार विद्वानों ने रथ के चक्र का प्रधान अंग उसकी धुरी को बताया है, उसी प्रकार सम्यक्त्व रत्नत्रय का आधार है।

1194 विफलं स्यात्तपस्तीव्रं सम्यक्त्वरहितात्मनाम्।
यथा रिक्थं बिना चारु यौवनं नयनप्रियम्।। 7।।

—"जिस प्रकार धन के बिना नयनाभिराम सुन्दर यौवन विफल रहता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व से रहित साधकों का कठिन तप भी व्यर्थ हो जाता है।

1195 इदानीं श्रूयतां भेदः सम्यक्त्वस्य ब्रबीमि ते।
निर्ग्रन्थो मोक्षमार्गः स्याद्देवाष्टादशदोषजित्।। 8।।

हे राजन्! इस समय मैं आपको सम्यक्त्व का भेद कहता हूँ— उसे सुनिये! मोक्ष-मार्ग ग्रन्थिरहित-निर्ग्रन्थ तथा अठारह दोषों को जीतने वाला होता है।

1196 परिग्रहपरित्यक्तं तपो धर्मो दयापरः।
एतद्विनिश्चयं यच्च तत्सम्यक्त्वमुदाहृतम्।। 9।।

परिग्रह का त्याग, तपस्या, अहिंसा-धर्म तथा दयालुता तथा इनकी वृद्धि के लिए किया गया संकल्प को ही **सम्यक्त्व** कहा गया है।

1197 जीवाजीवास्रवा - बन्धसंवरौ निर्जरा तथा।
मोक्षश्चैतानि तत्त्वानि कीर्त्तितानि जिनेशिना।। 10।।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात तत्त्व जिनेश्वर ने बतलाए हैं।

1198 एतेषां यत्त्रिधा चित्ते श्रद्दधानं विसंशयम्।
तदीरितं जिनाधीशैः सम्यक्त्वं शिवकारणम्।। 11।।

उक्त सातों तत्त्वों के प्रति चित्त में मन, वचन एवं काय से किसी भी प्रकार के संशय से रहित श्रद्धान् करना ही सम्यक्त्व है। जिनेश्वरों ने उसे ही मोक्ष का कारण कहा है।

1199 धीमता द्विविधं ज्ञेयं प्रथमं तन्निसर्गजम्।
आगमाधिगमाज्जातं द्वितीयन्तु प्रकीर्त्तितम्।। 12।।

बुद्धिमानों को वह सम्यक्त्व दो प्रकार का जानना चाहिए, पहला वह **निसर्गज** (स्वाभाविक) तथा दूसरा आगम-शास्त्रों के अध्ययन से उत्पन्न अर्थात् **अधिगमज** कहा गया है।

1200 तस्याधिगमजस्यापि त्रिभेदाः परिभाषिताः।
भूपौपशमिकं नाम वेदकं क्षायिकं तथा।। 13।।

हे राजन्! उस अधिगमज-सम्यक्त्व के भी तीन भेद कहे गए हैं— 1. औपशमिक-सम्यक्त्व, 2. वेदक-सम्यक्त्व तथा 3. क्षायिक-सम्यक्त्व।

1201 अधो भागे यथा पंङ्कं पुष्करिण्यां वितिष्ठते।
भवत्युपरि पानीयं क्रमेणाच्छं विनिर्म्मलम्।। 14।।

पुष्करों (तालाबों) में जिस प्रकार अधो-भाग में कीचड़ जमा रहता है और ऊपर की ओर क्रमशः स्वच्छ निर्मल जल रहता है।

1202 उपशान्ते तथा दोषे स्यादौपशमिकं स्फुटम्।
सम्यक्त्वं प्रथमं पुंसां ज्ञेयं दृष्टान्ततोम्भ सः।। 15।।

ठीक उसी प्रकार दोषों के शान्त हो जाने पर जो पहला सम्यक्त्व होता

है, वही औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है, जिसे जल के उक्त दृष्टान्त से लोगों को समझना चाहिए।

तात्पर्य यह कि मिथ्यात्व और 4 अनन्तानुबन्धी कषाय रूप दोषों के उपशम होने पर स्पष्ट ही औपशमिक सम्यक्त्व प्रथम होता है। इस तथ्य को उक्त जल के दृष्टान्त से समझना चाहिए।

1203 **यथा स्वच्छं जलं भाण्डे विधिना विहितं शुभे।**
शेषं यत्किञ्चिदप्यस्ति मलं तच्छमितं पुनः।। 16।।

जिस प्रकार सुन्दर भाण्ड (पात्र) में विधिपूर्वक स्वच्छ जल रखा गया हो, तो जो कुछ भी बचे-खुचे मल (दोष) हैं वे भी शमित हो जाते हैं।

1204 **तथा दोषैः कियद्भिश्च क्षपितैः शुद्धभावतः।**
शेषैः प्रशमितैस्तच्च क्षायोपशमिकं मतम्।। 17।।

उसी प्रकार शुद्धभावना के प्रभाव से कुछ दोषों के समाप्त होने पर और बचे दोषों के दब जाने पर क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व होता है।

तात्पर्य यह कि कुछ दोष तो शुद्धभावों के होने से क्षय हो गए, शेष उपशम रूप से दबे रहे। कुछ मिले रहे। वही क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व माना गया है।

1205 **क्षायिकं तूपरि स्फूर्जत्सूर्यबिम्बमिवामलम्।**
निर्मलं नभसि व्यक्ते पयोदपटलैर्नृप।। 18।।

हे राजन्! क्षायिक-सम्यक्त्व तो मेघ-समुदाय से मुक्त आकाश में स्फुरायमान सूर्य-बिम्ब के समान निर्दोष-निर्मल होता है।

1206 **आन्तर्मौहूर्त्तिकी ज्ञेया प्रथमस्य स्थितिः परा।**
सम्यक्त्वस्य द्वितीयस्य पुनः षट्षष्टिसागराः।। 19।।

प्रथम उपशम-सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त-काल की जानना चाहिए। द्वितीय क्षयोपशम-सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति 66 सागर की कही गई है।

1207 एते द्वे एव सम्यक्त्वे संसारसुखकारणे।
तृतीयं मोक्षसौख्यस्य दानदक्षं न संशयः।। 20।।

उक्त दोनों ही सम्यक्त्व सांसारिक सुख के कारण हैं, जबकि तीसरा सम्यक्त्व मोक्ष प्राप्त कराने में सक्षम माना गया है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं।

1208 निःशङ्कादिगुणैर्युक्तं यो बभार सुदर्शनम्।
स ना न दुर्गतिं याति बद्धायुर्यदि नो पुरा।। 21।।

जो निःशङ्कादिगुणों से युक्त सम्यक्त्व को धारण करता है, वह पुरुष यदि पहले से दुर्गति बद्धायु वाला न हो तो वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं करता।

1209 लक्षणं दर्शनस्यैतत् तवाग्रे कथितं मया।
इदानीं शृणु भूपेन्द्र ज्ञानं ज्ञानवतां मतम्।। 22।।

इस प्रकार हे राजन्! मैंने आपको सम्यक्त्व का लक्षण कहा। अब सम्यग्ज्ञानियों द्वारा मान्य सम्यग्ज्ञान का लक्षण बता रहा हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनिए।

सम्यग्ज्ञान-स्वरूप-विश्लेषण

1210 मतिश्रुतावधिज्ञानत्रितयं मतिशालिना।
ज्ञेयं तथा परे द्वे तु मनःपर्ययकेवले।। 23।।

बुद्धिमानों ने तीन प्रकार के ज्ञान यथा — मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान तथा दो उत्कृष्ट ज्ञान, यथा — मनःपर्यय एवं केवलज्ञान इस प्रकार पाँच प्रकार के ज्ञान बतलाए हैं।

1211 कर्मक्षयोपशमनाज्जायते सुमतिः श्रुतम्।
अवधिश्च तथा तुर्यं मनःपर्ययमेव च।। 24।।

ज्ञानावरण-कर्म के क्षयोपशम से सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, सुअवधिज्ञान तथा चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है।

1212 घातिकर्म्मक्षयेणाशु जायते मोक्षकारणम्।
निर्म्मलं केवलं ज्ञानमनेकार्कसमप्रभम्।। 25।।

घातिकर्मों के क्षय से शीघ्र ही अनेक सूर्यों के समान प्रभा वाला तथा मोक्षगति का कारण निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

1213 परोक्षं पश्यतो लोकालोकावाद्ये मतिश्रुती।
तृतीयं चैव विज्ञानं लोकमेव विनिर्मलम्।। 26।।

आदि के मतिज्ञान एवं श्रुतिज्ञान दोनों लोक और अलोक को परोक्ष रूप से जानते हैं और तीसरा निर्मल अवधिज्ञान लोक को ही जानता है।

1214 मनःपर्ययविज्ञानमुत्कर्षेण सुनिश्चितम्।
मनुष्यलोकमात्रञ्च पश्यत्यागमभाषितम्।। 27।।

मनःपर्यय-विज्ञान उत्कृष्ट रूप से मनुष्य लोक मात्र अढाई-द्वीप 45 लाख योजन को जानता है, यह सुनिश्चित है। ऐसा आगम में लिखा है।

1215 लीलया केवलज्ञानं लोकालोकौ विलोकते।
यथावद् युगपद् बाधापरिमुक्तं समन्ततः।। 28।।

केवलज्ञान बाधा (कर्मावरण) रहित समग्ररूप में यथावत् एक साथ लोक तथा अलोक दोनों की लीलापूर्वक (सहज रूप में) प्रत्यक्ष जानता/देखता है।

1216 ज्ञाने मतिश्रुती येनाराधिते गुरुभक्तितः।
सम्प्राप्तं केवलं तेन बिना भ्रान्त्या शिवप्रदम्।। 29।।

जिसने गुरु-भक्ति से मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान का आराधन किया है, उसी से निःसंदेह ही मोक्ष-गति प्रदान करने वाला केवलज्ञान प्राप्त किया जाता है।

1217 ज्ञानमेतत्त्रिधा पुंसां सेवनीयं प्रयत्नतः।
कालोपधान सन्मानानिह्नवप्रश्रयादिभिः।। 30।।

उक्त तीन प्रकार के सम्यग्ज्ञान का सेवन भद्र पुरुषों को सावधानीपूर्वक

करना चाहिए।

तात्पर्य यह कि उक्त ज्ञानों को **अष्टांगों** के साथ सेवन करना चाहिए। यथा — 1. कालाध्ययन, 2. उपधान (धारण करना), 3. सम्मान, 4. अनिन्ह्व (छिपाना नहीं), 5. प्रश्रय (बहुमान करना) तथा 6. अक्षर-शुद्धि, 7. अर्थशुद्धि तथा 8. उभयशुद्धि। ये ज्ञान के अष्टांग माने गए हैं।

सम्यग्चरित्र-स्वरूप-विश्लेषण

_1218_ ज्ञानमेतत्तत्वादिष्टमिदानीं शृणु भूपते।
कथ्यमानं मया चारु-चारित्रं दुरितापहम्।। 31।।

हे राजन्, इस प्रकार तुम्हें सम्यग्ज्ञान का स्वरूप-लक्षण कहा। अब आगे मेरे द्वारा कहा जाने वाला पाप-क्षयकारक सम्यग्चारित्र का स्वरूप-लक्षण सुनो।

_1219_ न हन्तव्यास्त्रिधा जीवा न वक्तव्यं वचोऽनृतम्।
नादत्तं द्रविणं ग्राह्यं त्याज्यमब्रह्म सर्वदा।। 32।।

हे राजन्, मन, वचन एवं काय तथा कृत, कारित एवं अनुमोदनापूर्वक जीवों की हिंसा न करना, मिथ्या वचन न बोलना, बिना दिया हुआ धन ग्रहण न करना, सर्वदा अब्रह्मसेवन का त्याग और बाह्याभ्यन्तर-परिग्रहों का सर्वदेश-त्याग रूप पाँचों महाव्रतों को करुणायुक्त पुरुषों को जानना चाहिए। — *युग्मकम्*

_1220_ सबाह्यभ्यन्तरः सङ्घो मोक्तव्यः करुणापरैः।
महाव्रतानि चैतानि पञ्च जानीहि भूपते।। 33।।

— *युग्मकम्*

करुणा-धर्मी साधुओं के लिए बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर देना चाहिए। पंच **महाव्रत** निम्न प्रकार हैं— 1. अहिंसा-महाव्रत, 2. सत्य-महाव्रत, 3. अचौर्य-महाव्रत, 4. ब्रह्मचर्य-महाव्रत एवं 5. सर्वपरिग्रह-त्याग महाव्रत। ये महाव्रत दिगंबर जैन-मुनियों के होते हैं।

1221 यथा न जीवघातः स्यात् क्रियते गमनं तथा।
विकथा दूरतस्त्याज्या विशुद्धं गृह्यतेऽनशम्।। 34।।

जिस प्रकार गमन करने से जीवों का घात न हो, उस प्रकार गमन करने को प्रथम **ईर्या-समिति** कहते हैं। स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्र या राजनीति कथा आदि विकथाएँ कही जाती हैं। एतद्विषयक खोटी बातों का त्याग करने को तथा हित, मित एवं प्रियवचनों को दूसरी **भाषा-समिति** कहते हैं। निर्दोष शुद्ध-भोजन ग्रहण करने को तीसरी **एषणा-समिति** कहते हैं।

1222 विलोक्यादाननिक्षेपविधानं प्रविधीयते।
व्युत्सर्गं च गतच्छिद्रे निर्जीवे पृथिवीतले।। 35।।

नेत्रों से सावधानी पूर्वक देख-परखकर तथा उसका शोधन कर उठाना-रखना इसे चौथी **आदान-निक्षेपण** समिति कहते हैं तथा छिद्र-रहित निर्जीव भूमि पर मल-मूत्र का त्याग करने को पाँचवीं **व्युत्सर्ग समिति** कहते हैं।

1223 एताः समितयः पंच प्रोक्ता गुप्तित्रयं शृणु।
मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिस्तथा परा।। 36।।

अभी उक्त पाँच समितियों की चर्चा की गई। हे राजन्, अब तीन **गुप्तियों** को सुनो! उनके नाम इस प्रकार हैं— 1. मनो-गुप्ति, 2. वचन-गुप्ति एवं 3. काय-गुप्ति।

1224 त्रयोदशविधं प्रोक्तं चारित्रं पुरतस्तव।
अधुना श्रूयतां राजन् पञ्चधाचारलक्षणम्।। 37।।

हे राजन्, अभी मैंने आपको 5 महाव्रत, 5 समितियाँ तथा 3 गुप्तियों रूप 13 प्रकार के मुनियों के चारित्र की चर्चा की। अब आगे पाँच प्रकार के आचार के लक्षण सुनिए।

पञ्चविध चारित्र

1225 प्रथमो जिनागमे प्रोक्तो ज्ञानाचारस्तमोपहः।
द्वितीयो दर्शनाचारो दर्शनावरणापहः।। 38।।

1226 तपाचारस्तृतीयस्तु वीर्याचारश्चतुर्थकः।
पञ्चमः प्राप्तसद्बोधैश्चारित्राचार इष्यते।। 39।।

—युग्मकम्

जिनागम में **ज्ञानाचार** नामका प्रथम आचार कहा गया है जो ज्ञानावरण-कर्म रूप अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है। **दर्शनाचार** नामका दूसरा आचार कहा गया है जो कि दर्शनावरण-कर्म को नष्ट करता है। **तपाचार** नामका तीसरा आचार कहा गया है, **वीर्याचार** चौथा आचार कहा गया है और सम्यग्ज्ञानियों ने **चारित्राचार** नामका पाँचवाँ आचार कहा है।।

— 38-39।। *—युग्मकम्*

1227 आचारः पञ्चधा प्रोक्तो मुनीनां गतवाससाम्।
सम्प्रति स्थिरचित्तेन चारित्रं शृणु पञ्चधा।। 40।।

हे राजन्, अभी (पूर्वोक्त) दिगंबर जैन मुनियों का पाँच प्रकार का आचार कहा गया। अब उसके आगे उनका पाँच प्रकार के चारित्र को सुनो।

1228 आदौ सामायिकं ज्ञेयं छेदोपस्थापनं परम्।
परिहारविशुद्धिश्च सूक्ष्मादिसाम्परायकम्।। 41।।

1229 यथाख्यातं च चारित्रं पञ्च व्रतिनां मतम्।
बहुविधं तपः कुर्युरनगारा मुनीश्वराः।। 42।।

—युग्मकम्

प्रथम **सामायिक-चारित्र,** द्वितीय **छेदोपस्थापना-चरित्र,** तृतीय **परिहार-विशुद्धि-चारित्र,** चौथा **सूक्ष्म-साम्पराय-चारित्र** और पाँचवाँ **यथाख्यात-चारित्र।** ये सभी चारित्र उक्त महाव्रती मुनियों के माने गए हैं। अनगार अर्थात् गृह-त्यागी मुनि और भी अनेक प्रकार के तपों को करता रहे। यथा —1. अनशन-तप, 2. अवमौदर्य-तप, 3. वृत्ति-परिसंख्यान-तप, 4. रस-परित्याग-तप, 5. विविक्त-शय्यासन-तप, 6. काय-क्लेश-तप, 7. प्रायश्चित-तप, 8. विनय-तप, 9. वैय्यावृत-तप, 10. स्वाध्याय-तप, 11. व्युत्सर्ग (ममत्व) त्याग-तप एवं 12. ध्यान-तप।। 41-42।। *—युग्मकम्*

श्रावकों के पाँच स्थूल-अणुव्रत

1230 ये पुनः श्रावकाः राजन् भवन्ति भवभीरवः।
धारयन्तिस्म ते स्थूलाणुव्रतानि शुभाशयाः।। 43।।

हे राजन्, फिर जो श्रावक (सद्गृहस्थ) इस संसार-मार्ग भयभीत रहते हैं, शुभ अभिप्राय भद्र परिणामी वे (श्रावक) पाँच प्रकार के **स्थूल-अणुव्रतों** को धारण करें।

1231 न दृष्टिमुष्टिसंधानं विधाय करुणापरैः।
हन्तव्याः प्राणिनस्त्रेधा चतुर्द्धा द्वीन्द्रियादयः।। 44।।

दयालु श्रावकों (सद्गृहस्थों) को दृष्टि-मुष्टि, मन्त्र-तन्त्र शस्त्रादि से मन, वचन एवं काय से चार प्रकार के दो इन्द्रियादि जीवों का घात नहीं करना चाहिए। इसे प्रथम **स्थूल-अहिंसाणुव्रत** कहा गया है।

1232 नालीकवचनं वाच्यं परसंतापभीतिदम्।
परकीयं धनं ग्राह्य न क्वापि विशदाशयैः।। 45।।

दूसरों को सन्तापकारी भयोत्पादक असत्य वचन न बोलना ही द्वितीय स्थूल **सत्याणुव्रत** कहलाता है और निर्मल अभिप्राय वाले श्रावक पराए धन को गृहण न करें इसे तृतीय स्थूल **अचौर्याणुव्रत** कहा गया है।

1233 सदा मनसि मातेव द्रष्टव्या परकामिनी।
परिग्रहस्य सर्वस्य विधेया परिमा नरैः।। 46।।

परस्त्री को अपने मन में निरन्तर ही माता के समान मानना, उसके प्रति कोई राग-भावना न रखना इसे चौथा स्थूल **ब्रह्मचर्याणुव्रत** कहा गया है। श्रावकों (सद्गृहस्थों) को सभी प्रकार के परिग्रहों का परिमाण (प्रमाण) करना चाहिए। इसे ही पाँचवाँ स्थूल **परिग्रह-परिमाणुव्रत** कहा गया है।

इस प्रकार इन्हें श्रावकों के पाँच अणुव्रत जानना चाहिए।

तीन गुणव्रत

1234 पञ्चधाणुव्रतं प्रोक्तं कथ्यमानं गुणव्रतम्।
त्रिःप्रकारं नराधीश शृणु संसारसातनम्।। 47।।

हे राजन्, यहाँ तक श्रावकों के पाँच अणुव्रतों का कथन हुआ। अब संसार के कष्टों से मुक्ति दिलाने वाले **तीन गुणव्रतों** के लक्षण सुनिए।

1235 दिग्विदिग्गमनस्यापिप्रमा कार्या विचक्षणैः।
न गम्यते सपापेषु देशेषु वृषलालसैः।। 48।।

धर्म में लवलीन श्रावक (सद्गृहस्थ) को पापी-देशों में गमन नहीं करना चाहिए। अतः उन्हें दिशाओं और विदिशाओं में गमनागमन का प्रमाण अवश्य करना चाहिए। श्रावकों का यही प्रथम **दिग्व्रत** तथा दूसरा **देशव्रत** नामका गुणव्रत कहा गया है।

1236 विविधानर्थदण्डानां वर्जनं प्रविधीयते।
विडालकुक्कुटादीनां पापविन्यस्तचेतसाम्।। 49।।

विविध प्रकार के अनर्थ (बिना किसी प्रयोजन) के दण्डों (अशुभ मन, वचन एवं काय) का त्याग किया जाता है। पापों में चित्त रखने वाले विडाल (बिल्ली-बिल्ला) कुक्कुट (मुर्गा) आदि को पालने-पोषने का त्याग **अनर्थदण्डत्याग व्रत** तीसरा गुणव्रत कहा गया है।

चार-शिक्षाव्रत

1237 सामायिकं सदाचारैः क्रियते समतायुतैः।
उपोष्यते सदा मासमध्ये पर्वचतुष्टयम्।। 50।।

और, हे राजन्, श्रावकों के चार प्रकार के शिक्षाव्रतों में से प्रथम शिक्षाव्रत **सामायिक** है अर्थात् समता-भाव सहित सदाचारी श्रावक पाँच प्रकार के पापों के त्याग रूप सामायिक करते हैं।

इसी प्रकार द्वितीय शिक्षाव्रत **प्रोषधोपवास** कहा गया है। इस व्रत में महीने की दो अष्टमी तथा दो चतुर्दशी इन चार पर्वों में प्रत्येक माह में निर्जल

मौनपूर्वक उपवास करना चाहिए। इसे ही प्रोषधोपवास माना गया है।

1238 स्वशक्त्या दीयते दानं मुनिभ्यो गुरुभक्तितः।
संख्या भोगोपभोगानां विधातव्या प्रयत्नतः।। 51।।

तृतीय शिक्षाव्रत **अतिथिसंविभाग** कहलाता है, इसमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक मुनियों को अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए।

चतुर्थ शिक्षाव्रत **भोगोपभोग प्रमाण-व्रत** कहलाता है जिसके अनुसार भोग (जो एक बार भोगने में आवे) तथा उपभोग (जो बार-बार भोगने में आवे, ऐसी) वस्तुओं की संख्या में प्रमाण का प्रयत्न करना।

1239 सल्लेखना विधानेन शुभध्यानेन चासवः।
त्यजनीया निजा भव्यैर्निदानरहिताशयैः।। 52।।

अन्तिम व्रत सल्लेखना है, जिसके अनुसार शास्त्रोक्त विधि-विधान से शुभ-ध्यानपूर्वक निदान (आगे की अभिलाषा) रहित अभिप्राय वाले भव्य श्रावकों द्वारा अपने प्राणों का त्याग करना ही उक्त व्रत कहलाता है। इसे सल्लेखना व्रत समाधिमरण अथवा संन्यास-मरण भी कहते हैं।

श्रावक के लिए सप्तव्यसन-त्याग आवश्यक

1240 मद्यमांसमधुद्यूतवेश्यापापर्द्धिभिः समम्।
उदुम्बराणि पञ्चापि वर्जनीयानि सत्तमैः।। 53।।

मद्य-त्याग, मांस-त्याग, मधु-त्याग, द्यूत-त्याग, वेश्या-गमन-त्याग, पापर्द्धि अर्थात् शिकार-त्याग के साथ-साथ **पाँच उदुम्बर** (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर एवं गूलर) फलों का त्याग उत्तम श्रावकों (सद्गृहस्थों) को अवश्य करना चाहिए।

रात्रि-भोजन त्याग आवश्यक

1241 दिनात्यये न भोक्तव्यं संत्याज्यं दिनमैथुनम्।
उक्तानि द्वादशैतानि व्रतानि मुनिनायकैः।। 54।।

दिन की समाप्ति होने पर अर्थात् सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना

चाहिए। उसी प्रकार दिवामैथुन का भी त्याग करना चाहिए, इस प्रकार मुनिनायकों के द्वारा श्रावकों के बारह व्रत कहे गए हैं।

1242 **श्रावकाणामिमं धर्मं ये व्यधुः स्थिरमानसाः।**
ते भुक्त्वा दिव्यसौख्यानि नरोरगसुधाशिनाम्।। 55।।

स्थिर मन वाले जो लोग श्रावकों के उक्त व्रतों का पालन करते हैं, वे नरेन्द्र, नागेन्द्र एवं देवेन्द्रों के दिव्य-सौख्यौं का भोग करके—

1243 **ततो व्रजन्ति निर्व्वाणं हत्वा कर्माष्टकं स्फुटम्।**
पञ्चमे सप्तमे वापि भवे भद्रगुणान्विताः।। 56।।

—युग्मकम्

ज्ञानावरणादि अष्ट-कर्मों को नष्टकर अगले पाँचवें या सातवें भव में भद्रगुणों से युक्त होकर निर्वाण को अवश्य ही प्रात करते हैं। *—युग्मकम्*

1244 **एकादशाङ्गशास्त्रज्ञः कुर्वन्नपि महत्तपः।**
यदि सम्यक्त्वहीनः स्यात्तदा प्राप्नोति नो शिवम्।। 57।।

ग्यारह अंगागमों का ज्ञाता तथा कठोर तपस्या करने वाला साधक भी यदि सम्यक्त्व से हीन है, तो वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः सम्यग्दर्शन (सच्चा श्रद्धान्) अवश्य होना चाहिए।

1245 **धर्मो धर्मार्थकामानां सारः सर्वसुखप्रदः।**
अर्थः कामार्थयोर्मुख्यः कामोऽर्थाद्भवति ध्रुवम्।। 58।।

धर्म, अर्थ एवं काम पुरुषार्थों में धर्मपुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है। वही सभी प्रकार के सुखों को देने वाला है। काम एवं अर्थ पुरुषार्थों में अर्थ पुरुषार्थ ही मुख्य है क्योंकि अर्थ से ही काम पुरुषार्थ सिद्ध होता है।

1246 **न पुनः कोऽपि कामस्य गुणोऽस्ति पृथिवीपते।**
अनेकशो महादोषाः दृश्यन्ते दुरितावहाः।। 59।।

हे राजन्, काम का कोई गुण नहीं होता, बल्कि उसमें अनेक प्रकार के पापकारक दोष देखे जाते हैं।

1247 कामासक्तो नरो कुर्वन् पापं न शङ्कते क्वचित्।
पापतः पतितिश्वभ्रे व्रतशीलविवर्जितः।। 60।।

कामासक्त मनुष्य कहीं भी पाप करते हुए शङ्कित नहीं होता। व्रतशील से रहित वह पापों के गर्त में गिर जाता है।

1248 बलार्द्धचक्रिचक्रेशशक्रचन्द्रफणीश्वराः।
भोगैर्न यत्र तृप्यन्ति परेषां तत्र का कथा?।। 61।।

जिस काम के भोगों से बलभद्र, अर्धचक्री (नारायण-प्रतिनारायण), चक्रवर्ती, इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र आदि भोगों से सम्पन्न रहते हुए भी जो उन भोगों से तृप्त नहीं होते तब वहाँ दूसरे सामान्यजनों की क्या कथा?

1249 तृष्णा किल महाभोगसेवया परिवर्द्धते।
हुताशन इवैधोभिः परिक्षिप्तैरनारतम्।। 62।।

बड़े-बड़े सांसारिक भोगों के सेवन से तृष्णा उसी प्रकार अधिकाधिक बढ़ती जाती है, जिस प्रकार डाले गए ईन्धनों से आग लगातार बढ़ती ही जाती है।

1250 भोगासक्ता व्रतैर्हीना भ्रमन्ति भवसागरे।
प्राणिनस्तीव्रदुःखार्त्तास्तनुग्रहणमोक्षणैः।। 63।।

व्रतों से हीन तथा भोगों में आसक्त प्राणी बार-बार शरीर ग्रहण (जन्म) और शरीर-त्याग (मरण) के द्वारा तीव्र दुखों से व्याकुल होकर संसार रूपी समुद्र में भटकते रहते हैं।

1251 ये पुनस्तपसा क्षीणशरीरा ज्ञानिनोऽमलाः।
मुनयस्तदद्रुतं यान्ति पदं मोक्षस्य शाश्वतम्।। 64।।

किन्तु जो तपस्या से क्षीण शरीर वाले सम्यग्ज्ञानी, निर्मल परिणाम वाले मुनिगण हैं, वे शीघ्र ही उस शाश्वत मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेते हैं।

1252 तन्निशम्य वचः सारं मुनिवक्त्रविनिर्गतम्।
अभून्मनः प्रमोदात्तं सर्वेषां सहसा तदा।। 65।।

मुनिराज के मुख से निकले हुए उन सारभूत वचनों को सुनकर सहसा ही राजा आदि सभी का मन प्रमुदित हो गया।

1253 भूयः पप्रच्छ भूपालः प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।
ललाटे परिसंस्थाप्य पाणीपद्मसमप्रभौ।। 66।।

फिर कमल-सदृश दोनों हाथों को ललाट से लगाकर उस राजा ने मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम करके पूछा—

मुनीन्द्र विमलबुद्धि द्वारा पूर्व-जन्मों के वर्णन

1254 कथयस्व प्रसादेन स्वामिन् पूर्वभवावलीः।
असुरस्याच्युतेन्द्रस्य पित्रोः पत्न्यास्तथा मम।। 67।।

—हे स्वामिन्! कृपाकर अच्युतेन्द्र का, असुर का, माता-पिता का, पत्नी का तथा मेरा पूर्वजन्म वृत्तान्त भी कहिए।

1255 धनभार्यावियोगञ्च संयोगं मे निवेदय।
तद्वचो भूपतेः श्रुत्वा निजगाद मुनीश्वरः।। 68।।

साथ ही धनपति-भार्या का वियोग और संयोग भी मुझे बतावें। राजा के उस विनम्र निवेदन को सुनकर मुनीश्वर ने कहा—

1256 अत्र जम्बूमति द्वीपे सप्तक्षेत्रसमन्विते।
ऐरावताभिधे क्षेत्रे षट्खण्डपरिमण्डिते।। 69।।

सात क्षेत्रों से युक्त इसी **जम्बूमान-द्वीप** में छह खण्डों से सुशोभित **ऐरावत** नामक क्षेत्र में।

1257 समस्त्यरिपुरं नाम सुनाशीरपुरोपमम्।
राजा प्रभञ्जनस्तस्य पुरस्याजनि शासिता।। 70।।

—युग्मकम्

—इन्द्रपुरी के समान **अरिपुर** नामका नगर है, उस नगर पर शासन

करने वाला **प्रभञ्जन** नामका राजा हुआ।

**1258 धारणीत्याख्यया ख्याता राज्ञी तस्याभवत्प्रिया।
मन्त्री च वज्रसेनाख्यो बुद्ध्या जितबृहस्पतिः।। 71।।**

धारणी नाम से प्रसिद्ध उसकी प्रिया रानी थी और अपनी कुशल-बुद्धि के द्वारा बृहस्पति को भी जीतने वाला **वज्रसेन** नाम का उसका मन्त्री था।

राजा वज्रसेन की पुत्री कीर्त्तिसेना

**1259 स्त्रीजानुदयता तस्य मन्त्रिणो मतिशालिनः।
तयोरभूत्सुता साध्वी कीर्त्तिसेना मनोहरा।। 72।।**

उस बुद्धिमान् मन्त्री – वज्रसेन की पत्नी का नाम **जानुदयता** था। उन दोनों से मनोहर एवं साध्वी **कीर्तिसेना** नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

**1260 मुदा शठकठो नाम सुन्दरां तामुपेयिवान्।
उत्सवेन मुराराति लक्ष्मीमिव समुद्रजाम्।। 73।।**

शठकठ नाम के किसी व्यक्ति ने प्रसन्नता से उत्सवपूर्वक उस सुन्दरी को उसी प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार विष्णु ने समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी को प्राप्त किया था।

**1261 धनदत्तः पुरे तत्र धनाढ्यो वणिजां पतिः।
धनभद्रा प्रिया तस्य धनमित्रःसुतस्तयोः।। 74।।**

उसी नगर में **धनदत्त** नामका अत्यन्त धनी तथा बनियों का पति (वणिक्पति) रहता था। उसकी प्रिया धनभद्रा तथा उन दोनों का पुत्र **धनमित्र** था।

**1262 अपरोपि च तत्रासीन्नन्दिदत्तो वणिक्पतिः।
नन्दिभद्राभिधा भार्या नन्दिमित्रोऽङ्गजस्तयोः।। 75।।**

वहाँ **नन्दिदत्त** नामका एक दूसरा भी वणिक्पति रहता था। उसकी **नन्दिभद्रा** नामकी पत्नी थी और उन दोनों का पुत्र था – **नन्दिमित्र**।

1263 त्रयोऽप्यणुव्रतोपेता गुणशिष्यव्रतान्विताः।
सम्यक्त्वभूषणाधारा मिथ्यात्वपरिवर्जिताः।। 76।।

उक्त तीनों (वज्रसेन, धनदत्त एवं नन्दिमित्र) ही अणुव्रतों, गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों से युक्त थे—मिथ्यात्व से रहित तथा सम्यक्त्व रूप भूषण के आधार थे।

1264 धननन्द्यादिमित्रौ तौ वेदशास्त्रविचक्षणौ।
परस्परकृतस्नेहौ प्रख्यातौ क्षितिमण्डले।। 77।।

धनमित्र और नन्दिमित्र ये दोनों ही वेद-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। वे एक-दूसरे से प्रेम करने वाले तथा पृथिवीमण्डल पर विख्यात थे।

1265 धनमित्रस्य तत्राग्रे नन्दिमित्रो विदग्रणीः।
जिनागमं समाचख्यौ नानादृष्टान्त-हेतुभिः।। 78।।

विद्वानों में अग्रगण्य उस नन्दिमित्र ने वहाँ धनमित्र के सम्मुख विविध प्रकार के दृष्टान्तों और हेतुओं के द्वारा जिनागम की व्याख्या की।

1266 तथापि दर्शनं तस्य धनमित्रस्य मानसे।
न बबन्ध स्थितिं भूप जलं वा नलिनीदले।। 79।।

हे राजन्, फिर भी धनमित्र के मन में जैनागमों की वह व्याख्या तथा उसका दर्शन उसी प्रकार स्थिर नहीं हुआ, जिस प्रकार कमलिनी के पत्ते पर जल स्थिर नहीं होता।

1267 मोहोदयवशात् सर्वं विपरीतं विलोकते।
नदीतीरं नगान्नौस्थो नरो वा सलिले व्रजन्।। 80।।

नाव पर बैठकर पानी में जाता हुआ मनुष्य जिस प्रकार नदी-किनारे को और वहाँ के वृक्षों को प्रतिकूल दिशा में जाते हुए देखता है, ठीक उसी प्रकार मोहनीय-कर्म के वशीभूत होकर मनुष्य सबको विपरीत ही देखता है।

1268 सद्भावसुहृदः स्नेहान् मोहनीयस्य कर्मणः।
शमेन तैस्त्रिभिर्भक्त्या धनमित्रादिभिर्जनैः।। 81।।

1269 नवकोटी विशुद्धान्नं वित्तीर्णं भवभीरवे।
समाधिगुप्ति निर्ग्रन्थ नाथाय विधुतैनसे।। 82।।
—*युग्मकम्*

स्नेह एवं सद्भावना वाले तथा मोहनीय-कर्म के उपशम से धनमित्रादि उन तीनों ने मिलकर भक्तिपूर्वक नव-कोटि से विशुद्ध, निर्दोष आहार, संसार से कातर एवं निष्पाप **समाधिगुप्त** नामके आचार्य के लिए पडगाह कर प्रदान किया।। 81-82।। —*युग्मकम्*

मुनिराज समाधिगुप्त की निन्दा का दुष्फल

1270 मुनीन्द्रं मललिप्ताङ्गं विलोक्य धनभद्रया।
विहस्यावाचि वीक्षन्त्या निजभर्तुर्मुखाम्बुजम्।। 83।।

उन मुनीन्द्र के शरीर को मल से लिप्त देखकर धनभद्रा अपने पति के मुख-कमल को देखती हुई व्यंग्यपूर्वक हँसकर कहा—

1271 तपस्तीव्रमिदम्भद्रं परमेतद्विरूपकम्।
यद्भ्रमन्ति जने नित्यं मलिनाङ्गानिरम्बराः।। 84।।

उन मुनीन्द्र की कठोर तपस्या तो ठीक है किन्तु यह शोभनीय नहीं कि जो दिगम्बर (वस्त्ररहित) और मलिन शरीर वाले होकर भी लोगों के मध्य भ्रमण करते रहते हैं।

1272 ततो बद्धं तया तेन निन्द्यवाक्येन तत्क्षणात्।
चतुर्विंशतिवर्षाणि भोगावरणकर्म्म वै।। 85।।

मुनीन्द्र के प्रति उस निन्दा-वाक्य के कारण उस सेठानी धनभद्रा ने तत्काल ही 24 वर्षों की स्थिति वाले भोगान्तराय-कर्म का बन्ध कर लिया।

1273 मन्त्रिणो वज्रसेनस्य सुतायाः पतिरुद्धतः।
कुधीः शठकठो नाम्नाऽनर्थानां विधिरुल्बणः।। 86।।

मन्त्री वज्रसेन की पुत्री **कीर्तिसेना** का पति **शठकठ** कुत्सित बुद्धि, उद्धत, व्यसनी एवं अनेक अनर्थकारी कार्यों को करने वाला सिद्ध हुआ।

1274 **जहार धनधान्यानि रमते स्म पराङ्गनाः।**
मद्यमांसमधुद्यूतवेश्यासङ्ग प्रसक्तधीः।। 87।।

वह शठकठ धनधान्य को चुराता था, परस्त्रियों के साथ रमण करता था, मद्य, मांस एवं मधु का सेवन करने वाला, जुआ खेलने वाला तथा वेश्याओं में आसक्त बुद्धि वाला था।

1275 **मन्त्रिणा वज्रसेनेन स्वजामाता निजौकसः।**
निःसारितो निज स्वामिबीडयासुतया सह।। 88।।

इस कारण मन्त्री वज्रसेन ने अपने पति के कुत्सित कार्यों से अत्यन्त लज्जित पुत्री (कीर्तिसेना) के साथ ही दामाद (शठकठ) को अपने घर से निकाल बाहर किया।

1276 **नन्दिदत्तस्य या भार्या नन्दिभद्राभिधा श्रुता।**
तामाश्रित्य स्थिता तन्वी कीर्त्तिसेना ततः स्वयम्।। 89।।

तब बेचारी वह तन्वी **कीर्तिसेना** स्वयं ही **नन्दिभद्रा** नामसे प्रसिद्ध जो सेठ नन्दिदत्त की पत्नी थी, उसकी आश्रित होकर रहने लगी।

सेठ नन्दिदत्तादि द्वारा पञ्चमी-व्रत की उपासना

1277 **नन्दिदत्तादिभिर्भक्त्या पञ्चवर्षाणि तैस्त्रिभिः।**
समुपोष्य प्रयत्नेन पञ्चमीविधिरुत्तमा।। 90।।

नन्दिदत्तादि उन तीनों सेठों ने लगातार पाँच वर्षों तक भक्तिपूर्वक उपवास करके सावधानीपूर्वक **पञ्चमी व्रत** का उत्तम विधि के साथ पालन किया।

1278 **ततः शक्त्यनुसारेण कृतमुद्यापनं वरम्।**
अष्टधामङ्गलद्रव्यैः श्रुतपूजापुरस्सरैः।। 91।।

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार आठ प्रकार के मङ्गल-द्रव्यों द्वारा श्रुतपूजा के साथ श्रेष्ठ **उद्यापन-कार्य** सम्पन्न किया।

1279 चतुर्व्वर्णस्य संघस्य वित्तीर्णं विधिनाशनम्।
यथायोग्येन दानेन प्राणिनोऽन्येऽपि तर्पिताः।। 92।।

उसी समय विधानपूर्वक चतुर्वर्णक-संघ को आहार-दान दिया तथा यथायोग्य दोनों द्वारा अन्य लोगों को भी तृप्त किया।

1280 तं निरीक्ष्य सुता वज्रसेनस्य निजमानसे।
चिन्तयामास दुःखार्त्ता कीर्त्तिसेना निरन्तरम्।। 93।।

उक्त पञ्चमी-व्रत विधि एवं उद्यापन-कार्य देखकर वज्रसेन की दुःखाकुल वह पुत्री कीर्तिसेना अपने मन में चिन्तित रहती हुई निरन्तर आर्त्तध्यान करती रहती थी और सोचती रहती थी कि—

कीर्त्तिसेना आत्म-गर्हा करती है

1281 धन्या धर्म्मं प्रकुर्वन्ति प्रजल्पन्ति प्रियं वचः।
नयन्ति श्लाघ्यतां जन्म लभन्ते भोगमीहितम्।। 94।।

वे लोग निश्चय ही धन्य हैं, जो धर्माचरण करते हैं, मधुर-वाणी बोलते हैं, जन्म को प्रशंसनीय बताते हैं एवं मनोभिलषित इष्ट भोगों को प्राप्त करते हैं।

1282 मदीयन्तु मनोहारि यौवनं समगात्तथा।
वृथेहारण्यसंजातसत्पुष्पप्रकरं यथा।। 95।।

मेरा मनोहर-यौवन तो अरण्योत्पन्न सुपुष्प-समुदाय के समान व्यर्थ ही बीत गया।

1283 नाकारि गुरुशुश्रुषा न दानं न तपोऽमलम्।
हा हारितं मया जन्म माणिक्यमिव दुर्ल्लभम्।। 96।।

न तो मैंने गुरुसेवा ही की, न किसी प्रकार का दान दिया और पवित्र तपस्या भी नहीं की। हाय! दुर्लभ माणिक्य के समान मैंने अपने जन्म को व्यर्थ में ही गँवा दिया।

1284 इति ध्यात्वा तयावाचिनन्दिभद्रा विरागया।
अहं मातः कुले जाता निर्म्मले जनविश्रुते।। 97।।

इस प्रकार विचार कर विरागवती उस पुत्री कीर्तिसेना ने नन्दिभद्रा से कहा — हे माँ! मैं लोकप्रसिद्ध निर्मल वंश में उत्पन्न हुई हूँ।

1285 पितृभ्यां सोत्सवं दत्ता सर्वाभरणभूषिता।
वराय निजहस्तेन विदन्ति सकलाः जनाः।। 98।।

सभी अलङ्करणों से विभूषित मैं अपने माता-पिता के हाथों द्वारा ही उत्सवपूर्वक वर (शठकठ) को समर्पित की गई थी, यह सभी लोग जानते हैं।

1286 इदानीं शृणु हे मातः पूर्व्वपापप्रभावतः।
तद्धनं सकलं नष्टं भर्त्ताऽभूद्व्यसनोद्यतः।। 99।।

और हे माँ! यह भी सुनो कि पूर्व-जन्म के पापों के प्रभाव से मेरा पति उद्धत तथा कुव्यसन-प्रिय हो गया और उसका सम्पूर्ण धन भी नष्ट हो गया है।

1287 पतिपुत्रप्रसादेन धन्या नार्यो निराकुलाः।
मुनिभ्यः सम्प्रयच्छन्ति सदा दानं चतुर्विधम्।। 100।।

सचमुच ही हे माँ, धन्य हैं वे नारियाँ जो अपने-अपने पति एवं पुत्रों के प्रसाद-प्रसन्नता से निराकुल होकर मुनियों को चारों प्रकार के दान दिया करती हैं।

1288 उपोषिता मया नास्मिन् जन्मनि श्रुतपञ्चमी।
अपरस्मिन् भवे भूयाद्योग्यतास्य विधेर्मम।। 101।।

दुर्भाग्य से इस जन्म में तो मैंने श्रुत पञ्चमी-व्रत का उपवास तक नहीं किया। अब मेरी यही कामना है कि इस विधि के लिए दूसरे जन्म में मुझे योग्यता प्राप्त हो।

1289 एकदा धनमित्रेण तापसः कौशिकाभिधः।
अदर्शि बहिरुद्याने जटाजूटाभिभूषितः।। 102।।

अन्य किसी एक दिन धनमित्र सेठ ने नगर के बाहिरी उद्यान में जटाजूट

से अभिभूषित, **कौशिक** नाम के एक तपस्वी को देखा।

1290 स ततस्तेन सद्भक्त्या विज्ञप्तश्च प्रियोक्तिभिः।
ततः प्रभृति तं द्रष्टुं प्रययौ स दिने-दिने।। 103।।

तभी उस (धनमित्र सेठ) ने मधुर वचनों से भक्तिपूर्वक उससे अपना परिचय किया और उसी समय से वह (धनमित्र) उसके दर्शनों के लिए प्रतिदिन जाने-आने लगा।

1291 प्रावृट्कालेऽथ सम्प्राप्ते पयोदपटलान्विते।
तदुद्याने मठे रम्ये योगं जग्राह तापसः।। 104।।

इसके बाद सघन-मेघ-पटल से युक्त वर्षाकाल के आने पर उन तपस्वी-कौशिक ने उसी उद्यान के सुन्दर मठ में योग ग्रहण किया।

1292 मुनि समाधिगुप्ताख्यस्तस्थौ मूले महीरुहः।
योगमादाय सद्ध्यानविधाननिरताशयः।। 105।।

सद्ध्यान की विधि में स्थिर एकाग्रचित्त **समाधिगुप्त** नामके वे मुनीन्द्र भी उसी उद्यान के एक वृक्ष-मूल के किनारे योग ग्रहण कर विराजमान थे।

1293 दिने-दिने नभोगामी समागत्य विहायसा।
मुनीन्द्रचरणौ नत्वा पूजयामास पङ्कजैः।। 106।।

वहाँ प्रतिदिन आकाश-मार्ग से एक विद्याधर आकर मुनीन्द्र समाधिगुप्त के दोनों चरणों में प्रणाम कर कमलों से उनकी पूजा किया करता था।

1294 उद्याने धनमित्रमित्रसहितो नन्द्यादिमित्रो मुदा।
निर्ग्रन्थेश समाधिगुप्तचरणौ पद्मप्रभाश्रीधरौ।।
श्रीमान् लक्ष्मणवत्प्रसूननिकरैः सम्पूज्य चक्रे नतिम्।
मूर्ध्ना लालितभूतलेन सततं निःश्रेयसाय त्रिधा।। 107।।

सेठ नन्दिमित्र ने अपने मित्र सेठ धनमित्र के साथ उसी उद्यान में प्रमुदित चित्त से परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनीन्द्र समाधिगुप्त के कमल-पुष्प की

प्रभा वाले श्रीधारक चरण-कमलों की श्री (कान्ति) वाले उत्तम लक्षणों से युक्त पुष्प-समूहों से पूजा कर अपने मस्तक को पृथिवी पर टेककर शुद्ध मन, वचन एवं काय से **श्रीधर** (ग्रन्थ लेखक) एवं साहू **लक्ष्मण** (ग्रन्थकार के आश्रयदाता) के समान ही मोक्ष-प्राप्ति हेतु नमस्कार किया।

....

इतिश्री भविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर–
विरचिते साहूलक्ष्मणनामाङ्किते–
भविष्यदत्तभवान्तरोपवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः।। 12।।

इस तरह विबुधश्रीधर द्वारा विरचित, साहू लक्ष्मण के नाम से अंकित श्री भविष्यदत्त चरित में भविष्यदत्त के जन्मान्तर वर्णन करने वाला यह बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

तेरहवाँ सर्ग

1295 यः सर्वज्ञमते प्ररोपितमतिर्मिथ्यात्वदोषोज्झितः,
सम्यक्त्वाभरणाभिरामवपुषा येनार्हदङ्घ्री स्तुतौ।
यस्य प्राप्य वचोऽत्रबान्धवजनाः। कुर्वन्ति मोदं मुहुः,
स श्रीमानिह लक्ष्मणः क्षितितले नन्दत्वमादेहजैः।। 1।।

जो लक्ष्मण (प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक एवं आश्रयदाता) साहू सर्वज्ञ-जिनेन्द्र के सिद्धान्तों में अपनी बुद्धि को स्थिर किए हुए हैं, मिथ्यात्वादि दोषों से रहित हैं, सम्यक्त्व रूपी आभूषण से विभूषित जिसने अरिहन्त के दोनों चरणों की स्तुति की है और जिस साहू (लक्ष्मण) के वचनों को प्राप्त कर यहाँ के समस्त बन्धु-बान्धव बारम्बार आनन्द का अनुभव करते रहते हैं वे श्रीमान् साहू (लक्ष्मण) इस पृथिवी-तल पर अपने पुत्र-पौत्रों के साथ निरन्तर आनन्दपूर्वक रहें।

विपुलमति-मुनीन्द्र द्वारा जन्मान्तर-कथन

1296 अथ भूयः समाचख्यौ विपुलादिमतिर्मुनिः।
श्रूयतां नृपते तेषां सर्व्वेषां कर्म्मणः फलम्।। 2।।

तत्पश्चात् **विपुलमति** उन मुनीन्द्र ने उस जिज्ञासु राजा से पुनः कहा — कि हे राजन्, अब उन सभी जीवों के पूर्वजन्म के कर्मों का फल अब सुनिए।

1297 स्नेहाद् योगावसाने स धनमित्रो निजैः सह।
चकारार्चा मठस्थस्य तापसस्य पदोर्मुदा।। 3।।

योग के अवसान होने पर उस **धनमित्र** ने अपने मित्रों के साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक मठस्थ (**कौशिक** नामके उस) तापस के चरणद्वय की प्रसन्नतापूर्वक पूजा की।

1298 **त्रयः पुनर्जिननाथस्य शासने निरताशयाः।**
नन्दिमित्राख्ययाख्यातो धनमित्रस्य मित्रकः।। 4।।

फिर, जिनस्वामी के शासन में दत्तचित्त वाले उन तीनों मित्रों **वज्रसेन, धनदत्त** एवं **नन्दिमित्र** ने भी पूजा की।

1299 **मन्त्री प्रबोध्य तेनाशु वज्रसेनसमाह्वयः।**
तत्पार्श्वतो महापूजा मुनेः कारापिता भृशम्।। 5।।

धनमित्र के घनिष्ठ मित्र नन्दिमित्र ने मन्त्री वज्रसेन को समझा-बुझाकर तुरन्त ही उससे पार्श्व में स्थित मुनिराज की महापूजा करवा दी।

1300 **घनसार-समायुक्तैः श्रीखण्डैः कुसुमोत्करैः।**
गम्भीरैः सुस्वरैर्वाद्यैर्वाद्यमानैश्चतुर्विधैः।। 6।।

वह पूजा कपूर से युक्त श्रीखण्ड-चन्दनों एवं कुसुम-समूहों से, चार प्रकार के गम्भीर, मधुर बजते हुए वाद्यों के संगीतात्मक भव्य वातावरण में कराई गई।

1301 **तमुत्सवं मुनीन्द्रस्य विलोक्य निजचक्षुषा।**
जज्वाल तापसश्चित्ते शिखीव घृतयोगतः।। 7।।

मुनीन्द्र की उस महापूजा को स्वयं अपनी आँखों से देखकर वह कौशिक तापस घी के संयोग से अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठा।

ईर्ष्या-वश कौशिक-तापस मन्त्री-वज्रसेन को मारने का विचार करता है

1302 **दध्यौ च धीरता त्यक्तं कम्पमानतनुस्तराम्।**
नयाम्येनं क्षयं दुष्टं केनोपायेन मन्त्रिणम्।। 8।।

अत्यन्त क्रोध से काँपते हुए शरीर वाले उस कौशिक-तापस ने धैर्य त्याग कर दुर्ध्यान किया—इस दुष्ट मन्त्री वज्रसेन को किस उपाय से मैं विनष्ट करूँ।

1303 दुष्टधीरेष सन्त्यज्य मां महान्तं तपस्विनम्।
स पूजां कुरुतेऽन्यस्य निर्ग्रन्थस्य प्रमोदतः।। 9।।

—यह दुर्बुद्धि-वज्रसेन मन्त्री मुझ जैसे महान् तपस्वी को छोड़कर अन्य निर्ग्रन्थी की प्रसन्नतापूर्वक महापूजा करता है।

1304 भूयाद्वधोऽस्य दुष्टस्य मत्तश्चेदस्ति मे फलम्।
तपसोऽतीव तीव्रस्य भवेऽन्यस्मिंस्तदा स्फुटम्।। 10।।

यदि मेरी तीव्र तपस्या का कोई भी फल हो, तो उसके प्रभाव से इस दुष्ट (वज्रसेन) का वध दूसरे जन्म में मेरे द्वारा अवश्य ही हो जाए।

वह तापस मरकर अशनिवेग असुर के रूप में उत्पन्न होता है

1305 इति कृत्वा निदानं स तापसोऽजनि दुष्टधीः।
असुरोऽशनिवेगाख्यो विख्यातो वसुधातले।। 11।।

ऐसा निदान करके दुष्टबुद्धिवाला वह तपस्वी कौशिक मरकर पृथ्वी पर अगले जन्म में अशनिवेग नाम से विख्यात असुर उत्पन्न हुआ।

1306 कालेन महता मृत्वा मन्त्री स्मृत्वा जिनेश्वरम्।
बभूव मदनाङ्कादिद्वीपस्वामी स्वपुण्यतः।। 12।।

और इधर, लम्बी अवधि के बाद जिनस्वामी की आराधना करता हुआ वह मन्त्री वज्रसेन मरकर अपने पुण्य के प्रभाव से **मदनद्वीप** का स्वामी राजा हुआ।

1307 नन्दिभद्रा जिनं स्मृत्वा विधाय व्रतपालनम्।
जननी नन्दिमित्रस्य समगात्त्रिदशालये।। 13।।

सेठ नन्दिमित्र की माँ नन्दिभद्रा भी जिनेश्वर का स्मरण एवं (पञ्चमी) व्रत-पालन करके मरणोपरान्त स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

1308 नन्दिमित्रोऽच्युते स्वर्गे बभूव त्रिदशाधिपः।
जिनेन्द्रपद - पूजात्तमहा - पुण्य प्रभावतः।। 14।।

जिनेन्द्र पदपूजा से प्राप्त महापुण्य के प्रभाव से वह सेठ नन्दिमित्र भी

मरणोपरान्त 16वें अच्युत नामक स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ।

1309 **धनदत्तः समासीद् यो धनभद्रा च या परा।**
तावेव पितरौ जातौ त्वदीया वाधुना पुनः।। 15।।

और जो सेठ धनदत्त और उसकी पत्नी सेठानी धनभद्रा थी वे दोनों ही मरणोपरान्त इस भव में (उन्हीं के जीव) तुम्हारे माता-पिता के रूप में जन्म प्राप्त है।

धनमित्र पर वज्रपात

1310 **बहुकालं सुखं भुक्त्वा धनदत्तस्य नन्दनः।**
जगाम धनमित्राख्यो गावो द्रष्टुं स्वगोकुले।। 16।।

धनदत्त का पुत्र, जो **धनमित्र** नाम से ज्ञात था, बहुत दिनों तक सुख भोग कर अपनी गायों को देखने के लिए अपने गो-व्रज में गया।

1311 **तत्र दृष्ट्वा समस्तास्ता गावस्तर्णकभूषिताः।**
यावद्व्याधुट्य सोप्याशु समागच्छति मन्दिरे।। 17।।

वहाँ अपनी समस्त गायों को बछड़ों से सुशोभित देखकर जब वह शीघ्र ही अपने घर लौट रहा था।

1312 **तावत्तस्य द्रुतं मूर्ध्नि व्योमतः पतिता तडित्।**
तथा यथा तनुस्तस्य समगाच्छत खण्डताम्।। 18।।
—युग्मकम्

तभी उसके सिर पर आकाश से **विद्युत्पात** हो गया, जिस कारण तुरन्त ही उसका शरीर सौ टुकड़ों में बिखर गया। *—युग्मकम्*

1313 **स त्वं समभवः भूप पूर्वपित्रोः स्तनन्धयः।**
मुनीन्द्रदत्त-दानोत्थपुण्यतो विनयान्वितः।। 19।।

हे राजन्, पूर्वजन्म के माता-पिता द्वारा विनम्रतापूर्वक मुनिराज के लिए दिए गए आहार-दान के पुण्य के प्रभाव से उत्पन्न इस भव के माता-पिता

के तुम (राजा) पुत्र हो।

1314 **वज्रसेनस्य सा पुत्री कीर्त्तिसेनानुमोदनात।
विशुद्धश्रुतपञ्चम्या उपवासस्य शुद्ध धीः।। 20।।**

इस प्रकार मन्त्री वज्रसेन की विमलमति का वह पुत्री **कीर्तिसेना** भी विशद्ध **श्रुतपञ्चमी-पर्व** के व्रत-उपवास के पालन करने के फलस्वरूप मरणोपरान्त—

1315 **बभूव नागसेनायाः सुता सौभाग्यमञ्जरी।
कृशोदरी भविष्यानुरूपाख्या भुवि विश्रुता।। 21।।**

—युग्मकम्

इस जन्म में नागसेना की कृशोदरी सौभाग्य-मञ्जरी नामकी पुत्री हुई, जो पृथ्वी मण्डल पर **भविष्यानुरूपा** के नामसे (तुम्हारी पत्नी के रूप में) प्रसिद्ध हुई।—*युग्मकम्*

1316 **मदनाङ्काभिधद्वीपे तिलकादिपुरे वरे।
समस्तवस्तुसम्पूर्णे समुतुङ्ग निकेतने।। 22।।**

मदनद्वीप के, सभी प्रकार की सुख-सामग्रियों से समृद्ध एवं ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं वाले **तिलकपुर** नामके नगर में।

1317 **यो मन्त्री तत्र जातो यो राजा नाम्ना यशोधनः।
निर्ग्रन्थस्य मुनीन्द्रस्य पदपूजा प्रसादतः।। 23।।**

—जो मन्त्री (वज्रसेन) था, वह निर्ग्रन्थ-मुनि समाधिगुप्त की चरणपूजा के प्रभाव से मरणोपरान्त अगले (जन्म) अर्थात् इसी जन्म में **यशोधन** नामका राजा उत्पन्न हुआ है।

1318 **समीहितं स भुञ्जानो राज्य-सौख्यं निराकुलः।
न विवेद गतं कालं कियन्तमपि सौख्यतः।। 24।।**

—त्रिकालम्

वह राजा यशोधन निश्चिन्त होकर इच्छित राज्यसुख भोगता हुआ

आशातीत सुख भोगों के कारण व्यतीत हुए अपने समय को भी न जान सका।

1319 **एकदा स धराधीशो यशोधनसमाह्वयः।**
समस्तैः सम्पदोपेतैः पौरलोकैः समन्वितः।। 25।।

एक दिन वह राजा यशोधन अपने सभी साधन-सम्पदाओं से युक्त अपने समस्त नागरिकों के साथ ही—

अशनिवेग-असुर राजा-यशोधन को समुद्र में फेंक देता है

1320 **कोपादशनिवेगेनासुरेणारक्तचक्षुषा।**
पूर्वजन्मारिणा क्षिप्तः सागरे नक्रसङ्कुले।। 26।।

—पूर्वजन्म के शत्रु तथा लाल-लाल आँखों वाले क्रूर **अशनिवेग** नामके असुर के द्वारा क्रोधपूर्वक मगरों से भरे हुए समुद्र में फेंक दिया गया।

1321 **तत्क्षणादेव मुक्त्वा स तनुं धातुमयीं निजाम्।**
बभूव त्रिदशावासे सुरेशोऽर्चनायाः। फलात्।। 27।।

किन्तु तत्क्षण ही वह (राजा यशोधन) महापूजा के प्रभाव से सप्त धातुमय अपने भौतिक शरीर को छोड़कर (-मरकर) स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ।

जिनमन्दिर की दीवाल पर आश्चर्यजनक भित्ति-लेख

1322 **तत्रैव पत्तने दृष्ट्वा त्वया सद्वर्णमालिका।**
लिखिता अच्युतेन्द्रेण सद्भित्तौ जिनमन्दिरे।। 28।।

उसी नगर में तुमने जिनमन्दिर की सुन्दर दीवाल पर उस **अच्युतेन्द्र** द्वारा लिखी गई सद्वर्णमाला वाली एक पंक्ति को देखकर—

1323 **अदर्शि दृष्टिपातेन पातिताऽमरखेचरा।**
सुकुमारा भविष्यानुरूपा रूपश्रियान्विता।। 29।।

वहीं अपने दृष्टिपात द्वारा खेचरों को भी मूर्च्छित कर देने वाली सुकुमारी (सुन्दर) रूपराशि से युक्त एक कन्या **भविष्यानुरूपा** को देखा।

भविष्य० का भविष्या० के साथ विवाह

1324 तेनासुरेण सा दत्ता ते प्रीत्त्या पूर्वजन्मनः।
स्वहस्तेन ततोऽकारि विवाहो विदुषां मतः।। 30।।

उसे (उस सुन्दरी को) पूर्वजन्म की प्रीति के प्रभाव से उस अशनिवेग असुर ने स्वयं अपने हाथों द्वारा तुम्हारे लिए प्रदान किया, फिर तुमने उसके साथ विद्वानों द्वारा समर्थित विवाह भी कर लिया।

1325 त्वया द्वादशवर्षाणि भोगसौख्यं तया समम्।
तत्रैवाऽभाजि दुःप्राप्यं विपुण्यानां तनूभृताम्।। 31।।

उसी नगर में तुम (भविष्यदत्त) ने उस (भविष्यानुरूपा) के साथ लगातार बारह वर्षों तक पुण्यहीन मनुष्यों के लिए दुर्लभ एवं दुष्प्राप्य सुख भोगों के सुख प्राप्त किए।

भविष्य० का भविष्या० से चिरवियोग तथा धन-हानि

1326 ततस्तव वियोगोभूद्दिनानि कतिचिद् नृप।
समं तया मनोहारि रूप-लावण्य संपदा।। 32।।

तदनन्तर हे राजन् (भविष्यदत्त), मनोहर रूप लावण्य सम्पत्ति वाली उस भार्या भविष्यानुरूपा से तुम्हारा दुखद वियोग हो गया।

1327 धनभार्ये हते भ्रात्रा त्वदीयेन तव प्रिये।
विमानस्थेन यक्षेण त्वमानीतोऽत्र पत्तने।। 33।।

फिर, हे (प्रिय) **(भविष्यदत्त)**, तुम्हारे भाई **(बन्धुदत्त)** ने तुम्हारी समग्र धन-सम्पत्ति एवं प्रिय पत्नी **(भविष्यानुरूपा)** का अपहरण कर लिया। तत्पश्चात् तुम अकेले ही यहाँ इस नगर में यक्ष द्वारा विमान से लाए गए हो।

1328 पुरातनभवः सर्वस्त्वदीयः कथितो मया।
इदानीं शृणु यद्भावि तदशेषं ब्रवीमिते।। 34।।

(इस प्रकार) मैंने तुम्हारा सम्पूर्ण पूर्व भव-वृत्तान्त कह दिया, अब जो

आगे होने वाला है, उस सम्पूर्ण (वृत्तान्त) को मैं तुम्हें कहता हूँ, उसे भी सुनो।

1329 त्वन्मातुस्तव ते पत्न्याः कर्मक्षयवशाद्भवे।
तृतीये नियतं भूप सम्भविष्यति निर्वृतिः।। 35।।

हे राजन्! अष्ट कर्मों के क्षय के कारण तीसरे जन्म में तुम्हारी माँ, तुम्हारी पत्नी एवं तुम्हें अवश्य ही निर्वृत्ति अर्थात् मोक्ष-पद प्राप्त हो जाएगा।

1330 पुराभवं समाकर्ण्य निजं पित्रोः सुचेतसोः।
भार्यायाः सुहृदश्चापि तृतीयभवनिर्वृतिः।। 36।।

इस प्रकार अपने विवेकशील माता-पिता धर्मपत्नी एवं सहृदय मित्र तथा अपना पूर्वजन्म सम्बन्धी वृत्तान्त सुनकर और तृतीय भव में मुक्ति प्राप्ति की भविष्यवाणी सुनकर —

1331 स प्रमोदमना राजा चिन्तयामास निश्चलः।
समस्तं भङ्गुरं वस्तु धर्म एको हि शाश्वतः।। 37।।

—प्रसन्न मन से स्थिर होकर उस राजा भविष्यदत्त ने विचार किया कि —"संसार की सभी चीजें नश्वर हैं, एकमात्र धर्म ही नित्य है।

राजा भविष्यदत्त द्वारा मुनि-दीक्षा

1332 तस्मिन्नवसरे राज्ञा सुप्रतिष्ठाय सूनवे।
दत्त्वा राज्यं मुनेरन्ते तस्यैव जगृहे तपः।। 38।।

उसी समय राजा ने अपने विख्यात पुत्र को राज्य सौंपकर उन्हीं मुनिराज के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

1333 तत्कलत्रेण तन्मात्रा प्रणम्यार्यापदद्वयम्।
अन्याभिरपि रामाभिरार्याणां व्रतमाश्रितम्।। 39।।

उसकी पत्नी, उसकी माँ तथा अन्य अनेक महिलाओं ने भी **आर्यिका** के चरणद्वय को प्रणाम कर आर्यिका-व्रत स्वीकार कर लिए।

1334 सम्यक्त्वं भक्तितोऽग्राहि कैश्चिच्च नृपसेवकैः।
अणुव्रतानि कैश्चिच्च संसारासुखकातरैः।। 40।।

उसके कुछ राजसेवकों ने भक्तिपूर्वक सम्यक्त्व-व्रत स्वीकार किया और सांसारिक दुःखों से व्याकुल कुछ लोगों ने अणुव्रतों को स्वीकार किया।

तप-स्वरूप-विश्लेषण

1335 भविष्यदत्तनामा स चकार करुणापरः।
तपस्तीव्रं द्विधाजैनं बाह्यभ्यन्तर भेदतः।। 41।।

करुणापरायण उस भविष्यदत्त ने बाह्याभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार के कठिन जैन तपों को स्वीकार किया।

1336 द्विधा संयम-सिद्ध्यर्थं रागविच्छित्तिहेतवे।
शुद्धैर्मर्मनोवचःकायैश्च काराशनानि वै।। 42।।

इन्द्रिय-संयम तथा प्राणि-संयम इन दोनों संयमों की सिद्धि के लिए तथा राग-भाव को नष्ट करने के लिए उस मुनिराज (राजा-) भविष्यदत्त ने मन, वचन एवं काय की शुद्धिपूर्वक अनशन को किया। प्रथम अनशन-बाह्य-तप।

1337 मनःसन्तोष-सद्ध्यान स्वाध्याय-विधिहेतवे।
अकरोदेवमौदर्यं स त्रिशुद्धया मुनीश्वरः।। 43।।

मन के सन्तोष के लिए, उत्तम ध्यान के लिए, स्वाध्याय विधिपूर्वक सिद्धि के लिए उस मुनीश्वर (राजा-) भविष्यदत्त ने अवमौदर्य-तप किया।

विशेष—समग्र आहार में से 2-3 ग्रास भोजन कम लेने को द्वितीय अवमौदर्य बाह्य-तप कहा गया है।

1338 एकगृहादिसंकल्पं प्रविधाय विधानतः।
स जग्राहाशनं साधुर्नव-कोटी-विशुद्धकम्।। 44।।

विधिपूर्वक "एक ही घर जाकर आहार ग्रहण करूँगा" जैसे संकल्प को करके उस मुनिराज भविष्यदत्त ने नवकोटि से विशुद्ध आहार ग्रहण किया। (यह तृतीय वृत्ति परिसंख्यान बाह्य तप है)।

1339 स रसानां परित्यागमकार्षीत्प्रतिवासरम्।
दुर्दमेन्द्रियमातङ्गमहादर्पोपशान्तये।। 45।।

दुर्दम पञ्चेन्द्रियों एवं मन रूपी गजराजों के महादर्प को दमित करने के लिए प्रतिदिन उस मुनिराज भविष्यदत्त ने आहार में रसों का परित्याग कर दिया। (चतुर्थ रस-परित्याग नामक बाह्य-तप का सेवन।

1340 शून्यागारेषु वप्रेषु कन्दरेषु महीभृताम्।
अकार्षीत्स पवित्रात्मा विविक्ताशयनासनम्।। 46।।

शून्यागार (शून्य निर्जन स्थानों) में वप्रों (मिट्टी के ढेर के बने हुए ढेरों) में, पर्वतों की गुफाओं आदि एकान्त निर्जन स्थानों में वे पवित्र आत्मा भविष्यदत्त मुनिराज शयनासन करते थे (पाँचवाँ **विविक्त शैय्यासन** नामक बाह्य-तप)।

1341 महाभिकालयोगेषु धर्मध्यानोपवासयोः।
सदैवोद्यम इत्यादि कायक्लेशं चकार सः।। 47।।

महात्रिकाल योगों धर्मध्यान और उपवास में सदा उद्यम करते हुए उन मुनिराज भविष्यदत्त ने **काय-क्लेश** नामका छठे बाह्य-तप की साधना की।

इस प्रकार मुनिराज भविष्यदत्त के छह प्रकार के बाह्य-तपों का वर्णन किया गया।

विशेष— 1. वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म-ऋतु को **त्रिकाल** कहा गया है।
2. वर्षाऋतु में वृक्षों के नीचे बैठकर सभी कष्टों को सहन करते हुए एकाग्रमन से तपस्या करना। इसे **वर्षायोग-तप** कहा गया है।
3. शीतकाल में चौराहों पर, नदी-तट पर शीतादि बाधाएँ सहन करते हुए एकाग्रचित्त से तपस्या करना **प्रतिमा-योग-तप** कहा गया है।
4. ग्रीष्म-ऋतु में खुले पर्वतों पर आताप आदि को सहन करते हुए एकाग्रचित्त से तपस्या करना **आतापन-योग-तपस्या** है।

1342 अतीचारे समायाते गुरुं नत्वा तदुक्तितः।
जग्राह तद्विशुद्ध्यर्थं पायश्चितंस सन्मुनिः।। 48।।

मुनि-व्रतों में से किसी भी व्रत में अतिचार-दोष लग जाने पर अपने आचार्य-गुरु की सेवा में जाकर उनको नमस्कार कर गुरु के आदेशानुसार उस व्रत की विशुद्धि के लिए उन पवित्रात्मा मुनिराज भविष्यदत्त ने **प्रायश्चित** नामका तप ग्रहण किया।

विशेष—प्रायः पापमिति प्रोक्तं चित्तं तद्विशोधनम्। दोषों के परित्याग को **प्रायश्चित-तप** कहते हैं। यह **प्रायश्चित** नामका मुनि-चर्चा का प्रथम आभ्यन्तर-तप कहलाता है।

1343 ज्ञान-सम्यक्त्व-चारित्रोपचार-विनयं सदा।
स चक्रे चारुचारित्रमयभूषा-विभूषितः।। 49।।

निर्दोष चारित्र रूी सुन्दर आभूषण से सुशोभित वे मुनिराज निरन्तर ही—1. ज्ञान-विनय, 2. सम्यक्त्व-विनय, 3. चारित्र-विनय एवं 4. उपचार-विनय नामक चार प्रकार का विनय नामक द्वितीय अन्तरंग-तप करते थे।

1344 पीडाकुलितचित्तानामाचार्यादितपस्विनाम्।
वैयावृत्त्यं स शुद्धात्मा चक्रे कर्म्मोपशान्तये।। 50।।

आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल संघ साधु एवं मनोज्ञ जैसे तपस्वी साधकों में उत्पन्न पीड़ा से आकुलित चित्त वाले आचार्य आदि दस प्रकार के तपस्वी साधु-साधकों की सेवा करना एवं उनकी पीड़ा दूर करने का विशुद्धात्मा उन मुनिराज भविष्यदत्त ने प्रयत्न करके दुष्ट कर्मों को नष्ट करने हेतु **वैय्यावृत** नामके तृतीय अन्तरंग-तप की साधना की।

1345 स्वाध्यायं पञ्चधाधीरो विदधे विधिना सदा।
अज्ञानप्रसरध्वान्तसंघातहननाय सः।। 51।।

अज्ञान रूपी विस्तृत अन्धकार को नष्ट करने के लिए धीर-वीर वे महामुनि-भविष्य विधिपूर्वक पाँच प्रकार के—1. वाचना, 2. पृच्छना (प्रश्न करना, प्रश्नोत्तरी, शंका-समाधान करना), 3. अनुप्रेक्षा (चिन्तन करना),

4. आम्नाय (याद करना) एवं 5. धर्मोपदेश नामके अन्तरंग **स्वाध्याय** तप किया करते थे।

1346 बाह्याभ्यन्तरसङ्गानां व्युत्सर्गं गुणराजितः।
स चकार तपस्तीव्रं मदनेनापराजितः।। 52।।

सम्यक्त्वादि गुणों से विभूषित तथा कामदेव द्वारा अपराजित उन मुनीश्वर भविष्यदत्त ने—1. क्षेत्र, 2. वास्तु, 3. हिरण्य, 4. स्वर्ण, 5. धन, 6. धान्य, 7. दासी, 8. दास एवं 9. भाण्ड रूप नव प्रकार के बाह्य-परिग्रह तथा—1. क्रोध, 2. मान, 3. माया एवं 4. लोभ रूप चतुर्विध कषाएँ तथा 5. हास्य, 6. रति, 7. अरति, 8. शोक, 9. भय, 10. जुगुप्सा, 11. स्त्रीवेद, 12. पुम्वेद, 13. नपुंसकवेद तथा 14. मिथ्यात्व रूप 14 प्रकार के अन्तरंग परिग्रहों का त्यागकर **व्युत्सर्ग** नामका तीव्र तप किया। यह व्युत्सर्ग नामका पाँचवाँ अन्तरंग तप है।

1347 निर्ममः शमवानार्त्त-रौद्रध्यान-विवर्जितः।
दिनानि सोऽनयत्साधुर्धर्म्मध्यानेन निर्मदः।। 53।।

ममत्व रहित, समता-परिणामी, आर्त्त-रौद्र ध्यानों से रहित, निर्मद (ऋद्धि-गारव, रस-यश गारव तथा सात गारव इन तीन मदों से रहित) वे मुनिराज भविष्यदत्त **धर्म-ध्यान** नामक छठवाँ अन्तरंग-तप करते हुए अपने दिन व्यतीत करते थे।

1348 पञ्चाचारसमायुक्तः पञ्चधासंयमोद्यतः।
दशधाधर्म्म तन्निष्ठः षड्त्रिंशद्गुणभूषितः।। 54।।

वे मुनिराज भविष्यदत्त पञ्चविध आचारों से युक्त, पाँच प्रकार के संयमों (चारित्रों) की साधना में उद्यत और उत्तम क्षमा आदि दसविध धर्मपालन में पूर्णतया स्थित तथा छत्तीस प्रकार के सद्गुणों से विभूषित—

1349 अष्टाविंशतिसंख्यान यतिमूलगुणावृतः।
अनिर्जितमनास्तीव्रद्वाविंशतिपरीषहैः।। 55।।

मुनियों के 28 मूल गुणों से युक्त (वे मुनिराज) 22 प्रकार की तीव्र क्षुधा

आदि परिषहों को समता वृत्ति पूर्वक सहन करते थे। उनका मन पूर्णतया उनके वश में रहता था।

1350 **कषाय - कुकथा - दोष कुलेष्याभयगारवैः।**
मात्सर्यशल्यकुद्ध्यानमददण्डैः समुज्झितः।। 56।।

क्रोधादि चतुर्विध कषाय, चार विकथा अथवा 25 प्रकार की कथाएँ, याचना आदि दोष, कृष्ण नीलादि तीन कुलेश्याएँ, सप्तविध भय (इस लोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अत्राणभय एवं अकस्मात्-भय) तीन गारव, मात्सर्य (ईर्ष्या-द्वेष), तीन शल्य (माया, मिथ्या एवं निदान), (चार प्रकार के आर्त्तध्यान एवं चार प्रकार के रौद्रध्यान रूप कुल-अष्टविध) कुध्यान, अष्टविध मद तथा त्रिविध दण्ड (अशुभ-मन, अशुभ-वचन एवं अशुभ-काय) आदि से वे मुनिराज निरन्तर दूर रहते थे।

1351 **अनुप्रेक्षाः स्मरंश्चित्ते स मुनिर्मुनिनायकः।**
अभूच्चतुःप्रकाराभिर्मनीषाभिर्विराजितः।। 57।।

वे महामुनि भविष्यदत्त द्वादशानुप्रेक्षाओं का निरन्तर चिन्तन करते हुए महामुनियों के नायक (प्रधान) बन गए। वे अपने सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, सुअवधिज्ञान एवं मनःपर्ययज्ञान नामके चतुर्विध ज्ञानों से सुशोभित हो गए।

1352 **सद्गुणानां निधानस्य गुरोः पादप्रसादतः।**
द्वादशाङ्गयुतैः पूर्वैश्चतुर्दशभिरन्वितः।। 58।।

उत्तम गुणों के भण्डार विपुलमति गुरु के चरणों के प्रसाद से उन्हें **द्वादशांग-वाणी** एवं **चतुर्दश-पूर्व-साहित्य** रूप पूर्ण श्रुतज्ञान हो गया था। इससे वे मुनिराज सुशोभित थे।

1353 **इति कृत्वा तपो घोरं चतुर्द्धाराधनां स्मरन्।**
त्यक्तोऽसुभिः। शुभध्यानान्महाशुक्रं जगमिसः।। 59।।

1354 **हेमाङ्गदाभिधो दीप्तः सुरेन्द्रोऽजनि पुण्यतः।**
तत्र षोडशपाथोधि प्रमितायुः प्रसन्नधीः।। 60।।

इस प्रकार घोर तप-साधना कर तथा दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना,

चारित्राराधना एवं तपाराधना नामकी चतुर्विध आराधनाओं का निरन्तर स्मरण करते हुए मुनिराज भविष्यदत्त ने शुभध्यानपूर्वक प्राण-त्याग किए और अपने पुण्य के प्रभाव से महाशुक्र नामके दशवें स्वर्ग में जन्म लेकर ऋद्धिधारी हेमाङ्गद नामका निर्मल बुद्धि वाला तथा 16 सागर की आयु वाला देवेन्द्र हुआ।। 59-60।।

1355 **तन्माता तत्प्रिया तीव्रं तपोऽनुष्ठायधर्म्मतः।**
द्वावेव निर्जरौ जातौ तत्रैव सुरमन्दिरे।। 61।।

उस भविष्यदत्त की माता तथा पत्नी भी धर्मध्यान पूर्वक तीव्र तपस्या कर मरणोपरान्त वे दोनों भी उसी महाशुक्र नामके स्वर्ग में देव हुईं।

1356 **महातपःप्रभावेन छित्त्वा लिङ्गस्त्रियः द्रुतम्।**
अनुक्रमात् प्रभारत्नचूलाविति मनोहरौ।। 62।।

महातप के प्रभाव से वे दोनों साध्वियाँ अपना स्त्रीलिङ्ग छेदकर पुरुष रूप में उत्पन्न हुई और अनुक्रम से माता का जीव **प्रभाचूल** नामका मनोहरदेव हुआ और उसकी (भविष्यदत्त की) पत्नी का जीव **रत्नचूल** नामका मनोहर देव उत्पन्न हुआ।

1357 **उपपाद शिलामध्ये प्रजायन्ते सुरास्तथा।**
इन्द्रचापस्तडिद्वज्रं वारिवाहोदरे यथा।। 63।।

जिस प्रकार मेघों के गर्भ से इन्द्रधनुष विद्युत और वज्र उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में उपपाद-शिला नामकी शय्या के मध्य में से भविष्यदत्तादि वे तीनों (माता एवं पत्नी) भी उत्पन्न हुए।

विशेष—स्वर्ग में इस प्रकार के जन्म को **उपपाद-जन्म** कहा गया है। इसकी यह विशेषता है कि यहाँ जन्मते ही अन्तर्मुहूर्त मात्र में जीव युवा बन जाते हैं।

1358 **अन्तर्मुहूर्त्तमध्येन षट्पर्याप्ति समन्विताः।**
सुप्ता इव स्वशय्यायाः उत्तिष्ठन्ते सभूषणाः।। 64।।

अन्तर्मुहूर्त में ही आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा एवं मन

नामकी छह पर्याप्तियों से वे तीनों (भविष्यदत्तादि के स्वर्ग प्राप्त) जीव युक्त हो गए अर्थात् इन पर्याप्तियों से उन्हें पूर्ण शक्ति प्राप्त हुई। वे तीनों देव अपनी शय्या से पूर्वजन्म में जिस प्रकार सोकर उठते थे, उसी प्रकार वहाँ (स्वर्ग में) भी उठ गए, साथ ही में उनके आभूषणादि भी उत्पन्न हो गए।

1359 **स्तूयमानाः सुरासारैरादिसंस्थानविग्रहाः।**
सुभगाः सुन्दराकाराः सप्तधातुविवर्जिताः।। 65।।

वहाँ स्वर्ग में जन्मते ही तथा **उपपाद-शैय्या** से उठते ही देव समूहों ने उनकी स्तुति की। वे (तीनों) समचतुरस्र संस्थान (आदि संस्थान) से युक्त शरीरधारी होने के कारण सुन्दर, सुडौल आकार वाले थे। सभी से प्रीति किए जाने वाले सुभग थे तथा मज्जा मांसादि सप्त-धातुओं से रहित थे।

विशेष — इन्हें विक्रिया ऋद्धि की सिद्धि होने से उनका शरीर वैक्रियक शरीर कहलाता है।

1360 **चिन्तयन्तः किमन्यस्मिन् भवेऽकारि तपोऽथवा।**
दत्तं दानं मुनीन्द्रभ्यो निर्ग्रन्थेभ्यः स्वशक्तितः।। 66।।

फिर वे तीनों देव उस महाशुक्र नामके दसवें स्वर्ग में रहते हुए इस प्रकार चिन्तन करने लगे कि क्या हम लोगों ने पूर्वजन्म में तीव्र तप किया था अथवा निर्ग्रन्थ मुनीन्द्रों को अपनी शक्ति के अनुसार दानादि दिए थे, जिसके फलस्वरूप हमें यह देवगति प्राप्त हुई है?

1361 **कोऽहमेते च के स्तोत्रं कुर्वन्ति पुरतः स्थिताः।**
कस्येयं सुन्दरालक्ष्मीरिन्द्रजालमिदं किमु।। 67।।

पुनः वह हेमांगद देव (पूर्वजन्म का भविष्यदत्त) अपने मन में सोचता है कि मैं कौन हूँ और ये कौन हैं जो मेरे सम्मुख खड़े होकर हमारी स्तुति कर रहे हैं। इतनी सुन्दर लक्ष्मी किसकी है? क्या यह यथार्थ है अथवा इन्द्रजाल?

1362 **इति चिन्ताप्रपन्नानां सुराणामुपजायते।**
अवधिस्तेन जानन्ति यत्कृतं पूर्वजन्मनि।। 68।।

इस प्रकार से विचार करते-करते उन देवों को अवधिज्ञान उत्पन्न हो

गया और उसके प्रभाव से, पूर्वजन्म में जो-जो सुकर्म उन्होंने किए थे उन्हें वे सभी जान जाते हैं।

1363 अहमत्राभवं देवो द्युतिमानप्सरप्रियः।
जिनोदिततपोजात महापुण्यप्रशक्तितः।। 69।।

वह हेमांगद (पूर्वजन्म का भविष्यदत्त) देव अवधिज्ञान के बल से जान जाता है कि मैं जिनेन्द्र-कथित तीव्र-तपस्या के महापुण्य के प्रभाव से ही यहाँ कान्तिमान् एवं अप्सराओं का प्रिय देव हुआ हूँ।

1364 इत्यात्मनो भवं ज्ञात्वा रचयित्वा जिनार्चनाम्।
परिच्छदं निजं दृष्ट्वा नमन्तं पदपद्मयोः।। 70।।

इस प्रकार अपने पूर्वभव को जानकर जिनेन्द्र देव की पूजा इस जिननाथ की अर्चना करके तथा उनके चरण-कमलों में नमस्कार करते हुए उसने अपने परिवार की ओर देखा।

1365 सिंहासनं समासाद्य प्रविश्य प्रमदात् सुराः।
अप्सरोभिः समं कामं रमन्तेस्म स्मराहताः।। 71।।

तत्पश्चात् सभी देव राजसभा में प्रवेश कर वहाँ सिंहासन प्राप्त कर बैठ गए। फिर काम-विकार से पीड़ित वे सभी अप्सरा-देवियों के साथ यथेष्ट रमण करते हुए आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

1366 इत्यन्ते त्रयोऽपिदेवा हेमाङ्गदपुरस्सराः।
रोचते यत्र-तत्राशु व्रजन्ति स्म शुभाशयाः।। 72।।

इस प्रकार शुभ अभिप्राय वाले वे तीनों — हेमांगद, प्रभाचूल तथा रत्नचूल देव जहाँ-जहाँ उनकी रुचि होती थी, वहाँ-वहाँ (अपनी विक्रिया-ऋद्धि से) चले जाते थे। गमन में कोई बाधा नहीं आती थी।

1367 कृत्रिमाकृत्रिमाणि च जिनानां जितजन्मनाम्।
सद्रत्नमयबिम्बानि प्रणेमुर्भक्तिभाविताः।। 73।।

वे तीनों देव भक्ति भरित भाव से संसार (के जन्म-मरण की वेदना) को

जीतने वाले कृत्रिम-अकृत्रिम जिन मन्दिरों में प्रतिष्ठित रत्नमयी जिन-मूर्तियों को नमस्कार करते थे।

1368 सरोवरोषु शैलेषु लतानिर्मित धामसु।
समुद्रेषु वनान्तेषु व्यधुः क्रीडां यथेच्छया।। 74।।

सरोवरों में, पर्वतों पर, लतानिर्मित वन्यगृहों में, समुद्रों में तथा वनों में यथेच्छ क्रीड़ाएँ करते रहते थे।

1369 भक्त्या नन्दीश्वरे-द्वीपे फाल्गुने च शुचाविषे।
मासे पक्षे वलक्षेऽष्टौ दिनानि सपरिच्छदाः।। 75।।

नन्दीश्वर-द्वीप में भक्तिपूर्वक फाल्गुन, शुचि (आषाढ) तथा कार्तिक (इष) मास में शुक्ल-पक्ष (वलक्षे) में अन्त के आठ दिनों तक लगातार अपने परिजनों के साथ (सपरिच्छदः) जाते थे—

1370 चक्रुरष्टाह्निका-पूजां त्रयोपि गतमत्सराः।
सम्यक्त्व प्रस्फुरद्रत्न रुचिराजित वक्षसः।। 76।।

और वहाँ सम्यक्त्वरूपी स्फुरायमान रत्न की कान्ति के समान सुशोभित हृदय वाले, ईर्ष्या-विद्वेष रहित उन तीनों देवों ने अष्टाह्निका-पूजा (आठ दिनों तक लगातार पूजा) की।

1371 त्रयोऽपि प्रीतिसंयुक्ताः षोडशाब्धिमितायुषः।
भुक्त्वा सौख्यानि देवानां भविष्यन्ति ततो नराः।। 77।।

सोलह सागर की आयु वाले वे तीनों ही देव पारस्परिक प्रीति पूर्वक पूर्ण आयु पर्यन्त सुख भोगकर अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर चयकर पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेंगे।

1372 मनुष्यमासाद्य विधाय राज्यं,
विरागभावेन विमुच्य सङ्गम्।
कृत्वा जिनोक्तं व्रतमत्र तीव्रं,
प्राप्स्यन्ति निर्वाणपदं पवित्रम्।। 78।।

मनुष्य-भव प्राप्त कर राज्यसुख भोग कर वैराग्य-भाव से संसारासक्ति कर त्याग कर, जिनेन्द्र द्वारा कथित कठिन-व्रत-तप करके परम पवित्र

निर्वाण-पद को प्राप्त करेंगे।

1373 मत्वेति चेतसि निजे जिननाथ दृष्टम्,
भव्या भवाब्धितरणाय तपश्चरन्तु!
भक्त्याऽथवा मुनिजनाय चतुःप्रकारम्,
यच्छन्तु दानमनवद्य सुखप्रसिद्ध्यै।। 79।।

इस प्रकार भव्यजन अपने मन में चिन्तन करके संसार-समुद्र को पार करने के लिए जिनेन्द्र कथित व्रतों-तपों का आचरण करें। अथवा सुख एवं यश प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक मुनिजनों को चारों प्रकार के निर्दोष पवित्र दान दें।

1374 भोगा भ्रात-कलत्र-मित्र-तनुजा-जामातरः श्रीधराः,
भ्रातृव्यादिजनाश्च लक्ष्मणयुता हस्त्यश्वपादातयः।
एतेऽन्येऽपि च भूतले तनुभृतः कस्यापि नो शाश्वताः,
ज्ञात्वेति द्रुतमत्रनिर्वृतिकृते कुर्वन्तु यत्नं बुधाः।। 80।।

भ्राता, कलत्र (भार्या), मित्र, पुत्र, पुत्री, जामाता, श्रीधर अर्थात् श्री-समृद्धि से सम्पन्न (दूसरे अर्थ में प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक विबुध श्रीधर) परिवार, भतीजे आदि जन, लक्ष्मण अर्थात् सुन्दर लक्षणों से युक्त (दूसरे अर्थ में लक्ष्मण साहू-प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक तथा ग्रन्थकार के आश्रयदाता) हाथी, घोड़े, पदाति ये सभी तथा और भी पदार्थ, भवन आदि इस भूतल पर जो भी चेतन और जड़ पदार्थ हैं, वे कोई भी शाश्वत नहीं हैं। यह जानकर निर्वाण-पद प्राप्ति हेतु, बुध ज्ञानी विवेकीजन शीघ्र ही प्रयत्न करें।

....

इतिश्री भविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर—
विरचिते साहूलक्ष्मणनामाङ्किते—
भविष्यदत्तादि—स्वर्गगमनवर्णन—नाम त्रयोदशः सर्गः।। 13।।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित साहूलक्ष्मण के नाम से
अंकित श्रीभविष्यदत्त चरित्र महाकाव्य में भविष्यदत्तादि के
स्वर्ग गमन वर्णन नामका तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

चौदहवाँ सर्ग

1375 यः सर्वत्रनिजैर्गुणः प्रविदितो विद्याविनोदप्रियः,
शास्त्राकर्णनदत्तकर्णयुगलो गम्भीरधीरध्वनिः।
विश्वव्यापि यशोविशाललतिकासंवर्द्धनैकाम्बुदः,
सश्रीणामधिपः प्रमोदजनको जीयाच्चिरं लक्ष्मणः।। 1।।

जो अपने सद्गुणों से सर्वत्र विख्यात है, विद्या-क्रीड़ा का प्रेमी है, कर्णयुगल से एकाग्रतापूर्वक शास्त्र-श्रवण करता है, धीर-गम्भीर-ध्वनि वाला है अर्थात् कषायरहित है, दानादि देने से जिसका यश विश्वव्यापी है, उस विस्तृत यशरूपी-लता को बढ़ाने के लिए जो एक सजल-मेघ के समान है, श्री-लक्ष्मी का अधिपति है, दीन-दुखियों के लिए जो हर्षोत्पादक है, ऐसा **साहू लक्ष्मण** दीर्घजीवी रहते हुए जयवन्त रहे।

गन्धर्वनगर एवं वहाँ के चक्रवर्ती राजा गन्धर्वसेन का परिचय, समृद्धि एवं शक्ति का परिचय

1376 अथात्र प्रथमे द्वीपे समस्तद्वीपमध्यगे।
सुराद्रेः पूर्वदिग्भागे विदेहे विबुधप्रिये।। 2।।

—तत्पश्चात् सभी द्वीपों के मध्य में स्थित देवों के लिए प्रिय, सुमेरु-पर्वत की पूर्व दिशा में विवेकी ज्ञानियों के लिए प्रिय **विदेहनाम** के प्रथम द्वीप में—

1377 गन्धर्वनाम देशोऽस्ति गन्धर्ववनिताप्रियम्।
गन्धर्वाख्यं पुरं सर्वप्राणिवर्गप्रियङ्करम्।। 3।।

—युग्मकम्

एक **गन्धर्व नामका देश** है, जिसमें गन्धर्व-कामिनियों के लिए प्रिय एवं सभी प्राणियों का कल्याणकारी गन्धर्व नामका एक पुर है।

1378 नृपोऽभूत्तत्र गन्धर्वसेननामा नरेश्वरः।
निजभोगश्रिया येन निर्जितस्त्रिदशेश्वरः।। 4।।

वहाँ का शासक **गन्धर्वसेन** नामका हुआ, जो अपनी विपुल भोग-सम्पत्ति से इन्द्र को भी जीत लेने वाला था।

1379 यस्य प्रसाधितारातेः षट्खण्डपृथिवीप्रभोः।
अभवन्निह रत्नानि चतुर्दशरथाङ्गिनः।। 5।।

समस्त शत्रुओं को पराजित कर देने वाले, षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती जिस राजा के पास चौदह अमूल्य रत्न थे।

1380 वायुवेगाः समुत्तुङ्गाः कोट्योऽष्टादशवाजिनः।
माद्यन्मातङ्गलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा।। 6।।

जिस चक्रवर्ती राजा गन्धर्वसेन के पास उत्तुंग एवं उच्च जाति के वायु के समान वेगवाले अठारह करोड़ घोड़े तथा चौरासी लाख मत्त हाथी थे।

1381 तावत्संख्या रथा यस्य निधयो नवनिर्मलाः।
प्रेङ्खत्खङ्गलताधारा गतसङ्ख्याः पदातयः।। 7।।

उतनी ही संख्या वाले (अर्थात् 84 लाख) रथ तथा निर्दोष नौ निधियाँ और लपलपाती खड्गलता के धारी असंख्य पदाति सेना थी।

अन्तःपुर की रानियों, सेवक-राजाओं एवं पाचकों की संख्या

1382 अन्तःपुरे पयोजास्याः कर्णान्तगतलोचनाः।
वररामाः सहस्राणां नवतिश्च षडुत्तराः।। 8।।
— कलापकम्

उस राजा के अन्तःपुर में कर्णान्तगत विशाल लम्बे नेत्रवाली तथा कमल मुखी छियानवे हजार श्रेष्ठ रानियाँ थीं। *— कलापक*

1383 देवा द्व्यष्टसहस्राणि यस्य कुर्य्युरुपासनाम्।
भूपानाञ्च सहस्राणि द्वात्रिंशन्मुकुटान्विताः।। 9।।

जिस राजा गन्धर्वसेन की उपासना-सेवा सोलह हजार देव एवं बत्तीस

हजार मुकुट-बद्ध राजा किया करते थे।

1384 सुधियां सूपकाराणां विज्ञातप्रभुचेतसाम्।
शतानि त्रीणिधीराणां संयुतानां त्रिषष्टिभिः।। 10।।

उस राजा के तीन सौ त्रेसठ धीर-गम्भीर एवं निपुण **पाचक** थे, जो स्वामी की इच्छा को परखकर भोजन बनाने थे।

पट्टरानी गान्धारी

1385 तस्याऽजनिष्ट शिष्टानां मनोरत्नापहारिणी।
निशान्तनायिकाकान्तागान्धारीति समीरिता।। 11।।

शिष्टों के मनोरत्न को चुराने वाली, अन्तःपुर की नायिकाओं में श्रेष्ठ **गान्धारी** नामकी उसकी प्रिया थी।

राजकुमार वसुन्धर और उसकी रानी वसुमती

1386 कमलश्रीचरो देवः प्रभाचूलसमाह्वयः।
तयोरभूत्सुतः श्रीमान् वसुन्धर इति स्मृतः।। 12।।

प्रभाचूल नाम वाला देव, जो पूर्वकाल में **कमलश्री** था, **वसुन्धर** नाम से इन दोनों का सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।

1387 समस्तलक्षणोपेतः सुभगः सुहृदां प्रियः।
सर्वावयवसम्पूर्णः स्ववंशाकाशचन्द्रमाः।। 13।।

(वह वसुन्धर-पुत्र) सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सुन्दर, मित्रों का प्रिय, सभी अंगों से पुष्ट और अपने वंशाकाश में चन्द्रमा के समान था।

1388 शैशवेऽपगते येन यौवनश्रियमीयुषा।
कन्या वसुमती राज्ञः परिणीता प्रमोदतः।। 14।।

शैशवकाल व्यतीत होने पर, यौवन सौन्दर्य को प्राप्त होते ही उस वसुन्धर का विवाह राजकुमारी **वसुमती** के साथ हो गया।

वसुन्धर के दो पुत्र – श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन

**1389 च्युत्वा भविष्यदत्ताख्यचरो हेमाङ्गदोऽमरः।
स्वर्गात्तयोरभूत्पुत्रः श्रीवर्द्धनसमाह्वयः।। 15।।**

हेमाङ्गद नामका देव, जो पूर्व समय में **भविष्यदत्त** था, स्वर्ग से लौटकर (वह देव) **श्रीवर्द्धन** नामका, इन्हीं दोनों का पुत्र हुआ।

**1390 रत्नचूलो भविष्यानुरूपाचरसुरः सुतः।
द्वितीयः समभूद्भूमौ विख्यातो नन्दिवर्द्धनः।। 16।।**

रत्नचूल नामक देव, जो पहले **भविष्यानुरूपा** थी, **नन्दिवर्द्धन** नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध दूसरा पुत्र हुआ।

**1391 तौ द्वौ क्रमेण संजातौ भूषितौ यौवनश्रिया।
विनयन्यायलावण्यसौभाग्यगुणमन्दिरौ।। 17।।**

वे दोनों (श्रीवर्द्धन और नन्दिवर्द्धन) विनय, न्याय, सौन्दर्य, सौभाग्यादि गुणों के मन्दिर थे, तथा क्रमशः यौवन-सौन्दर्य से अभिभूषित हो गए।

**1392 गम्भीरिमाजिताम्भोधी स्थिरत्वेन कुलाचलौ।
नानाविधसुनिःशेषशास्त्रविद्याविशारदौ।। 18।।**

(वे दोनों) अपने गाम्भीर्य-गुण से समुद्र को एवं धैर्य से कुलाचलों को जीतने वाले थे। साथ ही सम्पूर्ण शास्त्रों की विभिन्न विद्याओं में निष्णात थे।

**1393 द्वावेव भूभृतां कन्याः सोत्सवं परिणायितौ।
निदेशं चक्रिणः प्राप्य वसुन्धरमहीभृता।। 19।।**

राजा वसुन्धर ने अपने पिता चक्रवर्ती राजा गधर्वसेन का आदेश पाकर राजाओं की सुयोग्य पुत्रियों के साथ अपने दोनों पुत्रों – नन्दिवर्धन एवं श्रीवर्द्धन का विवाह उत्सवपूर्वक किया।

वसुन्धर का राज्याभिषेक एवं राजा गन्धर्वसेन की मुनि-दीक्षा

1394 सुतं निरीक्ष्य पौत्रौ च भूसमुद्धरणक्षमौ।
पुत्राय पृथिवीं दत्त्वा स्वहस्तेन सहश्रिया।। 20।।

पृथिवी-पालन में समर्थ पुत्र—राजा वसुन्धर एवं अपने दोनों पौत्रों (श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्धन को सुयोग्य देखकर, सम्पूर्ण सम्पत्ति सहित पृथिवी के राज्य को अपने ही हाथों से पुत्र **राजा वसुन्धर** को समर्पित कर—

1395 क्रमाम्भोजद्वयं नत्वा गुरोर्गुणगरीयसः।
चक्री दिग्वाससां दीक्षां शिश्रियेशमवान् सुधीः।। 21।।

गुणों में महान् श्रेष्ठ गुरु के चरण-कमलों में प्रणाम कर सुशान्त परिणाम वाले उस विद्वान् चक्रवर्ती राजा **गन्धर्वसेन** ने उत्तम दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर ली।

1396 वसुन्धरस्य भूपस्य कुर्व्वतोराज्यमुत्तमम्।
मनागपि भयं नाभूत् प्रजायाः मानसे तदा।। 22।।

उत्तम न्याय-विधि पूर्वक राज्य-पालन करते हुए राजा वसुन्धर की प्रजाओं के मन में थोड़ा-सा भी भय या आतंक की भावना उत्पन्न नहीं हुई।

सेवक-राजाओं द्वारा सम्राट-वसुन्धर के लिए प्रदत्त असंख्य अमूल्य उपहार

1397 प्राभृतानि सामादायविविधानि नरेश्वराः।
आययुर्दर्शनं कर्त्तुं वसुन्धरमहीपतेः।। 23।।

सभी राजा-गण विविध प्रकार के उपायन (उपहार-Gift) लेकर उस राजा वसुन्धर के दर्शनों के लिए उपस्थित हुए।

1398 संख्या न लभ्यते पत्तिस्यन्दनद्विपवाजिनाम्।
महिषी वृषभोष्ट्राणां नन्दिनीनां च का कथा?।। 24।।

दर्शनार्थी वे राजा-गण पदाति-सैन्य-समुदाय, रथ, हाथी, घोड़े आदि

इतनी अधिक मात्रा में भेंट-स्वरूप देने के लिए लाए कि उनकी गणना करना कठिन थी, फिर भैंस, बैल, ऊँट और नन्दिनी-गायों की संख्या का तो कहना ही क्या?

1399 यस्य त्यागं समासाद्य वन्दिनोऽप्यन्यवन्दिनाम्।
बभूवुर्विदितालोके कल्पपादपसन्निभाः।। 25।।

उपहार-प्राप्त जिस **राजा वसुन्धर** द्वारा वितरित किए गए धन आदि सम्पत्तियों को प्राप्त कर वन्दिगण एवं याचकगण भी अन्य याचकों के लिए लोक में प्रसिद्ध कल्पवृक्ष के समान, प्रसिद्ध हो गए।

—तात्पर्य यह कि वे बन्दिगण एवं याचक इतने मालामाल हो गए थे कि दान में प्राप्त अपनी वस्तुओं को दूसरे याचकों को बाँटते रहे।

सम्राट वसुन्धर को वैराग्य एवं दीक्षा

1400 एकदा कारणं प्राप्य वैराग्यस्य वसुन्धरः।
असारां संसृतिं मत्वा कदलीगर्भसन्निभाम्।। 26।।

एक बार राजा वसुन्धर को वैराग्य का ऐसा कारण मिला कि उसने संसार को कदली गर्भ के समान असार (तत्त्वहीन) समझकर—

1401 सर्वां महीं श्रियोपेतां दत्त्वा ज्येष्ठाय सूनवे।
यौवराज्यं कनिष्ठाय पश्यतां सुहृदां सताम्।। 27।।

उस राजा वसुन्धर ने सज्जनों एवं मित्रों के सम्मुख देखते-देखते ही लक्ष्मी से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र-श्रीवर्द्धन को तथा युवराज-पद छोटे पुत्र-नन्दिवर्द्धन को सौंपकर—

1402 कुन्तलानपनीयात्मपाणिना पञ्चमुष्टिभिः।
मुक्त्वा वस्त्राणि संगृह्य महाव्रतमभून्मुनिः।। 28।।

—त्रिकलम्

अपने ही हाथों की पाँच मुष्टियों से केशों को उखाड़कर, समस्त वस्त्रों एवं आभूषणों को त्यागकर पञ्च-महाव्रत धारण करके वह **राजा वसुन्धर**

महामुनि बन गया। — *त्रिकलम्*

1403 **सद्ध्यानाग्निहुताशेष कर्मेन्धनचयः शिवम्।**
अगाद् वसुन्धरः साधुर्गुणाष्टकसमन्वितः।। 29।।

उत्तम शुक्ल-ध्यान रूपी अग्नि से ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्मेन्धन-समुदाय को भस्म कर **महामुनि वसुन्धर** ने सम्यक्त्वादि आठ-गुणों से युक्त शिव-पद-मोक्ष को प्राप्त किया।

राजा श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन वारिगर्त्ता देखने हेतु गहन-वन की यात्रा करते हैं

1404 **वसुन्धरमहीपस्य तौ सुतौ द्वौ मनोरमौ।**
एकत्र चक्रतुः क्रीडां यथाकालंयदृच्छया।। 30।।

उस महामुनि वसुन्धर (-राजा) के उन दोनों सुन्दर पुत्रों ने भी अपनी-अपनी इच्छानुसार ऋतुओं के अनुसार स्वेच्छा से एक साथ क्रीड़ाएँ करते हुए राज्य संचालन किया।

गहन-वन सौन्दर्य-वर्णन
वन्य प्राणियों की मनोरंजक क्रीड़ाएँ

1405 **द्वौ निर्म्मलयशोराशि श्वेतीकृतदिगाननौ।**
द्विषद्दन्तिघटाटोप पाटनैकमृगाधिपै।। 31।।

—युग्मम्

अपनी निर्मलयशोराशि से दिग्दिगन्त को उज्ज्वल करने वाले तथा शत्रुरूपी हाथियों को समाप्त करने में वे दोनों भाई सिंह के समान थे।

1406 **एकदा रथमारुह्य द्वावपि प्रथितान्वयौ।**
सन्द्रष्टुं जग्मतुर्वारिगर्त्तां परिजनावृतौ।। 32।।

एक बार प्रथित परिवार वाले वे दोनों ही भाई परिजनों से आवृत्त होकर रथ पर चढ़कर **वारिगर्ता** को देखने के लिए निकले।

1407 नानानगगणाकीर्णे गहने-गहने वने।
व्रजन्तौ द्वावपि प्रीत्या पश्यतःस्म स्वचक्षुषा।। 33।।

वे दोनों ही भाई (श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन) विविध प्रकार के वृक्षों से व्याप्त गहन-वन में चलते हुए तथा प्रीतिपूर्वक वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को स्वयं अपनी ही आँखों से निहारते रहे।

1408 क्वचिदानन्दतोऽत्यन्तं नृत्यतो विषिवैरिणः।
क्वचित्सरोवरे कंजराजौ लीनमधुव्रतान्।। 34।।

—कहीं अत्यन्त आनन्द से नृत्य करते हुए विषी (सर्प) के शत्रु-मयूरों को, तो कहीं सरोवरों में कमल-पंक्तियों पर लीन भ्रमर-समुदायों को—

1409 क्वचिद्द्रंष्ट्राकरालास्यान् पङ्कभग्नाङ्गशूकरान्।
क्वचित्पर्वतनिर्यातपयोधरा मनोहराः।। 35।।

—तो कहीं दाढ़ों से विकराल मुँह वाले एवं कीचड़ में डूबे शरीर वाले शूकरों को, तो कहीं पर्वत से निकलती हुई मनोहर जलधारा के झरनों को—

1410 क्वचिद्गिरिगुहाद्वारे सन्सुप्तान् हरिणाधिपान्।
क्वचिदलिव्रजं वृक्षे रममाणं परस्परम्।। 36।।

—तो कहीं पर्वत के गुफाद्वार पर शयनशील सिंहों को, तो कहीं वृक्ष पर आपस में रमण करते हुए भ्रमर-समुदाय एवं पक्षियों को —

1411 क्वचिच्छृगालसन्दोहं प्रधावन्तं भयातुरम्।
क्वचिद्व्याघ्रं प्रगर्जन्तं वेपितावनिमण्डलम्।। 37।।

—तो कहीं भय से व्याकुल होकर दौड़ते हुए सियार-समुदाय को, तो कहीं पृथ्वीमण्डल को कँपा देने वाले गरजते हुए बाघों को —

वन्य गजराज को वश में करने हेतु उसके साधन एवं कठिनाइयाँ

1412 क्वचिच्छकुन्तसंघटतं युद्धयन्तं नरवरैस्ततः।
प्रापतुर्वारिगर्त्तां तां द्वावपि स्वबलान्वितौ।। 38।।

—कुलकम्

इसके बाद कहीं-कहीं उस पक्षि-समुदाय को भी देखा, जो नखों से युद्ध कर रहे थे। (इस प्रकार) वे दोनों अपनी सेनाओं से युक्त होकर उस वारिगर्त्त-स्थान के पास जा पहुँचे। *—कुलकम्*

1413 तत्र दृष्ट्वा चलाकारं कुञ्जरं प्रकिरन्मदम्।
करेणुकानुसंलग्नं स्मरवाणनिपीडितम्।। 39।।

—उस गहन-वन में कामदेव के बाण से पीडित, हथिनी के पीछे-पीछे लगे हुए, मद बिखेरते हुए पर्वताकार हाथी को देखकर—

1414 दत्त्वांकुश हठात्म्भप्रदेशे प्रवरैनरैः।
चीत्कारं प्रविमुञ्चन्स बद्धो बन्धनैर्दृढैः।। 40।।

—युगलम्

—श्रेष्ठ कुशल लोगों के द्वारा (उसके) कठोर कुम्भ-प्रदेश में अंकुश लगाकर तथा कठोर बन्धनों के कारण चीत्कार करते हुए उस हाथी को बाँध दिया गया।

1415 उभयोः पार्श्वयोरग्रे पाश्चात्ये च महाभटान्।
निरुप्याप्रेरितो दन्ती नगराभिमुखं भटैः।। 41।।

दोनों बगलों एवं आगे-पीछे भटों को लगाकर महाभटों ने उस हाथी को नगर की ओर प्रेरित कर चलाया।

1416 तस्थुः सर्वेऽपि राजानो गत्वा योजनविंशतिम्।
स्व-स्वस्थानेषु योग्येषु सेनाधिपतिवाक्यतः।। 42।।

बीस-योजन (अस्सी-कोश) चलने के बाद सेनाधिपति के निर्देश पर सभी राजा अपने-अपने योग्य स्थान पर ठहर गए।

1417 अत्रैव स्थीयते तावद् यावद्दन्ती वशीभवेत्।
इत्युक्त्वा निलयांश्चक्रुः सर्वेऽपि प्रभुसेवकाः।। 43।।

"जब तक हाथी अपने वश में न हो जाए, तब तक यहीं ठहरा जाए।" ऐसा कहकर सभी राजा-सेवकों ने वहीं पर अपने आवास तैयार कर लिए।

1418 समस्तवस्तुसन्दोहयुताविपणिपङ्क्तयः।
श्रीवर्द्धननृपादेशादक्रियन्त वणिग्जनैः।। 44।।

श्रीवर्द्धन राजा का आदेश पाते ही सभी वणिग्जनों ने सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओं वाली दुकानों की वहाँ पंक्तियाँ तैयार कर लीं।

1419 नृपादयो जनाः सर्वे वने शैले च निर्झरे।
चिक्रीडुरनिशं सार्द्धं स्वकान्ताभिर्यथेच्छया।। 45।।

उस समय राजादि सभी लोग अपनी-अपनी कान्ताओं के साथ वन, पर्वत एवं निर्झर में लगातार यथेच्छ रमण करते रहे।

1420 श्रीवद्र्धननृपो नन्दिवर्द्धनेन समं वने।
समागादेकदारुह्य तं गजं सपरिच्छदम्।। 46।।

एक बार राजा श्रीवर्द्धन अपने भाई राजा नन्दिवर्द्धन के साथ परिवार सहित, सजे-धजे उस हाथी पर सवार होकर वन में गया।

कामासक्त-मृग की दुर्गति

1421 तत्रादर्शि नरेन्द्रेणानुजेन सह सस्मरम्।
मृगयुग्मं मनोहारि क्रीडाव्यासक्तमानसम्।। 47।।

वहाँ अपने छोटे भाई नन्दिवर्द्धन के साथ बड़े भाई श्रीवर्द्धन राजा ने कामदेव से युक्त, क्रीड़ा में लगे हुए एक सुन्दर मृग-युगल को देखा।

1422 परमस्नेहभावेन परिरम्भणतत्परम्।
विस्फारितेक्षणं प्रीत्या मनोज्ञं शाखिनामधः।। 48।।

—युग्मम्

वह सुन्दर मृग-युगल वृक्षों के नीचे परमस्नेहभाव से परस्पर में आलिङ्गन

कर रहे थे तथा प्रेम-भाव से एक-दूसरे को विस्फारित नेत्रों से देख रहे थे।

1423 अत्रान्तरे महीपृष्ठे भ्रमन्ती तरला मृगी।
अन्या काचित् समायाता तयोरन्तः कुतश्चन।। 49।।

इसी बीच पृथ्वी पर घूमती-भटकती हुई कोई दूसरी चञ्चला मृगी, कहीं से उस मृग-युगल के पास आई।

1424 वलित्वा तां मृगीं यावन्मृगो बाढं निरीक्षते।
तावदीर्ष्यां विधायाशु मृगं मुक्त्वा मृगाङ्गना।। 50।।

वह मृग जैसे ही उछलकर उस (दूसरी-) मृगी को अच्छी तरह देखता है, तभी इधर वह मृगपत्नी उससे ईर्ष्या करके तथा उसे सपत्नी समझकर तुरन्त ही अपने पति-मृग को त्यागकर —

1425 तस्थौ तरुतले गत्वा रोषतोऽलक्ष्यविग्रहा।
गतस्नेहा स्मरत्यक्ता निजकान्तपराङ्मुखा।। 51।।

— *युगलम्*

—वह प्रेमरहित, काम-विहीन, अपने स्वामी से विमुख और क्रोधावेश में भरकर अपने शरीर को वृक्षों के बीच में छिपाकर ठहर गई।

1426 मृगोऽपि दह्यमानः सन् प्रज्ज्वलद्विरहाग्निना।
जगाम स्थानतस्तस्मादनु तस्याः स्मरातुरः।। 52।।

वह बेचारा मृग भी प्रखर विरहाग्नि से जलता हुआ, काम-देव से व्याकुल होकर उस स्थान से उसके पीछे चला।

1427 अपश्यन्तां मृगीं मूढो रोदितिस्ममृगोभृशम्।
सिञ्चन्निजमुखं नेत्रप्रगलद्वारिबिंदुभिः।। 53।।

उस विमूढ़ मृग ने अपनी प्रेमिका उस मृगी को जब अपने समीप नहीं देखा, तब अपने नेत्रों से झूरती हुई जल-बिन्दुओं के द्वारा अपने मुख को अभिषिक्त करते हुए अत्यन्त रुदन करने लगा।

1428 **आरुह्य पर्वतस्याग्रं तामपश्यन्मृगीं निजाम्।
व्याघुटन् विरहाक्रान्तः स शार्दूलेन भक्षितः।। 54।।**

विरहाक्रान्त जब उस मृग ने अपनी प्रेमिका-मृगी को अपने पास नहीं देखा, तब वह पर्वत के ऊपर चढ़ा और जब वहाँ भी उस मृगी को न देखा तो वह इधर-उधर दौड़ता फिरा और वहीं पर सिंह के द्वारा खा डाला गया।

1429 **स तेन तीक्ष्ण दंष्ट्राभिर्न्नखरैश्च विदारितः।
प्रकुर्व्वन्नपि फूत्कारं न केनापि हि रक्षितः।। 55।।**

फूत्कार कर डरावना बना हुआ भी वह मृग उस शार्दूल (बाघ) के तेज दाँतों और नखों के द्वारा विदार डाला गया। कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सका।

मृग की दुर्गति देखकर राजा श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन को वैराग्य एवं मुनि-दीक्षा

1430 **मृगस्य मरणं दृष्ट्वा दयाधिष्ठितमानसः।
अगाद्वैराग्यमत्यन्तं सानुजो नृपतिस्तदा।। 56।।**

उस मृग का दुखद मरण देखकर वह दयालु राजा-**श्रीवर्द्धन** अपने अनुज राजा **नन्दिवर्द्धन** के साथ भाव-भरित हो गया और वैराग्य को प्राप्त हो गया। वे विचार करने लगे कि—

सांसारिक कष्ट एवं उनसे मुक्ति के साधन

1431 **तिर्यञ्चो मनुजाः नूनं हृषीकवशवर्त्तिनः।
लभन्ते विविधं दुःखं अप्रमाणं निरन्तरम्।। 57।।**

सभी तिर्यञ्च पशु-पक्षी और सभी मनुष्य पाँचों इन्द्रियों के वश में रहने के कारण निरन्तर ही विभिन्न प्रकार के अपरिमित दुःखों को प्राप्त करते ही हैं।

**1432 अयं मृगः क्षयं प्राप्तो मोहोत्थस्नेहतो यथा।
लभन्तेऽन्येपि मोहान्धाः विनाशं देहिनस्तथा।। 58।।**

—जिस प्रकार यह मृग मोहोत्पन्न-स्नेह से विनष्ट हुआ, ठीक उसी प्रकार अन्य मोहान्ध शरीरधारी भी विनाश को प्राप्त करते ही हैं—

**1433 चरंस्तृणानि निश्चिन्तो निर्झरीषुपिबन् गिरौ।
स्त्रीसङ्गतो यथा प्राप्तो मृगोऽयं यममन्दिरम्।। 59।।**

—देखो, यह मृग निश्चिन्त होकर तृणों को चरता था, पर्वत के झरनों का पानी पीता था। किन्तु स्त्री-संग के व्यामोह के कारण ही वह जिस प्रकार यम-मन्दिर (मृत्यु) को प्राप्त हो गया—

**1434 तथाऽन्येपि तनूभाजो विषयासक्तचेतसः।
अकालेऽपि प्रमोदेन प्राप्नुवन्ति मृतिंध्रुवम्।। 60।।**

.—युग्मम्

—ठीक, उसी प्रकार विषयों में आसक्त-चित्त वाले जीव असमय में ही सुखों का अनुभव करते हुए मरण को अवश्य ही प्राप्त करते हैं—

**1435 स्वयूथमध्यगोऽप्येष करीन्द्रः करिणीरतः।
भ्रमन् यदृच्छया बद्धो विषयैः को न बध्यते?।। 61।।**

—यह हाथी भी अपने झुण्ड के मध्यगत था। वह हथिनी में कामासक्त रहकर यथेच्छ घूमता-फिरता था फिर भी उसे बाँध लिया गया। सचमुच ही काम-विषयों के कारण कौन नहीं बाँध लिया गया? सभी के ऊपर यह विपत्ति आती ही है—

**1436 हृषीक विषयासक्ताश्चतुर्षु गतिषु स्फुटम्।
लभन्ते प्राणिनो दुःखमतीवोग्रं न संशयः।। 62।।**

—इन्द्रियजन्य-विषयों में आसक्त प्राणी देवादि चारों प्रकार की गतियों में निश्चय ही अत्यन्त उग्र दुःख पाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं—

असि, मषि आदि षट्कर्मकारकों के कष्ट

1437 असिमष्यादिकर्माणि षट्प्रकाराणि कुर्व्वते।
विषयार्थं जनाः सर्वे विवेकविकलाशयाः।। 63।।

—विवेकशून्य हृदयवाले सभी लोग अपने सांसारिक विषयों की पुष्टि के लिए असि, मषि, कृषि, शिल्प, सेवा एवं वाणिज्य रूप छह प्रकार के कर्म करते हैं—

खड्ग धारकों के कष्ट

1438 धावन्ति नृपतेरग्रे केचिन्निस्त्रिंश पाणयः।
प्रभोर्वाक्यं प्रतीच्छन्ति केचनानतमस्तकाः।। 64।।

—कुछ लोग हाथ में तीक्ष्ण तलवार लेकर राजा के आगे-आगे दौड़ते रहते हैं, तो कुछ लोग नतमस्तक होकर स्वामी के आदेश की सादर प्रतीक्षा करते हैं—

शास्त्र-प्रणेताओं-लेखकों के कष्ट

1439 प्रविमर्द्य मषीं भग्नदृष्टिपृष्टिकटीतटाः।
लिखन्ति लोभतः केचिच्छास्त्राणि विविधानि वै।। 65।।

—कोई मषि (स्याही) वृत्ति वाले लेखक मषि को रगड़-रगड़कर लोभ वश-अनेक शास्त्र (ग्रन्थ) लिखते हैं। उस मषि-कर्म के कारण उनकी दृष्टि नष्ट हो जाती है, पीठ भग्न हो जाती है और कमर टेढ़ी हो जाती है—

कृषकों के कष्ट

1440 क्षेत्राणि लाङ्गलैः केचित् कृषन्त्युदर - हेतवे।
जनास्तथापि दृश्यन्ते दारिद्रयेण कदर्थिताः।। 66।।

—यद्यपि कुछ लोग उदर-पालन-पोषण के लिए प्रयासपूर्वक खेतों को जोतते-बोते हैं, फिर भी वे दरिद्रता से दुःखी देखे जाते हैं—

वणिक्वृत्ति वालों के कष्ट

1441 **केचिल्लोभहतस्वान्ता वणिज्यां कुर्व्वते नराः।**
असत्यानि प्रजल्पन्तः स्वकुटुम्बस्य हेतवे।। 67।।

—लोभी हृदय वाले कुछ लोग अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए झूठ बोलते हुए, वाणिज्य-व्यापार करते हैं, फिर भी दुखी ही रहते हैं—

शास्त्र-पाठकों के कष्ट

1442 **केचित्पठन्ति शास्त्राणि ज्योतिष्कं गणितं नराः।**
तथापि निर्द्धनाः सन्तः प्रार्थयन्तेऽपरं सदा।। 68।।

—कुछ लोग शास्त्र, ज्योतिष एवं गणित-विद्या आदि पढ़ते हैं, फिर भी दरिद्र ही रहते हैं और निरन्तर दूसरों से भिक्षा-सहायता आदि माँगते रहते हैं। ऐसे अध्येता पण्डित-जन भी सुखी नहीं रहते हैं—

शिल्पकारों के कष्ट

1443 **चित्रलेपोपलादीनि शिल्पकर्माणि केचन।**
विदन्ति दृश्यते लक्ष्मीर्न तेषामपि मन्दिरे।। 69।।

—कुछ लोग चित्र-कर्म-लेपन (रंग)-कर्म एवं पत्थर बनाने सम्बन्धी शिल्पकर्म भी करते हैं, किन्तु उनके घर में भी लक्ष्मी नहीं दिखाई पड़ती। वे भी दरिद्र-दुखी देखे जाते हैं—

1444 **यद्यदेव नरः कर्म विदधाति बिना वृषम्।**
तत्तदेव वृथा याति बीजं वर जलवर्जितम्।। 70।।

—धर्म-सेवन के बिना मनुष्य जो-जो भी कर्म करता है, वह सब जल से रहित बीज-वपन की तरह व्यर्थ हो जाता है—

1445 **षट्कर्माणि करोत्येव समस्तोऽपि जनोऽनिशम्।**
संसार सौख्यसम्प्राप्त्यैमहामोहवशीकृतः।। 71।।

—सांसारिक सुखों की प्राप्ति हेतु महामोह के अधीन होकर सभी मनुष्य

निरन्तर ही षट्कर्म करते रहते हैं किन्तु उन्हें भी सुखी नहीं देखा गया—

शाश्वत-सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न अत्यावश्यक

1446 न पुनर्मोक्षसौख्याय शाश्वताय तमोन्धधीः।
स्वकर्म विनाशाय विदधात्युद्यमं नरः।। 72।।

—यह सब जानते हुए भी अज्ञान से विमूढ़-व्यक्ति शाश्वत मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिए अपने अष्ट-कर्म-विनाश के लिए कोई उद्यम नहीं करता—

1447 प्राप्य कर्ममहीं जन्म मनुष्यस्य कुलं वरम्।
आरोग्यञ्च वृषं जैनं स्वर्गमोक्षप्रदायकम्।। 73।।

— मनुष्य-जन्म, उत्तम कुल-कर्मभूमि, सुन्दर स्वस्थ शरीर एवं स्वर्ग-मोक्ष को देने वाले जैनधर्म को प्राप्त करके भी—

1448 मोक्षमार्गस्य नो चिन्तां तथापि मूढमानसाः।
कुर्व्वते प्राणिनः क्रूरमोहभाव प्रसङ्गतः।। 74।।
—युग्मम्

—मूढ़ हृदयवाले प्राणी क्रूरमोहभाव के संसर्ग से संसार के कष्टों से मुक्ति प्रदान कराने वाले मोक्षमार्ग की चिन्ता नहीं करते। —*युग्मम्*

1449 यदकर्म तदेवाशु रचयन्ति जडाशयाः।
भ्रमन्ति येन संसारसमुद्रे सततं पुनः।। 75।।

—और, जो कुत्सितकर्म हैं, जडाशय (मूर्ख) उन्हीं को शीघ्र ही करते रहते हैं, जिस कारण वे निरन्तर संसार-समुद्र में भ्रमण करते रहते हैं—

1450 इति धर्म्मकथां कृत्वा तौ द्वावपि सहोदरौ।
तत्क्षणात्स्वस्वपुत्राय समर्प्याशु निजां श्रियम्।। 76।।

—इस प्रकार वे दोनों सहोदर भाई (-राजा श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन) धर्म-कथा को करके तुरन्त ही अपने-अपने पुत्र को अपनी राज्यादि चल-अचल सम्पत्ति सौंपकर—

1451 प्रणम्य श्रीधरं साधुं केवलज्ञानलोचनम्।
मुक्त्वा परिग्रहं द्वेधा निर्ग्रन्थव्रतमाश्रितौ।। 77।।
—युग्मम्

—केवलज्ञानरूपी नेत्र वाले उन **साधु श्रीधर** को प्रणाम कर अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग दोनों प्रकार के परिग्रहों का परित्याग कर वे दोनों भाई कठोर तपस्वी **निर्ग्रन्थ महाव्रती** हो गए—

1452 अन्येऽपि पृथिवीपाला हृषीकैरपराजिताः।
राज्यं विमुच्य नैर्ग्रन्थ्यन्तपस्तीव्रं समाश्रिताः।। 78।।

—उन दोनों राजाओं के सेवक अन्य राजाओं ने भी पञ्चेन्द्रियों के वशीभूत न होकर, अपने-अपने राज्यों का परित्याग कर तीव्र निर्ग्रन्थ-तप-व्रत को स्वीकार किया—

नवदीक्षित मुनियों ने संख्याक्रमानुसार जैनाचार का पालन कर जीवन सार्थक किया

1453 सर्वे सर्वगुणाधारा एकत्वस्मरणान्विताः।
द्विधा धर्मविचारज्ञास्त्रिशल्यारात्यनिर्जिताः।। 79।।

—वे नवदीक्षित (राजागण-) मुनिगण उत्तम क्षमा आदि उत्तर-गुणों तथा 28 मूलगुणों के आधार थे। अपने आत्म-स्वरूप के एकत्व के स्मरण से युक्त थे, निश्चय-व्यवहार रूप दोनों धर्मों के विचारक थे और तीन शल्य रूपी शत्रुओं को जीतने वाले थे—

1454 चतुर्गतिगमत्रस्ताः पञ्चास्रवनिरोधकाः।
षड्जीवरक्षणाशक्ताः सप्ततत्त्वविचारकाः।। 80।।

— नरक आदि चतुर्गतियों में गमन करने में वे मुनिगण भयभीत थे, मिथ्यात्वादि पाँच प्रकार के आश्रवों के निरोधक (संवर करने वाले) थे। छह प्रकार के जीवों की रक्षा करने में तल्लीन थे और जीवाजीवादि सात प्रकार के तत्त्वों के विचारक थे—

1455 मदाष्टकविनिर्मुक्ता नवधाब्रह्मवेदिनः।
दशधा प्राणसंयुक्ता विधृतैकादशाङ्गकाः।। 81।।

—वे मुनिगण ज्ञानादि आठ प्रकार के मदों से मुक्त, नौ प्रकार के शीलव्रत रूप ब्रह्म-स्वरूप के ज्ञाता तथा दस प्रकार के प्राणों से युक्त और आचारांगादि ग्यारह-अंगों के धारक-ज्ञाता—

1456 द्वादशोग्रतपस्तेजस्तिरस्कृतदिवाकराः।
त्रयोदशविधस्फारचारित्रश्रीविराजिताः।। 82।।

—बाह्याभ्यन्तर रूप बारह प्रकार के उग्रतपों से सूर्य को भी अपमानित करने वाले थे, तेरह प्रकार के विशाल उज्ज्वल-चारित्रश्री से सुशोभित—

1457 चतुर्दशविधग्रन्थविहीना मदनारयः।
प्रमादैः सर्वदा पञ्चदशभिः परिवर्जिताः।। 83।।

—चौदह प्रकार के अन्तरङ्ग-परिग्रहों से रहित, कामदेव के शत्रु तथा निरन्तर ही पन्द्रह प्रकार के प्रमादों से रहित—

1458 कषायैर्दुःखदैस्त्यक्ताः सर्वे षोडशभेदगैः।
महामोहतमोजाल विपाटनपटीयसः।। 84।।

—कुलकम्

— वे सभी मुनिगण सोलह भेदगत दुखद क्रोधादि कषायों के त्यागी थे। महामोहनीय-कर्मरूप-मोहान्धकार-जाल के नष्ट करने में चतुर एवं समर्थ सिद्ध हुए। —*कुलकम्*

1459 सर्वैस्तैर्महनीयबोधसहितैः शुद्धात्मभिः साधुभिः।
शश्वल्लक्षणसंयुतैः शिवसुखन्यस्तान्तरङ्गैः शुभैः।
भक्त्या नम्रशिरोभिरावृततनुः पूज्यो गुरुः श्रीधरो।
रेजे पूर्णशशीव निर्मलतरैः तारागणैर्भूषितः।। 85।।

— वे सभी मुनिगण महनीय ज्ञान से युक्त, शुद्धोपयोगी, शाश्वत ज्ञान-लक्षण से युक्त, शिव-सुख-निराकुलता में अपना मन रमाए रखने वाले, शुभोपयोग

वाले तथा भक्ति-भाव पूर्वक सिर झुकाकर गुरु को नमस्कार करने वाले थे। उन सभी के साथ पूज्य **गुरु श्रीधर** वहाँ उसी प्रकार सुशोभित थे, जिस प्रकार पूर्णमासी का चन्द्रमा निर्मल तारागणों के मध्य सुशोभित रहता है।

....

इतिश्री भविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर विरचिते साहूलक्ष्मणनामाङ्किते श्रीवर्द्धन-नन्दिवर्द्धनतपो वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः।। 14।।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित साहूलक्ष्मण के नाम से अंकित श्रीभविष्यदत्त-चरित्र-महाकाव्य में श्रीवर्द्धन-नन्दिवर्द्धन-तपवर्णन नामका चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

पन्द्रहवाँ सर्ग

1460 यो मन्दिरं गुणगणामलरत्नराशे—
धर्म्मस्य सन्निधिरगारमुदारतायाः।
लक्ष्म्या गृहं वसतिरुद्ध विविक्ततायाः।
संवर्ण्यते ननु कथं न स लक्ष्मणाख्यः।। 1।।

जो सद्गुण रूपी रत्नराशि का मन्दिर (घर) है, जो धर्म की सन्निधि है, उदारता का आगार है, लक्ष्मी का घर है, जो परमशान्ति का निवास-स्थान है, उस श्रीमान् साहू लक्ष्मण का वर्णन (प्रशंसा) क्यों न किया जाए?

महामुनि श्रीधर को मोक्ष-पद प्राप्ति

1461 अथ कृत्वा तपो घोरं कर्म्माष्टकविवर्जितः।
पदं मोक्षस्य निर्ग्रन्थो जगाम श्रीधराभिधः।। 2।।

तत्पश्चात् ही **श्रीधरनाम** वाले यशस्वी निर्ग्रन्थ महामुनि ने ज्ञानावरणादि अष्टकर्म-रहित होकर, घोर तपस्या करके मोक्ष-पद को प्राप्त किया।

महामुनि श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन की उग्रतपस्या और कैवल्य-प्राप्ति

1462 श्रीवर्द्धनाभिधः साधुरपरो नन्दिवर्द्धनः।
ताभ्यां द्वाभ्यां तपस्तीव्रंचरद्भ्यां द्वादशप्रभम्।। 3।।

—और, श्रीवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धन नामके उन दोनों महामुनियों ने भी प्रखर सूर्य के समान बारह प्रकार की उग्र तपस्या करते हुए—

1463 जयद्भ्यां दुःसहांस्तीव्रान् द्वाविंशतिपरीषहान्।
वहद्भ्यां चारुचारित्रं त्रयोदशविधं सदा।। 4।।

—बाईस दुःसह एवं कठोर परीषहों को जीतते हुए, निरन्तर तेरह प्रकार

के निर्दोष चारित्रों को वहन करते हुए—

1464 कुर्वद्भ्यां विनयं ज्येष्ठमुनीन्द्रेषु श्रुतेषु च।
चिन्तयद्भ्यां शुभध्यानं हतं घातिचतुष्टयम्।।5।।
—त्रिकलम्

—श्रेष्ठ मुनीन्द्रों एवं श्रुतागमों के प्रति निरन्तर विनयशील, शुभध्यान (धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान) का चिन्तन करते हुए उन्होंने घाति-चतुष्टय कर्मों को नष्ट किया।

1465 ततस्तौ केवलज्ञानसम्पदा परिरम्भितौ।
चराचरजगद्वस्तुविलोकनसमर्थया।। 6।।

तत्पश्चात् वे दोनों महामुनि ऐसे केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से आलिंगित हो गए जो चराचर समस्त जगत् की वस्तुओं को हस्तामलकवत् जानने-समझने में समर्थ था।

1466 द्वावपि त्रिदशा सौख्यानेकस्तुतिभिः स्तुतौ।
पुनर्नतौ भक्तिभाव प्राग्भारानतमस्तकैः।। 7।।

अनेक देवों ने आकर उन दोनों केवली महामुनियों की विविध प्रकार की स्तुतियाँ कीं। फिर भक्ति-भार से विनम्र मस्तक होकर उन देवों ने उन मुनियों को नमस्कार किया।

1467 अत्रान्तरे तयोर्वार्त्तां निशम्यमुनिनाथयोः।
सम्प्राप्तकेवलज्ञानसम्पदोर्दलितद्विषोः।। 8।।

इसी बीच केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेने वाले तथा कर्मरूपी शत्रुओं को विनष्ट करने वाले उन दोनों मुनिनाथों के आगमन का समाचार सुनकर—

नद्यूष-राजेन्द्र उन महामुनियों के दर्शनार्थ पहुँचता है

1468 नाम्ना नद्यूषराजेन्द्रः स्वपरिच्छदसंयुतः।
वन्दितुं तत्पदद्वन्द्वमगाद् गीर्वाणसन्निभः।। 9।।

—युग्मकं

—इन्द्र तुल्य **नद्यूषनामका राजेन्द्र** अपने परिवार के साथ उन दोनों महामुनियों—**श्रीवर्द्धन** एवं **नन्दिवर्द्धन** के चरणद्वय की वन्दना करने के लिए गया।

1469 मुकुलीकृत्य हस्तौ द्वौ दत्त्वा तिस्रः प्रदक्षिणाः।
तयोर्मनोवचःकाय विशुद्ध्या परमेष्ठिनोः।। 10।।

उस नद्यूष-राजेन्द्र ने सपरिवार अपने हाथ को जोड़कर, तीन बार परिक्रमा करके, मन-वचन और काय की शुद्धि पूर्वक परमपूजनीय उन दोनों महामुनियों की—

1470 ततो वसुविधां पूजां विधाय विधिपूर्वकम्।
जलगन्धाक्षतैर्द्रव्यैर्विकसत्कुसुमादिभिः।। 11।।

—जल-गन्ध, अक्षत, विकसित पुष्पों आदि अष्ट-द्रव्यों के द्वारा विधिपूर्वक पूजा करके—

वह राजेन्द्र उनसे कैवल्य-प्राप्ति का साधन पूछता है और उनसे उत्तर प्राप्त करता है

1471 प्रणम्यानतशीर्षेण पादपद्मद्वयं तयोः।
पप्रच्छ केवलज्ञानकारणं स महीपतिः।। 12।।

—त्रिकलम्

—उस नद्यूष-राजेन्द्र ने उन दोनों महामुनियों—श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन के चरणकमलों में नतमस्तक होकर उनसे उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण इस प्रकार पूछा कि— *—त्रिकलम्*

**1472 कथं स्वामिन्नयं जातो युवयोः कर्म्मणां क्षयः।
निजं पुरातनं जन्म ममाग्रे विनिवेद्यताम्।। 13।।**

—"हे स्वामिन्! आप दोनों का यह कर्म-क्षय कैसे हुआ? इसका कारण बतलाते हुए कृपा कर अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त भी मुझे बतलाइए।"

**1473 नृपतेर्वाक्यमाकर्ण्य जगौ श्रीवर्द्धनो मुनिः।
श्रूयतां सावधानेन मनसा पृथिवीपते।। 14।।**

राजा का जिज्ञासा-भरा प्रश्न सुनकर **श्रीवर्द्धन मुनि** ने अपने उत्तर में कहा—मन से सावधान होकर सुनिए—

**1474 संसारोऽयं सदा नादिनिधनो नास्य कश्चन।
कर्त्ता हर्त्ता च धर्त्ता च देवो विद्याधरोऽथवा।। 15।।**

—यह संसार सदा से अनादि और अनन्त है। कोई भी देव या विद्याधर, इसका कर्त्ता, हर्त्ता या पालनकर्त्ता नहीं है—

**1475 आहतः कर्म्मभिः क्रूरैर्जिनधर्म्मविवर्ज्जितः।
सहमानोऽतिदुःखानि बभ्रमीति भवी चिरम्।। 16।।**

—ज्ञानावरणादि क्रूर-कर्मों से आहत होकर एवं जिनधर्म से रहित व्यक्ति संसारी होकर असह्य दुःखों को सहता हुआ दीर्घकाल तक घूमता-भटकता रहता है।

नरक-गति के दुखों का वर्णन

**1476 जीवान्निहत्य संजल्प्य व्यलीकं सरसं पदम्।
चोरयित्वान्यरामाञ्च रमयित्वानुरागतः।। 17।।**

—जीवों को मारकर, सरस-शैली में झूठ बोलकर, चोरी करके तथा दूसरों की स्त्रियों का अपहरण कर और उनसे प्रेमपूर्वक रमण करके—

1477 **सङ्गप्रमाणसन्त्यक्तो मद्यमांसादने रतः।**
जीवः पापप्रभावेण नरके पतति ध्रुवम्।। 18।।

—युग्मकम्

—परिग्रह का प्रमाण (सीमा) छोड़कर मद्य एवं मांस के सेवन में रत जीव पाप के प्रभाव से निश्चय ही नरक में जा गिरता है। *—युग्मकम्*

1478 **बीभत्से तीव्रदुर्गन्धे प्रसरत्तिमिरोत्करे।**
अनेक नारकाकीर्णे दुःखावासे भयानके।। 19।।

—बीभत्स, तीव्र दुर्गन्ध वाले, सर्वत्र विस्तृत अन्धकार वाले अनेक नारकीय बिलों से भरे हुए एवं भयानक दुःखों से परिपूर्ण आवास में (जाकर)—

1479 **ततोऽमन्दासिधाराभिः छिद्यते तच्छिरः क्रुधा।**
मिलित्वा नारकैः सर्वैः कुन्ताग्रैश्च बिभिद्यते।। 20।।

—युग्मम्

—वहाँ अनुकूल वायु के चलने से गिरे हुए वृक्षों के असिधारा के समान नुकीले तीक्ष्ण पत्तों द्वारा नारकियों द्वारा परस्पर में क्रोध पूर्वक एक-दूसरे के सिरों को काटा-मारा जाता है।

1480 **शूलोपरितने भागे पूत्कुर्वन् क्षिप्यते हठात्।**
दार्यते क्रकचैस्तीक्ष्णैस्तप्ततैले निधीयते।। 21।।

—उस नरक में तीक्ष्ण शूल के ऊपरी भाग पर चीत्कार करते हुए को भी जबर्दस्ती फेंक दिया जाता है या तेज आरा से चीर कर उसे तप्त तेल के कड़ाहे में डाल दिया जाता है—

1481 **इत्थं भूतं महादुःखं पापतः सहते पुमान्।**
सप्तमे नरके भूप त्रयस्त्रिंशन्नदीशिनः।। 22।।

—इस प्रकार, हे राजन्! यह मनुष्य अपने पापों के कारण सातवें नरक में तेतीस सागर की आयु तक घोर कष्ट सहता है।

तिर्यञ्च-गति के दुखों का वर्णन

1482 कथञ्चिद्‌दुःखतस्तस्मान्नरकाद्यदि दैवतः।
निर्गच्छति तथाप्यङ्गी भवेत्तिर्यग्न मानवः।। 23।।

दैवयोग से यदि जिस किसी प्रकार उस दुःखरूप नरक से निकलता भी है, तो भी वह जीव तिर्यञ्च-गति (पशु-पक्षी योनि) में जन्म लेता है। वह मनुष्य-गति प्राप्त नहीं कर पाता।

1483 तथापि सहते दुःखं विविधं पूर्वपापतः।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकानेकयोनिषु।। 24।।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रिय-योनियों में जन्म लेकर इस तिर्यञ्च गति में भी पूर्वकृत पापों के प्रभाव से वह विविध प्रकार के दुखों को सहता है।

1484 छेदनं भेदनं बन्ध्यं दारणं मारणं वधः।
दहनं ताडनं त्रास इत्यादि तनुपीडनम्।। 25।।

छेदन (नाक-कान), भेदन (खण्ड-खण्ड करना), बन्धन, दारण (चीरना), मारण (बलि आदि चढ़ाना), वध, जलाना, पीटना तथा भयभीत करना आदि शारीरिक कष्टों को सहना पड़ता है।

1485 खिन्नाङ्गो विविधैर्दुःखैस्तस्मादपि विनिर्गतः।
कृच्छ्रतो लभते नृत्वं स्यात्तत्रैवातिदुःखितः।। 26।।

इस प्रकार विविध प्रकार के उस तिर्यञ्च-गति में क्षीण-खिन्न शरीर हुआ यह जीव वहाँ से अत्यन्त कष्टपूर्वक निकल पाता है और बड़ी कठिनाई से मनुष्य गति प्राप्त कर पाता है, किन्तु उस गति में भी उसे विविध प्रकार के कष्टों को भोगना पड़ता है।

मनुष्य-गति के दुखों का वर्णन

1486 **पापात्करोति कर्माणि परेषां निलयेऽनिशम्।
दुर्वचोभिः खरैः सर्वैः सर्वत्र परिभूयते।। 27।।**

मनुष्यगति को प्राप्त कर जीव दूसरों के घरों में निरन्तर पाप-कर्मों को करता है, और उसे वहाँ सभी प्रकार के कठोर दुर्वचनों से पराभूत अपमानित होना पड़ता है।

1487 **युक्तिमप्राप्नुवन् तीव्रक्षुद्हुताशेन तप्यते।
दैन्यं वक्ति पुरः स्थित्वा श्रीमतां कान्तिवर्जितः।। 28।।**

दरिद्रता-वश भोजन प्राप्त न कर पाने के कारण वह तीव्र क्षुधा के कारण सन्तप्त रहता है और कान्तिविहीन होकर धनाढ्यों के सम्मुख दीन-हीन बनकर याचना करता रहता है।

1488 **एवमाद्यशुभादुःखं सहते नरयोनिषु।
मनुष्योऽपि जिनाधीशधर्म्मसंत्यक्तमानसः।। 29।।**

इस प्रकार जिनाधीश के धर्म (जैन धर्म) को छोड़ देने वाला मनुष्य नरयोनियों में भी विविध प्रकार के अशुभ से अशुभ दुःखों को सहन करता है।

देव-योनि के दुख

1489 **देवयोनिषु जातोऽपि जीवो धर्मात्सतः सदा।
तत्रापि सहते दुःखं मानसं नितरां नृप।। 30।।**

हे राजन्! सत्य धर्माचरण के फलस्वरूप देव-योनियों में उत्पन्न जीव भी निरन्तर ही मानसिक दुखों के कारण सन्तप्त बना रहता है।

पञ्चमी-व्रत और उसके पालन का महत्त्व

1490 **आवाम्यां शुद्धभावाम्यां भवतोऽस्मात्तृतीयके।
भवे विधानतोऽकारि पञ्चम्या विधिरुत्तमः।। 31।।**

—हाँ, हे राजन्, अपने इस भव (जन्म) से पूर्व तीसरे भव में हम दोनों

(अर्थात् महामुनि श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन) ने शुद्ध भावपूर्वक शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उत्तम **पञ्चमी-व्रत** किया था—

1491 तत्फलेन नरेन्द्राणां सुराणां सौख्यमुत्तमम्।
सम्प्राप्तमधुनाजातं सम्यक्त्वमतिनिर्मलम्।। 32।।

—उसी (पञ्चमी-व्रत के पालने) के फलस्वरूप राजाओं, चक्रवर्तियों एवं देवों का सुख मिलता है। उसे ही हम दोनों (महामुनियों) ने प्राप्त किया है। अब हमें अतिनिर्मल सम्यग्दर्शन हो गया है—

1492 तत्प्रभावादूगतं घातिकर्म्मणां च चतुष्टयम्।
बभूव केवलज्ञानं लोकालोकावभासकम्।। 33।।

और, उसी के प्रभाव से घातिकर्म-चतुष्ट्य क्षय हुआ है और लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्रकट हुआ है।

1493 अन्यान्यपि कर्म्माणि हत्त्वा शेषाणि भूपते।
यास्यावः शाश्वतं मोक्षपदमावां सुदुर्ल्लभम्।। 34।।

और, हे भूपते! अब अवशिष्ट चार प्रकार के अघातिया कर्मों का भी क्षय करके हम दोनों महामुनि-दुर्लभ एवं शाश्वत मोक्ष-पद को प्राप्त करेंगे—

1494 फलेन श्रुतपञ्चम्या निर्म्मलेन पिता मम।
आवां द्वावपि संजातास्त्रयः केवलिनः स्फुटम्।। 35।।

—इस प्रकार, हे राजन्, **श्रुत-पञ्चमी** व्रतोपासना के निर्मल फलस्वरूप हमारे पिता (राजा वसुन्धर) तथा उनके दोनों पुत्र अर्थात् हम दोनों (श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन) इन तीनों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है।

1495 श्रीवर्द्धनमुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा नरेशिना।
समर्च्य तत्पदद्वन्द्वं भव्यानपि मुनीश्वरान्।। 36।।

—उस राजा नघूष राजेन्द्र ने उन भव्य महामुनि श्रीवर्द्धन के प्रवचनादि सुनकर उनके चरण-कमलों की पूजा-अर्चना की और—

नघूष राजेन्द्र प्रभावित होकर पञ्चमी-व्रत स्वीकार कर लेता है

1496 पञ्चमी विधिरग्राहि भक्तितो भवभीरुणा।
अन्यैरपि जनैर्नम्रशिरोभिर्भवहानये।। 37।।

—संसार से भयभीत उस (नघूष राजेन्द्र) ने तथा भक्ति-भरित भाव से नत-मस्तक अन्य लोगों ने भी संसार के कष्टों से विमुक्ति के लिए उक्त पञ्चमी-व्रत की विधि को स्वीकार किया।

1497 नत्वा केवलिनं साधुं श्रीवर्द्धनसमाह्वयम्।
गृहं परिजनेनामा नघूषाख्यो नृपो ययौ।। 38।।

(वह) नघूष राजेन्द्र (नामक राजा) केवलज्ञानी श्रीवर्द्धन मुनीन्द्र को नमस्कार कर अपने परिवार के साथ वापिस घर चला गया।

उक्त दोनों महामुनियों को मोक्ष-प्राप्ति

1498 अथ द्वावपि तौ साधू शुक्लध्यानोग्रबह्निना।
दग्ध्वा निःशेषकर्माणि पदं मोक्षस्य जग्मतुः।। 39।।

तदनन्तर वे दोनों ही महामुनि (श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन) शुक्ल-ध्यान रूपी तीव्र-अग्नि से सम्पूर्ण कर्मों को जलाकर मोक्ष को प्राप्त हुए।

1499 सम्यक्त्वादिगुणोपेतौ चतुर्गतिविवर्जितौ।
असिस्थमूषिकागर्भसदृशाकारधारिणौ।। 40।।

वे दोनों ही महामुनि सम्यक्त्वादि अष्ट-गुणों से सम्पन्न, चतुर्गतियों के कष्टों से मुक्त तलवार पर चढ़े मूषिक के गर्भ के सदृश शुद्ध आकार वाले हो गए।

धनभद्रा, कमलश्री, प्रभाचूलदेव, राजा वसुन्धर,
धनमित्र, भविष्यदत्त आदि के जन्मान्तर-कथन

1500 समासीद्‌या पुरा नारी धनभद्रेति विश्रुता।
सा द्वितीये भवे जाता कमलश्रीर्वणिक्सुता।। 41।।

और इधर, जो नारी पूर्व-जन्म में धनभद्रा नाम से प्रसिद्ध थी, वही

अगले जन्म में कमलश्री नामकी वणिक्पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई—

1501 ततः कृत्वा तपोघोरं त्रिधा पुण्यानुबन्धतः।
प्रभाचूलाभिधो देवो बभूवाष्टगुणान्वितः।। 42।।

—पुनः पुण्य के प्रभाव से घोर तपस्या करके मन-वचन काय की शुद्धि पूर्वक वह मरकर अणिमा, महिमा आदि अष्ट-ऋद्धिधारी प्रभाचूल नामका देव हुआ—

1502 आयुः क्षये ततश्च्युत्वा नृपो नाम वसुन्धरः।
धीरधीः समभूद्भूरिविभूति समलङ्कृतः।। 43।।

—पुनः वहाँ की अपनी आयु को पूर्ण कर वह देव (प्रभाचूल) वहाँ (स्वर्ग) से चयकर इस जन्म में प्रभूत-विभूति से सम्पन्न तथा धीर-वीर-बुद्धि वाला वसुन्धर नामका राजा हुआ—

1503 धनमित्रः समासीद् यः पुरा तु प्रथमेभवे।
ततो भविष्यदत्तोऽभूत्कथा हेतुर्वणिक्सुतः।। 44।।

—और जो पूर्व-जन्म में धनमित्र था, वही मरकर इस जन्म में भविष्यदत्त नामका वणिक्पुत्र हुआ, जो प्रस्तुत कथा का कारण (नायक) है—

1504 कृत्वा राज्यन्तपश्चैव हत्वा कर्म्माणि केवलम्।
उपपाद्य समगान्मोक्षमक्षयं स वसुन्धरः।। 45।।

—वह राजा वसुन्धर राज्य करके और वैरागी बनकर घोर तपस्या करके समस्त कर्मों का क्षय कर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर अक्षय-मोक्ष को प्राप्त हुआ—

हेमाङ्गद-श्रीवर्द्धन, कीर्तिसेना-भविष्यानुरूपा
रत्नचूल, नन्दिवर्द्धन के जन्मान्तर एवं मोक्षगमन वर्णन

1505 ततो हेमाङ्गदो देवो द्युतिप्रद्योतिताम्बरः।
ततश्च्युतोऽभवद्भूपः श्रीवर्द्धन इति स्मृतः।। 46।।

—तब अपनी कान्ति से आकाश को प्रकाशित करने वाला हेमांगद

नामक वह देव भी अगले (उसी) जन्म में आकर श्रीवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ —

1506 **तपो विधाय नैर्ग्रन्थ्यं द्विषड्भेदं दयान्वितम्।**
कर्म्मणामष्टकं हत्वा जगाम शिवमन्दिरम्।। 47।।

— उस राजा श्रीवर्द्धन ने भी अहिंसा-धर्म का पालन करते हुए अन्तर्बाह्य द्वादशविध-निर्गन्थ-तप करके अष्ट-कर्मों को नष्ट कर शिवमन्दिर (मोक्ष) को प्राप्त किया —

1507 **कीर्तिसेना पुरा याऽसीन्मन्त्रि-पुत्रीमनोरमा।**
ततोऽजनि भविष्यानुरूपारूपसमन्विता।। 48।।

— और जो पूर्वजन्म में मन्त्री की सुन्दर कीर्तिसेना नामकी पुत्री थी, वही अगले (इसी जन्म) में रूपवती भविष्यानुरूपा के रूप में उत्पन्न होकर प्रसिद्ध हुई—

1508 **ततस्तप्त्वा तपो जैनं बभूव त्रिदशालये।**
रत्नचूलाभिधो देवः सहजाभरणभूषितः।। 49।।

— तत्पश्चात् वही भविष्यानुरूपा जैन-विधिपूर्वक तपस्या कर सहज आभरणों से विभूषित रत्नचूल नामका देव हुई—

1509 **ततश्च्युत्वात्र भूपालो नन्दिवर्द्धन इत्यभूत्।**
तपसा कर्मसन्घातं निहत्यागाच्छिवालयम्।। 50।।

—पुनः वह रत्नचूल देव देवयोनि से चयकर इस जन्म में नन्दिवर्द्धन नामका राजा हुआ, जिसने घोर तपस्या कर अष्टकर्मों का क्षय कर शिवालय (मोक्ष) को प्राप्त किया।

मुनीन्द्र श्रीधर तथा श्रीवर्द्धन एवं नन्दिवर्द्धन का सभी को आशीर्वाद

1510 **ते त्रयोऽपि सुरनाथपूजिताः**
मेदिनीपतिमुनीन्द्रसंस्तुताः।

क्षीणकर्मरिपवः सदात्र वः
शाश्वतीं वितरन्तु सम्पदम् ।। 51 ।।

देवताओं द्वारा पूजित, राजाओं एवं मुनीन्द्रों द्वारा स्तुत एवं अष्टकर्मों के शत्रु, वे तीनों ही शिवयोगी साधक मुनीन्द्र निरन्तर ही तुम सभी को शाश्वती सम्पदा (मोक्ष-लक्ष्मी) वितरित करते रहें।

भविष्यदत्त महाकाव्य का रचना-स्थल एवं कथा के क्रमिक विकास का संकेत

1511 **चन्द्रप्रभस्य जगतामधिपस्य तीर्थे,**
जातेयमद्भुतकथा कविकण्ठभूषा।
विस्तारिता च मुनिनाथगणैः क्रमेण,
ज्ञाता मयाप्यपरसूरिमुखाम्बुजेम्यः ।। 52 ।।

महाकवियों के कण्ठ के लिए आभूषण-स्वरूप (वणिक्पुत्र-) भविष्यदत्त का यह अद्भुत कथानक त्रिजगताधिपति (तीर्थंकर-) चन्द्रप्रभु की तीर्थस्थली में लिखा गया था। उसी कथानक को मुनीन्द्रगण क्रमशः विस्तार देते रहे, जिसे मैंने (महाकवि विबुध श्रीधर ने) परवर्ती आचार्य-लेखकों के मुख-कमलों से जो जैसा जाना-समझा है उसे ही यहाँ प्रस्तुत महाकाव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

भविष्यदत्त-कथा का माहात्म्य

1512 **भक्त्यात्र ये चरितमेतदनूनबुद्ध्या,**
शृण्वन्ति संसदि पठन्ति च पाठयन्ति।
दत्त्वा धनं निजकरेण च लेखयन्ति,
व्युद्ग्राहभावरहिताश्च लिखन्ति सन्तः ।। 53 ।।

जो व्यक्ति इस चरित-कथा को एकाग्र भक्तिभाव से पूर्ण बुद्धि लगाकर सुनते हैं, सभा-मण्डप में पढ़ते, पढ़ाते एवं पढ़वाते हैं तथा स्वयं अपने ही हाथों से धन देकर इस चरित-कथा को दूसरों (प्रतिलिपिकारों) से लिखवाते (प्रतिलिपि-कार्य कराते) हैं और जो सन्त-सज्जनगण बिना किसी हठाग्रह,

लोभ-लालचविहीन होकर स्वयं लिखते हैं—

ग्रन्थकार एवं उसके आश्रयदाता का व्यक्तित्व

1513 ते वदन्ति बललक्षणशुद्धाः,
श्रीधरामलमुखा जनमुख्याः।
प्राप्तचिन्तित समस्त सुखार्थाः,
शुभ्र कीर्तिधवली कृत लोकाः।। 54।।

—युग्मम्

प्रबल शुद्ध लक्षणों से सम्पन्न ऐसे वे लोग ठीक ही कहते हैं कि अपनी उज्ज्वल धवलकीर्ति से लोक (मानव-जगत्) को श्रेष्ठता (धवलीकृत) प्रदान कराने वाले यदि कोई हैं, तो वे हैं श्री-शोभा के धारी तथा सौम्य मुख-मुद्रा वाले (विबुध-) श्रीधर (प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ के प्रणेता), जो सभी महाकवियों में मुख्य (प्रधान) हैं तथा अपनी उज्ज्वल-धवलकीर्ति से लोक (मानव-जगत्) को श्रेष्ठता तथा सभी के लिए अभीप्सित सुख-साधन प्रदान करने वाले साहू लक्ष्मण (प्रस्तुत ग्रन्थ-लेखन के लिए प्रेरक एवं आश्रयदाता) श्रेष्ठियों में श्रेष्ठ-प्रधान हैं। *—युग्मम्*

इतिश्री भविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर विरचिते साहूलक्ष्मणनामाङ्किते श्रीवर्द्धन-नन्दिवर्द्धन मोक्ष-गमन वर्णनं नाम पञ्च-दशः सर्गः समाप्तः।। 15।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।।

इस प्रकार विबुधश्रीधर द्वारा विरचित साहूलक्ष्मण के नाम से अंकित श्रीभविष्यदत्त-चरित नामक महाकाव्य में श्रीवर्द्धन-नन्दिवर्द्धन के मोक्ष-गमन-वर्णन नामका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

....

अथ प्रशस्तिः
(प्रतिलिपिकार-प्रशस्ति)

संवत् 1607 वर्षे चैत्रशुक्ल पक्षे 5 मी तिथौ, श्रीमूलसन्घे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे नन्द्याम्नाये **श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये** भट्टारक श्री **पद्मनन्दी** तत्पट्टे भ० श्री **सकलकीर्ति** तत्पट्टे भ० श्रीभुवनकीर्ति तत्पट्टे भ० **श्रीज्ञानभूषण** तद्गुरुभ्राता स्थविराचार्य **श्रीरत्नकीर्तिस्तच्छिष्याचार्य श्रीदेवकीर्तिस्तच्छिष्याचार्य** श्री **शीलभूषणस्तच्छिष्य** ब्र० **क्षेमाख्याय** खण्डेलवारान्वये लुहाडिया गोत्रे सा० देदा भा० दामा पुत्रास्त्रयः सा नाथू भा० नाल्ही सा० देवराजभार्या वील्हा सा० वोहिथ भा० तोल्ही सा नाथूसुत सा० कोल्हा भार्या। दामू सा० देवराज सुत सा० होला भार्या मोल्ही द्वितीय भार्या लाछी सा० कोल्हा पुत्रौ द्वौ सा० हीरा भा० रत्ना सा० पदारथ भा० पद्मा।। छ।।

एतेषां देवराजो बहुगुणनिलयस्तस्य पत्नी च वील्हा।
युक्ता सीतेव साध्वीप्रवरगुण-गणैरेतयोः पुत्र आसीत्।।
दाता भोक्ता गुणाढ्यो निजकुल तिलकः संघपेन्दुः स्वसुर्ज्जुः।
ख्यातो होलाभिधानो जिन गुरुपदयोः सेवको राजमान्यः।। 1।।

ग्रन्थं भविष्यदत्तस्य लिखाप्यादरतो धनैः।
साधु होलाभिधो ज्ञाय ददौ खिमश्रीवर्णिने।। 2।।

आचार्यश्री हेमकीर्ति तत्सीष्य ब्रह्म मेघराज।
ली पोथी दोसी मण्डण तत्पुत्र ब्र० मेघराज।।

(वि०) सं० 1607 वर्ष में चैत्रशुक्ला पञ्चमी रविवार के दिन श्रीमूलसंघ में सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण नन्दी आम्नाय में श्री **कुन्दकुन्दाचार्य** की परम्परा में भट्टारक श्री **पद्मनन्दीदेव** हुए। उनके पट्ट पर भ० **श्रीसकलकीर्ति** देव हुए। उनके पट्ट पर भ० **श्रीभुवनकीर्ति** देव हुए। उनके पट्ट पर भ० श्री **ज्ञानभूषण** हुए। उनके गुरुभ्राता स्थविराचार्य **श्रीरत्नकीर्ति** हुए।

उनके शिष्य आचार्यश्री **देवकीर्ति** हुए। उनके शिष्य आचार्यश्री **शीलभूषण** हुए। उनके शिष्य ब्रह्म० **क्षेम** के लिए—

खण्डेलवाल वंश, लुहाड़िया-गोत्र में उत्पन्न सा० देदा भार्या दामा — तीन पुत्र — सा० नाथू-भार्या नाल्ही, सा० देवराज-भार्या वील्हा, सा० बोहिथ भार्या तोल्ही, सा० नाथूसुत सा० कोल्हा भार्या दामू, सा० देवराज सुत सा० होला-भार्या मोल्ही, द्वितीय-भार्या लाछी, सा० कोल्हा-पुत्रौ द्वौ-सा० हीरा भार्या रत्ना सा० पदारथ भार्या पद्मा।। छ।।

उक्त परम्परा में देवराज सद्गुणों का भण्डार था। उसकी पत्नी वील्हा थी। वह सीता साध्वी के समान उत्तम गुणों से सुशोभित थी। इन दोनों के एक पुत्र हुआ जो दान-दाता था, भोक्ता था, गुणों से परिपूर्ण था और अपने कुल का तिलक था। उसका नाम था संघपति चन्द्र। सा० सुर्ज्जु (सूरज) नाम से प्रसिद्ध था। उसका होला नाम था। वह होला जिन-गुरु चरणों का भक्त था, गुरुजनों का सेवक था। वह राजमान्य भी था।।। 1।।

प्रस्तुत भविष्यदत्त-चरित-ग्रन्थ लिखवाकर आदरपूर्वक धन दान देकर साहू होला ने उसे ज्ञानी श्री खिम (क्षेम) श्रीवर्णी को भेंट कर दिया।। 2।।

आचार्य श्री हेमकीर्ति तत्शिष्य ब्रह्म० मेघराज की पुस्तक है। दोसी भण्डण उनके पुत्र ब्रह्म० मेघराज थे।

□□



शब्दानुक्रमणिका

अपरसूरि = परवर्ती आचार्य–15/52/4
अपश्यांस्तां = बन्धुदत्तादि को न देखकर (वह भविष्यदत्त)–2/111/1
अभाषितं = लिखा है (आगमों में)–12/27/2
अभिषिक्त = अभिषेक किया गया–9/42/2
अभ्यर्ण = मन में प्रेम–भाव धारण कर–3/103/1
अभ्यर्ण = समीपवर्ती–5/38/1
अभ्युपेता = स्वीकार (प्रस्ताव) किया–2/51/2
अरिपुर = अरिपुर नामका नगर–12/70/1
अलक्ष = अलक्ष नामका देश–11/29/1
अवधि = अवधिज्ञान–12/23/1, 13/68/2
अविज्ञातेन = अज्ञात क्रम से–2/14/1
अविश्रान्त = निरन्तर–2/3/2
असुर = राक्षस, दानव–3/85/2
अशनिवेग = इस नामका एक असुर–3/95/1, 13/11/2
अशोक = अशोक नामका वृक्ष–9/10/1, 11/57/1
अष्टविधा = आठ प्रकार (की पूजा)–1/77/1
अष्टादश = अठारह प्रकार के दोष–रहित सम्यकत्व–12/8/2
अष्टाविंशति = अट्ठाइस–मूलगुण–13/55/1
अष्टान्हिका = एक जैन पर्व–13/76/1
अर्हत् = अरिहन्त देव–9/48/2
अहिंसा = अहिंसा–8/66/1
अहीन = सर्पों से–5/95/1
आचमन = आचमन–3/66/2
आतंक = आतंक–6/37/2
आर्त्त = इस नाम का एक ध्यान–11/40/1
आदेशात्तक = आदेशपाते ही तत्काल–5/18/1
आदित्य = सूर्य–1/14/2
आनत = आनत नामका स्वर्ग–11/52/9
आनन = मुख–1/106/2
आन्ध्र = आन्ध्र–प्रदेश–8/34/2
आपण = बाजार–6/79/2
आपृच्छ = पूछकर–7/61/1

आमला = विमल, निर्मल–1/62/2,1/62/2
आम्र = आम (वृक्ष,फल)–9/52/1, 15/43/1
आदेशात्मक = आदेश पाते ही–5/78/1
आरार्त्तिक = आरती उतारना–9/51/2
आलान = हाथी को बाँधने का खूँटा–2/25/2
आश्रव = आश्रव–तत्व–12/10/1
इन्द्र = इन्द्र, देवेन्द्र–1/1/2
ईंधन = अग्नि के साधन–2/91/1
ईक्षन्ते = एक दूसरे की ओर देखना–2/106/1
ईति = एक प्रकार का रोग–1/18/1
ईप्सिते = इच्छित–3/35/2
उद्घाटित = उघाड़ना, खोलना–3/60/2
उत्सारितः = दूर हटा देना–6/29/2
उत्तरस्यां = उत्तर दिशा में–3/51/2
उदुम्बर = उदुम्बर जाति के फ़ल–12/53/2
उद्धत = हठी–3/95/2
उद्ग्रीवा = गर्दन ऊपर उठाकर–9/34/1
उद्यापन = व्रत–समापन–4/56/2
उपकण्ठ = समीप, किनारा–5/36/1, 10/110/1
उपसर्ग = विघ्न, उत्पात–1/4/1
उपार्जयति = अर्जन करता है–8/89/1
उपाध्याय = शिक्षा देने वाला गुरु–2/20/2
उपायनं = उपहार (Gift) –7/21/1
उपासक = उपासक, साधक–1/28/2
उपासकाचार = श्रावकाचार–1/10/2
उद्ध्वीकृतकरा = ऊपर की ओर हाथ उठाकर–8/43/1
ऋक्षयानुसार = ऋक्ष–नक्षत्र के अनुसार–2/95/1
एकजटा = एकजटा नामका पुत्र–10/95/2
एकादशांग = ग्यारह अंगागम–12/57/1
ऐरावत = ऐरावत–हाथी–12/69/2
ऐहिकम् = ऐहलौकिक–1/54/2
कंज = कमल–पुष्प–14/34/2

कच्चोलकः = कटोरा–3/75/1
कंजशोभा = कमल शोभा–2/7/2
कदली = केला–14/26/2
कदलीगर्भ = केले के वृक्ष की जड़–10/67/2
कर्दमा = कीचड़–1/3/2
कन्दर्प = कामदेव–2/8/2
कन्दल = कमलपुष्प की नाल–1/16/2
कपोल = गाल–4/12/1
कर्पूर = कपूर–9/82/2
कमलप्रिया = कमलश्री (भविष्यदत्त की माता)–1/68/1, 1/76/1, 3/2/4, 3/44/2, 5/30/2,6/54/1
कमलश्री = कमलश्री नामकी कन्या–14/12/1
कमलश्रीशरीरजम् = कमलश्री का पुत्र–भविष्यदत्त–5/61/1
कमलाकर = कमलों का सरोवर–4/88/2
कमलानन = कमलनयन–1/125/1
कमलानना = कमलमुखी–4/13/1
कम्पिला = कम्पिला नगरी–10/6/1
करंड = डिब्बा–9/82/2
करतल = हथेली–2/19/2
करद = कर (टैक्स) देने वाला पराजित राजा–11/29/1
करपीड़न = पाणिग्रहण–8/42/2
करीन्द्र = हाथी–3/1/9
कर्णपेशल = कर्ण कोमल (वचन)–6/109/1
कम्र = उत्तम वस्त्र–8/40/2
कलनै स्वानै = मधुर शब्दों द्वारा स्तुति करने के कारण–1/87/2
कलभ = हथिनी का बच्चा–4/10/1
कलायाः = कला–समूह–1/69/2
कलिंग = कलिंग देश (वर्तमान उड़ीसा)–11/12/1
कलिती = सहित–4/86/2
कल्पद्रुम = कल्पवृक्ष–1/47/1
कल्प–पादप = कल्पवृक्ष–14/25/2
कविकण्ठाभूषा = कविकण्ठालंकार–15/22/1, 15/52/1

कषाय = कषाय–आत्मा का कलुषित भाव–14 / 84 / 1
काकिनी = लेखनी, कौंड़ी–3 / 49 / 2
कांचनद्वीप = काँचनद्वीप–2 / 33 / 1, 5 / 39 / 2
काण्डाधारा विचक्षणः=पतवार धारी कुशल नाविक–2 / 89 / 2
कार्त्तस्वरमय = स्वर्ण–निर्मित–3 / 52 / 2
कार्त्तस्वराम्भोह = स्वर्ण–कमल–9 / 89 / 1
कार्त्तस्वरास्तम्भ = स्वर्ण–स्तम्भ–8 / 38 / 2
कार्त्तिक = कार्त्तिक–मास–4 / 46 / 1
कानन = वन–3 / 91 / 1
कान्तया = कान्ति से–1 / 50 / 1
कान्ता = प्रियतमा (भविष्यानुरूपा)–5 / 101 / 2, 6 / 105 / 2
काम–क्रीड़ा = विषय–वासना–1 / 82 / 1
काम–सोख्य = काम जन्य सुख–4 / 81 / 1
कम्पिला = कम्पिला–नगरी–10 / 6 / 2
काय = काय–गुप्ति (पारिभाषिक दार्शनिक शब्द)–12 / 36 / 2
कारागार = कैदखाना–8 / 25 / 1
कालोपधान = (पारिभाषिक–शब्द) अष्टांग का एक भेद–12 / 30 / 2
किं = क्या है–2 / 53 / 1
किन्नर = किन्नर जाति का देव–1 / 34 / 2
किन्नरी = किन्नर जाति की देवी–6 / 69 / 2
कीर्त्तिसेना = कीर्त्तिसेना नामकी, राजा वज्रसेन की पुत्री–12 / 72 / 2
कीर = तोता–11 / 12 / 1
कुक्कुट = मुर्गा–12 / 49 / 2
कुंजर = श्रेष्ठ हाथी–14 / 39 / 1
कुधी = कुबुद्धि–10 / 43 / 2
कुन्ताग्र = कुन्ताग्र–एक प्रकार का तीक्ष्ण–शस्त्र–15 / 20 / 2
कुप्यन्ति = क्रोधित होते हैं–1 / 99 / 1
कुमारिका = कुमारी, अविवाहित कन्या–4 / 18 / 1
कुमुद = कमलिनी–6 / 104 / 1, 6 / 106 / 2, 9 / 48 / 1
कुरुजांगल = इस नामका एक ऐतिहासिक देश–1 / 15 / 2, 5 / 28 / 1
कुलक्रमं = कुल–वंश परम्परा–1 / 123 / 2

कुलाधार = कुल का आधार–1/117/2

कुवस्त्रा = कुत्सित, मलिन–वस्त्र धारी–7/5/1

कुसुम = पुष्प–9/53/1

कूप = कुआँ–3/11/1

कूपारे = समुद्र के पार–3/97/2

कृच्छ्रतः = दुख भोगता हुआ–10/92/1

कृताटोपै = बाह्याडम्बर रखने वालों से–5/64/1

कृतार्थता = कृतार्थ होना–6/61/2

कृशांगो = कृश काय वाला–11/61/2

कृशोदरी = कृश–क्षीण–उदर, कमर वाली–1/111/1

केकी = मयूर–11/51/1

केवलज्ञान = (पारिभाषिक शब्द)–तीनों लोकों को एक साथ जानने वाला ज्ञान–3/30/1,15/33/2

केशापनयनं = क़ेशों को हटाकर–10/78/2

कैवर्त = खेवटिया, पोतचालक, मल्लाह–2/94/1

कोकिल = कोयल–9/77/1, 11/53/1

कोट्योऽष्टादश = अठारह करोड़ घोड़े–14/6/1

कोप = क्रोध–1/105/2

कोश = खजाना–8/65/2

कौटिल्य = कुटिलता का भाव–5/52/2

कौतुक = कुतूहल, विस्मय, आश्चर्य–2/54/2, 3/50/2

कौशिक = कौशिक नामका एक तपस्वी–12/102/1

क्रमाम्भोज = चरण–कमल–11/52/2

क्रीड़ा = क्रीड़ा–2/12/1

क्रूर = निर्दयी–2/63/2, 2/75/2, 3/97/2

क्रूरात्मा = क्रूर स्वभाव वाला–6/74/1

क्वणित = कण–कण की आवाज (ध्वन्यात्मक)–5/41/2

खगामिना = गगनचर, आकाश में चलने वाला विद्याधर–9/40/1

खगेन्द्र = विद्याधर–9/88/2

खण्डचन्द्राभ = चन्द्रखण्ड की आभा–2/57/2

खनन्ति = खोदना, कुरेदना–1/35/2,3/64/2

खस = खस–देश (पिछड़ी जातियों का देश)–11/12/1

खिद्यमान = खिन्न होते हुए–2/109/2
खिन्न = उदास, दुखी–6/43/2
खेचर–खेट = गगनचर (मनोवेग विद्याधर)–9/55/2,10/3/2,10/8/1
खुराग्र = घोड़े के खुर का अग्रभाग–1/35/2
गज = हाथी–1/36/1
गणना = गणना–6/44/1
गतैनस = निर्दोष–9/51/2
गन्धर्व = गन्धर्व नगर–14/3/2
गन्धर्वसेन = गन्धर्वसेन नामका राजा–14/4/1
गरु = अगरु–9/52/1
गलित = खिसकना–6/16/1
गवाँ = बैल–1/24/2
गान्धारी = गान्धारी नामकी रानी–14/11/2
गावस्तर्णक = गायों के बछड़ों के साथ–13/17/1
गीयन्ते = गाना गाते हुए–2/31/1
गीर्वाण = देव–8/6/2
गुणमंजर्या = गुणशालिनी–5/13/1
गुप्ति = मन–वचन–काय का संयमन–11/39/2
गुह्यं = गोपनीय–1/40/2
गुहाद्वार = गुफाद्वार– 3/10/1
गूर्जरा = गुर्जर–देश गुजरात–11/11/2
गृह = घर–3/55/2
गोविन्दार्जुन = कृष्ण एवं अर्जुन–11/33/2
गौ = गाय–1/29/2
गौरी = पार्वती–2/82/2
ग्रन्थि = गाँठ–2/81/1
ग्रह = ग्रह–नक्षत्र–1/103/2
ग्रीष्म = गर्म–ऋतु–4/7/1
घटाटोप = समूह–भीड़–14/31/2
घातिकर्म = चतुर्विध घातिया–कर्म–15/33/2
घृत = घी–13/7/2

क्षणमात्रमपि = क्षण मात्र भी–1/97/1
क्षमा = क्षमाधर्म–6/31/1
क्षमा = पृथिवी–11/45/2
क्षायिक = क्षायिक–सम्यक्त्व–12/13/1, 12/18/1
क्षुत = भूख–2/43/2
क्षुद्रघण्टा = छोटी–छोटी घण्टिया–5/41/2
क्षुभ्यति = क्षुब्धहुआ–8/54/1
क्षुल्लक = क्षुल्लक–साधक–10/20/2
क्षेत्रपालिनी = खेतों की रक्षा करने वाली रमणी–1/17/1
ज्ञानदृष्टि = ज्ञान रूप दृष्टि वाले–4/75/1
च+अमित = अपरिमित–2/98/2
च+अशेत = न सोती थी–4/9/2
चंचला = चंचला, लहराने वाले–2/94/2
चक्रसार = चक्रवाक पक्षी–3/12/1
चक्री = चक्रवर्ती राजा गन्धर्वसेन–14/19/2
चक्रेश = चक्रवर्ती सम्राट–12/61/1
चक्षु = नेत्र–14/33/2
चचाल = चला–8/62/2
चतुःकोण = चार कोने वाला–8/39/2
चतुर्दश = चौदह–14/82/1
चतुर्विध = चार प्रकार के पुरुषार्थ–2/33/2
चन्दन = चन्दन–3/114/1,9/53/1,11/59/2
चन्द्र = चन्द्रमा–1/14/2
चन्द्रप्रभ = चन्द्रप्रभ तीर्थंकर–1/2/1,3/123/1
चन्द्रांशु = चाँदनी–1/36/3
चम्पक = चम्पक वृक्ष–9/68/1
चरित्र = तेरह प्रकार का चारित्र–12/37/1,12/45/1
चरित्राचार = चारित्राचार–12/39/2
चाप = धनुष–13/63/2
चित्रलेपोपला = चित्र–कर्म लेखन साधन–14/69/1
चिरं = चिरकाल–3/42/2
चिरोपात्त = चिरकालीन प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ–9/34/2

चीर्ण = तपस्या से क्षीण–8/86/2
चूत = आम्र–वृक्ष, फल–9/71/1
चूर्णि = चूर–चूर करना–11/67/1
चेदि = इस नामका देश–11/11/12
चैत्यालय = चैत्यालय–1/27/1
छेदोपस्थापना = एक प्रकार का चारित्र पारिभाषिक शब्द–12/41/2
जगदांगि = जगत के प्राणी–10/68/2
जटाजूट = जटाजूट धारी साधु–12/102/2
जडाशया = मूर्ख–14/75/1
जनक = पिता–2/9/1
जनवल्लभ = जनप्रिय–5/63/2 जम्बूमति = जम्बूद्वीप–12/69/1
जम्बूवृक्ष = जामुन का वृक्ष–1/14/1
जयनन्दन = नामके मुनिराज–10/2/1
जलपंत = बड़बड़ाता हुआ–3/100/1
जलमार्ग = जलमार्ग–3/7/2
जल्पना = बड़बड़ना–2/53/1
जहार = चुराना, हरण कर लेना–2/23/1, 12/87/1
जानुदयता = मन्त्री वज्रसेन की पत्नी का नाम–12/72/1
जामाता = दामाद–8/44/1
जिननायक = जिनेन्द्र–द्रेव–3/24/1
जिह्वा = जीभ–3/24/1
जैन=जैन धर्म,जाति–1/79/1
जैनगृहं–जैनगृह (जैन–मन्दिर)–1/38/1
ज्वलदग्नौ–जलती हुई अग्नि में–6/84/2
ज्वाला–ज्वाला–5/56/2
ढौकितम्=ढो–ढोकर चढाया–5/78/2
तकै=तभी, उसी समय 5/36/2, 6/57/2
तच्छिर=उसका सिर–15/20/1
तडित्=बिजली–13/18/1
तर्णक=नवजात गो–वत्स–1/129/2
तती=पंक्ति, जोड़ी–9/79/1

तन्वंगया=वह तन्वंगी, सुन्दर अंग–प्रत्यंग वाली–6/13/1
तनुभुवा=पुत्र–6/70/1
तन्दुल–चाँवल, अक्षत–9/47/1
तन्वी=कृशांगी–4/6/2, 6/2/1
तपा–तपाने वाली धूप–2/43/2
तप्त–गर्म, तपा हुआ–15/21/2
तरंग=लहर–11/35/2
तरसा=तत्काल, तीव्र गति से–2/32/2
त्वदंघ्रिद्वयं=आपके दोनों चरण–9/59/1
तवाग्रे=आपके आगे–2/73/2
ताडन=ताड़ित करना–15/25/2
तात्=पिता–2/71/1
तापस=तपस्वी–3/106/1
ताम्बूल=पान–3/77/2, 5/74/1
तारका=तारा–गण–1/63/2
ताराच्छत्रा=ताराच्छत्र(–तीन)–4/59/2
ताराधिपति=तारा–समूह का स्वामी–चन्द्रमा–2/61/1
तार्कुकेभ्यः =याचकों के लिये–1/86/1
तार्णक–संस्तर–घास–फूस की शैया, विस्तर–4/51/2
तिरश्चामिव=तिर्यच–पशु–पशियों के समान–8/93/2
तिलकाख्यपुरं=तिलकपुर नामका नगर–9/14/2, 9/13/1
तिग्मगोः=दोपहर कालीन सूर्य–मण्डल–8/60/1
तुर्यवर्ग=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप चार पुरुषार्थ–11/27/2
तुरग=घोड़ा–1/35/1
तुरंगा=घोडे–11/72/2
तुरुष्कधूप=तगर धूप–7/52/1
तुषविनिर्मुक्त सूपं=छिलका रहित दाल–3/75/2
तूर्ण=जल–पोत–2/111/1
तूर्य=वाद्य–विशेष–11/7/1
तेजोभिरुग्रैः=सूर्य अपनी तेज किरणों के द्वारा–2/127/2
तोरण–बन्दनवार–1/31/2, 3/19/2
त्वदंगजा=तुम्हारे अंगों से उत्पन्न अर्थात् पुत्री–1/119/1

त्विषा=उज्ज्वलता–6/113/2
त्रयस्त्रिंशन्नदीशिनः=तेतीस सागर की आयु–15/22/2
त्रस=त्रसजीव–2/4/2
त्रास–दुख, कष्ट–15/25/2
त्रिजगन्नाथ–तीनों लोकों के स्वामी–1/1/1, 9/56/2
त्रिदशा–देव–गण–1/69/2
त्रिलोकाधिपति=तीनों लोकों के अधिपति–3/33/1
त्रिवेदी=त्रिवेदी नामकी वासव–ब्राह्मण की पुत्री–10/11/1
दग्ध्वा=जलाकर–15/39/2
दण्ड–दण्डनीति–1/50/2
दधि–दही–2/88/2
दयाधिष्ठित=दयायुक्त–6/100/1
दशधा–धर्म=उत्तमक्षमादि दशधर्म–11/44/1
दशभिद्विगुणा=दश का दुगना अर्थात्–बीस–6/57/2
दर्शनाचार–पाँच प्रकार के आचारों में से दूसरा भेद–12/38/2
दायादो=पिता की सम्पत्ति का हिस्सेदार–2/103/2
द्विरद=हाथी–9/74/2
द्वीप–समुद्री टापू का नगर–2/61/2, 3/38/2, 5/66/1
दुर्ग=किला–8/47/2
दुर्ग=दुर्गम, कठिन–10/108/1
दुर्दन्ति=प्रचण्ड हाथी–11/36/1
दुर्द्धिया=दुर्बुद्धि–5/63/1
दुर्धरोद्दाम=दुर्दमनीय–6/25/1
दुर्भिक्ष–दुर्भिक्ष–1/20/1
दुर्मना–उदास मन–7/5/2
दुरात्मा=कलुषित आत्मा–2/103/2
दुर्वचो=दुर्वचन–10/15/1, 15/26/1
दुर्वाक–दुर्वाक नामका ब्राह्मण–पुत्र–10/10/2
दुर्वात्–झंझावात–2/93/2
दुर्व्यसन–बुरे व्यसन–10/35/2
दुष्कृत=पाप–5/70/1

दूर्वा=दूब–2/88/2
दौहृद–गर्भकालिक इच्छाएँ–9/8/1
द्रवन्ति–द्रवीभूत–1/137/2
द्रविड=द्रविड–देश–11/11/2
धनदत्त=हस्तिनापुर का एक वणिक्–2/2/2, 12/74/1
धनपति–हस्तिनापुर का नगर सेठ एवं कमलश्री का पति–1/58/2, 3/5/1, 3/76/2, 5/29/2
धनभद्रा=धनदत्त की पत्नी–12/74/2
धनमित्र=धनदत्त का पुत्र–3/34/1, 12/74/2
धनेश्वर–कमलश्री का पिता–1/68/2, 4/38/1
धरणीधर=भविष्यदत्त का पुत्र–11/21/2
धारणी=राजा प्रभंजन की महारानी–12/71/1
धुन्वन्तः=धुनते हुए–2/106/2
ध्यान=आर्त्त–रौद्र आदि चार प्रकार के ध्यान–11/40/1
ध्वजा=समुद्री पोत–ध्वज–2/91/2
नक्र–चक्र=मगर–मच्छ घड़ियाल आदि–2/44/1
नदीनाथ=समुद्र–9/74/2
नद्धा–ध्वजा=समुद्री पोत पर ध्वजा एवं पाल बाँधना–2/90/2
नघूष–नामका राजा–15/9/1, 15/38/2
नन्दन–पुत्र भविष्यदत्त–3/2/4
नन्दिदत्त–अरिपुर नगर का वणिक्–12/75/1
नन्दिभद्रा=नन्दिदत्त की पत्नी–12/75/2
नन्दिमित्र=नन्दिदत्त का पुत्र–12/75/2
नन्दीश्वर–द्वीप=इस नामका एक द्वीप–13/75/1
नप्तृ=नाती, पुत्री का पुत्र–10/72/1
नभस्तिलक=एक नगर का नाम–9/21/1, 10/85/2
नभश्चर–गगनचारी (मनोवेग विद्याधर)–9/20/1
नभोगामी=देवगण (गगनचर)–12/106/1
नरेन्द्र–मन्दिर=राजभवन–8/38/2
नवकोटि=नौ प्रकार के–1/77/2, 12/82/1
नवाम्बुदं=नवीन मेघ–1/73/1, 2/85/2
नवाम्भोजरज=नव–कमल–गन्ध–पराग–3/11/2

नाग–नागराज, शेषनाग–9/87/1
नागमुद्रा–भविष्यदत्त की अत्यन्त प्रिय वस्तु–5/81/1
नागबल्ली=भविष्यानुरूपा की प्रिया लता का नाम–9/77/1
नागसेना=भविष्यानुरूपा की माता–3/83/2, 13/21/1
नागेन्द्र=इस कोटि के देव–9/90/1
नानानोकहसम्भूतं=नाना प्रकार के अनकहे, अपरिचित वृक्षों से उत्पन्न फल–2/98/2
नानायोनि–विभिन्न प्रकार की जन्म वाली योनियाँ–10/92/1
नारंग=संतरा–फल–9/53/1
निर्ग्रन्थ=ग्रन्थि रहित–12/8/2, 14/78/2
निर्जरा=इस नामका तत्व–12/9/2, 12/10/1
निरुद्यम=उद्यम रहित, पुरुषार्थ रहित–2/32/2
निर्झर=झरना–2/125/1, 14/59/1
निर्यामक=जल–पोत संचालक–2/90/1
निशंका=सम्यक्त्व का अंग–12/21/1
निशाकर=चन्द्रमा–3/37/2
नीरधि=अगाध समुद्र–1/63/2, 2/44/2
नृपवेश्म=राजभवन–7/8/2
नैमित्तिक=दैवज्ञ–10/17/2
न्यग्रोध=वटवृक्ष 9/73/1, 9/74/1
पक्षी–संघा=पक्षी–समूह–2/138/3
पंचमी=पंचमी–तिथि–4/46/2, 8/82/1
पंचाश्रव=पाँच प्रकार के आश्रव–14/80/1
पटह=एक प्रकार का पटपट बजने वाला बाजा–2/55/1, 6/99/2
पटीयस=विचार शील–2/18/2
पद्मकिंजल्क=कमलकेशर–1/25/1
पद्मकोश=कमल–कोश–7/1/1
पद्माकर=कमल सरोवर–1/16/1, 1/83/2, 9/4/2
पद्मिनी=कमलिनी–4/6/2
पपात=गिरा–6/55/1
पयोवाह=मेघ–10/21/2
पयोराशि=समुद्र–1/51/1

परिच्छद=परिग्रह, आडम्बर–11/72/2
परिपूरित=भरा हुआ–2/68/1
परिरम्भन=आलिंगन–3/120/1, 5/99/1
परिशब्दिता=बुलवाया, निमन्त्रित किया–7/41/1
पल्लव=एक देश का नाम–10/6/1
परिस्थाप्य = स्थापित करके–2/90/2
परिहार–विशुद्धि =व्रताचार में लगें दोष की शुद्धि करना–12/41/2
पाणिका=महिलाएँ, सन्नारियाँ–2/17/2
पान्थ=पथिक–1/17/2
पालिनी=प्याऊ–घरों में सेवा करने वाली बालाएँ–1/17/2
पारदारिका=परस्त्री में आसक्त व्यक्ति–6/29/1
पारस=पारस–देश (वर्तमान फारस देश)–11/28/2
पिण्डीद्रुम=अशोक वृक्ष, मदन वृक्ष–9/70/1
पितुरभ्यर्ण=पिता के सम्मुख–2/36/2
पिशाच=पिशाच असुर, राक्षस–2/131/2
पीत=पान करना–5/12/2
पुण्ड्र=पौंडा, गन्ना–1/26/1
पोत=समुद्री–यान–2/92/2, 6/48/1
प्रक्षेपक=दृश्यनाटक–2/46/2
प्रणश्यन्तं=पलायन करते हुए, भागते हुए–2/121/1
प्रथमांगना–प्रथम पत्नी–2/12/2
प्रथित–प्रसिद्ध–5/30/2
प्रभंजन=झंझावत, समुद्री तूफान–2/95/2
प्रभंजन=इस नामका अरिपुर नगर का राजा–12/70/2
प्रभाचूल=इस नामका एक देव (भविष्यदत्त की माता के पूर्वभव का जीव)–13/62/2
प्रमदोद्यान=प्रमद नामका विशिष्ट उद्यान–11/47/2
प्रयाति=व्यतीत हो रहा है–8/93/2
प्रविमद्य=रगड़–रगड़ कर–14/65/1
प्रहितो–भेजा (सन्देश लेकर)–10/30/1
प्राभृत=उपहार (Gift)–9/18/1
प्रीणित=सुखद, प्रमुदित–1/88/1, 11/75/2
फणीन्द्र=शेषनाग, सर्पराज–1/45/1

फणीश्वर=नागेन्द्र–12/61/1
बंग=बंग–देश (आधुनिक बंगाल)–11/12/1
बदरा=बेर–9/53/1
बन्ध=बन्ध तत्व (पारिभाषिक शब्द)–12/9/2
बन्धुदत्त–इस नामका खलनायक–2/18/2, 2/102/2, 2/103/1, 2/113/2, 6/35/2, 7/4/1, 8/2/2
बन्ध्या=बाँझ (महिला)–4/18/2
बिल्व=बेल वृक्ष, फल–9/53/1
भगदत्त=भविष्यानुरूपा के पिता–3/83/1
भरत=भरत क्षेत्र–1/15/1, 5/28/1, 10/6/1
भरत=ऋषभ पुत्र–11/77/3
भविष्यदत्त=चरित नायक–1/12/2, 1/89/2, 2/11/1, 2/108/2, 4/91/4, 5/30/2
भविष्यानुरूपा=भविष्यदत्त की पत्नी–3/40/1, 5/2/1, 13/29/2
भर्मभंगार=स्वर्ण की झारी–9/46/1
भाण्ड=गृहस्थ की सामग्री, पात्र, बर्तन–5/78/2, 6/49/1, 12/16/1
भुजंग=सर्प–5/81/1, 5/101/1
भुजंगी=सर्पिणी–1/96/2
भूत–भूत–2/131/2
भूपाल=इस नामका राजा–1/46/2, 1/57/2, 3/41/2, 5/29/1, 11/21/1
भूरुहावलि=वृक्ष–समूह–2/93/2
भूसुर=इस नामका ब्राह्मण–10/75/1
भेरी=एक विशेष वाद्य–11/64/1
मठस्थ=मठ में रहने वाला कौशिक नामका तापस–13/3/2
मणिभद्र=इस नामका एक यक्ष–6/87/1, 10/99/2, 11/30/1
मतिज्ञान=मतिज्ञान (पारिभाषिक शब्द)–12/23/1
मदन=मदन नामका एक द्वीप–2/96/2, 11/28/1, 13/12/2
मदाष्टक=आठ प्रकार के मद–11/41/2
मद्य=मदिरा, शराब–15/18/1
मधु=शहद–14/34/2
मनःपर्यय ज्ञान= इस नामका ज्ञान (पारिभाषिक शब्द)–1/96/1, 12/23/2

मनोवाक्काय =मन, वचन काय रूप त्रियोग–11/39/2

मनोवेग=इस नामका वायुवेग का पुत्र–10/87/1

मनोवेग=इस नामका एक विद्याधर–9/20/2

मनोहरा=बिधना की पत्नी–10/96/2

मन्दार=पुष्प–विशेष–9/48/1

महाजन=नगर के समृद्ध प्रतिष्ठित जन–11/4/1

महानन्द=कम्पिलापुरी का राजा–10/7/2

महाव्रत=महामुनियों के अहिंसा आदि पाँच महाव्रत (पारिभाषिक शब्द)–11/38/2

महाशुक्र=इस नामका स्वर्ग–13/59/2

महीपति=नद्यूष नामका राजेन्द्र–15/12/2

मातंग, मातुंगा=गजराज, श्रेष्ठ हाथी–2/16/2, 11/72/1

मागध=मगध का–11/12/2

मूषिक=चूहा–15/40/2

मृग=हिरण–2/121/1

मृगाधिप=सिंहराज–11/36/2

मृदंग=इस नामका विशेष वाद्य–6/80/2

मोच=केला–9/52/1

मोहन=मोहिनी–विद्या–6/112/1

म्लेच्छ=एक जाति–विशेष–2/112/1

यक्षांग–कर्मद=एक सुगन्धित वृक्ष–विशेष–9/74/1

यथाख्यात चारित्र=चारित्र–विशेष (जैन पारिभाषिक शब्द)–12/42/1

यशोधन–इस नामका तिलकपुर का राजा–13/23/1

यान=समुद्री जहाज–5/78/2

योग=ध्यान–योग–12/104/2

रजो=रजोगुण–1/7/2

रतीश=कामदेव–1/80/2

रत्नचूल=इस नामका देव–14/16/1

रत्नपात्र=रत्नों के वर्तन–7/8/1

रम्भागृह=कदलीगृह–9/75/1

रविप्रभ=इस नामका देव–10/81/1

राक्षस=राक्षस–2/131/2

राजविद्या=राजनीति सम्बन्धी विद्या–1/48/1

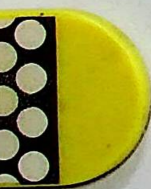
वाष्पवारि=अश्रुजल–1/123/2
वाष्पाम्भ=अश्रुजल–2/68/1
विजयार्द्ध=इस नामका विशाल पर्वत–10/85/1
विडाल=बिल्ली–12/49/2
विडाल–बिल्ली–12/49/2
वितान=चन्दोवा–4/59/20
विदिक्षु=विदिशा में–11/55/1
विदेह=विदेह क्षेत्र (जैन भौगोलिक शब्द)–14/2/2
विद्याधर=गगनगामिनी–विद्या–सिद्ध देव–3/6/1
विद्युत्प्रभ=इस नामका एक शक्र–3/33/2
विमलबुद्धि =कम्पिला (पल्लवदेशान्तर्गत) के राजा महानन्दन का मंत्री–10/8/2
वेत्रलता=बेंत की छड़ी–8/52/1
वेश्या=वेश्या–10/36/1
व्रज (ब्रज)=समूह–6/68/2
शक्र=इन्द्र–3/120/2, 12/61/1
शक्तित्रय=उत्साह, मन्त्र एवं प्रभुत्व–शक्ति रूप तीन शक्तियाँ–8/58/1
शकुन्त=पक्षी विशेष, पक्षी–समूह–10/71/1
शठकठ=इस नामका एक शक्तिशाली व्यक्ति और मंत्री वज्रसेन की पुत्री कीर्त्तिसेना का पति–12/73/1
शयु:=महान् अजगर–सर्प–10/92/2
शरच्चन्द्र=शरद्‌कालीन शुभ्र चन्द्र–3/82/2
शरभ=जंगली जानवर–5/95/1
शशिप्रभदेव=सुवाक् विप्र का पूर्वजन्म का जीव–10/81/2
शाखामृग=बन्दर–2/123/1
शारदाभ्र=शरत्कालीन मेघ–10/68/2
शार्दूल=सिंहराज–14/54/1
शिखि=मयूर–9/72/1
शिलातल, शिलापृष्ठ=विशाल चट्‌टान–2/19/4, 2/125/2, 10/2/2
शिल्प–कर्म=पाषाण–मूर्ति आदि सम्बन्धी शिल्प–कर्म–14/69/1
शिवमन्दिर=शिवमन्दिर, कल्याण स्थान–3/29/2, 10/77/2
शिविका=पालकी–8/48/1
शिशिरंगु=चन्द्रमा–2/132/4

शीतगो=चन्द्रमा–7/92/2
शुक्र=शुक्राचार्य–1/50/1
शूकर=सुअर–2/121/2
शूल=तीक्ष्ण शस्त्र–13/21/1
शैलापगा=पर्वतीय नदी–4/7/1
श्मश्रू=ठुड्डी, दाढी–5/51/2
श्वश्रू=सास, सासु माँ–9/6/2
श्रीकरेणु=लक्ष्मी रूपी हथिनी–2/25/2
श्रीखण्ड=श्रीखण्ड–चन्दन–9/47/2
श्रीधर=इस नामके निर्ग्रन्थ साधु–14/77/1
श्रीनिवास=कम्पिला के राजा महानन्दन के दुर्ग का नाम–10/7/1
श्रीवर्द्धन=राजा वसुन्धर का पुत्र–14/15/2
श्रुतपंचमी–पर्व=एक विशेष–पर्व–4/42/1
षटपद=भ्रमर–1/22/1, 9/7/1
षडजीव=छह प्रकार के जीव–14/80/2
संकाश=सदृश–11/40/2
संभव=उत्पन्न–10/8/2
संवर=इस नामका तत्व (पारिभाषिक शब्द)–12/9/2
सधवा=सौभाग्यवती नारी–10/106/1
सप्ततत्व=जीवाजीवादि सात तत्व–10/80/1
सभाण्डा=व्यापारिक सामग्रियों के साथ–2/78/2
समवादिसृतिद्वार=समवशरण का द्वार–8/54/1
समाधिगुप्त=इस नामके महामुनि–12/82/2, 12/105/1
समेति=लौटा है–10/10/2
सम्यक्त्व=जैन–दर्शन का पारिभाषिक शब्द–5/106/2, 12/6/2
सम्यग्दर्शन=जैन–दर्शन का पारिभाषिक शब्द–12/5/2
सर्वविद्=सर्वज्ञ–10/67/2
सल्लेखना=शास्त्रोक्त पद्धति से शुभ ध्यान पूर्वक मरण–3/42/1
सहस्राक्ष=हजारनेत्र वाला, इन्द्र–4/81/2
साधितः=वश में कर लिये, जीत लिये–11/28/1
सारस=इस नामका पक्षी–3/12/1

सुकेशी=वासव ब्राह्मण की प्रियतमा–10/9/2, 10/79/2
सुदर्शन=इस नामका दैवज्ञ क्षुल्लक–10/20/2, 12/21/1
सुनाशीर=इन्द्र–1/51/2, 4/89/1, 9/64/2
सुमाला=बहुजट तापस की पत्नी–10/94/2
सुमित्रा=इस नामकी एक राजकुमारी तथा भविष्यदत्त की दूसरी पत्नी–8/22/2
सुरभूभृत=सुरशैल–1/14/2, 10/92/2, 10/110/1
सुराचल=हिमालय पर्वत–1/51/1
सुरालय=देव–विमान–6/117/1
सुरूपा=धनपति धनपाल की पत्नी–2/10/2
सुवर्णाद्रि=सुमेरु पर्वत–6/90/2
सुव्रता=इस नामकी साध्वी–4/27/2, 4/30/2
सुवाक=वासव ब्राह्मण का छोटा–पुत्र–10/10/2
सुविनीति=अग्निमित्र की पत्नी त्रिवेदी की पुत्री–10/97/2
सुषुवे=जन्म दिया–11/14/2
सूक्ष्मसाम्पराय =इस नामका चारित्र(पारिभाषिक शब्द)–12/41/2
सेनवृषभ=वृषभसेन आचार्य–11/77/2
सैन्धव=सिन्धदेश का राजा–11/11/2
सैरभ=वन्य भैंसा–2/120/2
सोपायन=भेंट, उपहार लाने (Gift) वाले दूत–8/55/1
सोमप्रभ=भविष्यदत्त का पुत्र–11/19/1
सौभाग्य मंजरी=नागसेना की पुत्री–13/21/1
सौराष्ट्र=वर्तमान गुजरात–11/11/2
स्फटिक=मणि, पत्थर–विशेष–10/40/2
स्फीत=विकसित,स्पष्ट–2/7/1
स्मेरास्य =प्रसन्न मुख–5/5/1
हंस=हंस नामका पक्षी–1/16/2, 3/12/2, 9/78/1
हर्म्य=महल, राजभवन, विशेषभवन–5/18/1
हरिणीदृशा–मृगनयनी, हरिणाक्षी–9/6/1, 9/55/1
हस्तिनाख्य=सुप्रसिद्ध हस्तिनापुर–1/30/1, 3/36/1
हस्तिनागपुर–हस्तिनापुर नामका नगर–5/29/1
हिमाचल=हिमालय–पर्वत–3/84/2

हुतासन=अग्नि–4/6/1, 10/59/1
हेमकुम्भ=स्वर्णकलश–8/39/2
हेमांगद=हेमांगद देवेन्द्र–13/60/1
हृर्द=हृदय से–6/102/2
हृषीक=पाँच इन्द्रियाँ–14/57/1

....



संक्षिप्त जीवन-परिचय



डॉ० राजाराम जैन

1/2/1929 के दिन मालथौंन (सागर, मध्यप्रदेश) में जन्म प्राप्त प्रो० डॉ० राजराम जैन के अतिशय क्षेत्र पपौरा (टीकमगढ़) गुरुकुल, वाराणसी के स्याद्वाद जैन महाविद्यालय तत्पश्चात् बनारस हिंदु यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा प्राप्त की।

भारतीय ज्ञानपीठ (कलकत्ता) गवर्नमेंट कॉलेज शहडोल (म०प्र०) राजकीय प्राकृत जैन शोध संस्थान वैशाली (विहार) तथा मगध विश्व विद्यालय सेवान्तर्गत ह०दा० जैन कॉलेज आरा (विहार) में शिक्षण एवं शोध कार्य करते हुए। यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं संस्कृत प्राकृत विभा के अध्यक्ष पद से जनवरी 1991 में सम्मान अवकाश ग्रहण किया।

प्रो० डॉ० हीरालाल जैन एंव प्रो० डॉ० ए०एन० उपाध्ये की विशेष प्रेरणा से प्राचीन दुर्लभ अप्रकाशित पाण्डुलिपियों पर सन् 1958 से शोध समीक्षात्मक सम्पादन कार्य प्रारंभ किया और इसी विषय पर सन् 1965 में पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् इसी क्षेत्र में कार्यरत रहने का दृढ़ संकल्प किया।

प्रकाशन

अभी तक 42 ग्रन्थ मौलिक एवं सम्पादित। अनेक अभिनन्दन-ग्रंथों, स्मृति ग्रंथों एवं स्मारिकाओं में सम्पादन-सहयोग अनेक शोधग्रंथों का सम्पादन, कुछ शोध-पत्रिकाओं का सम्पादन। लगभग 20 शोधार्थियें के लिये शोध-निर्देशन।

पुरस्कार सम्मान

आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार सहित राष्ट्रीय स्तर के उच्च पुरस्कार सम्मानों से सम्मानित

राष्ट्रपति सम्मान पुरस्कार (2000 ई०) से सम्मानित

अक्टूबर 2010 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान पुरस्कार

Man of the year 2004 (U.S.A)

सन् 1976 में AIOC के कर्नाटक यूनिवर्सिटी धारवाड़ (कर्नाटक) में प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग की अध्यक्षता

यू.जी.सी. (U.G.C) N.C.E.R.T. के मानद सदस्य

अ०भा०दिग०जैन विद्व परिषद के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष

श्री०ला०ब०शा राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) द्वारा मानद वाचस्पति (डी. लिट्) की उपाधि से सम्मानित।

सम्पर्क सूत्र

बी-5/40 सी सेक्टर-34, धवलगिरि, पो. नोएडा (यू.पी.)

फोन : 0120-2505808



श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

5, राजा बाज़ार, खण्डेलवाल जैन मंदिर कॉम्प्लेक्स, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-1